ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

जैनग्रन्थरत्नाकरस्थ— रत्न ३ रा.

स्वर्गीय पण्डित जयचन्द्रजीविरचित,

भाषाटीका और संस्कृतछायासहित

स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा.

जिसको

पन्नालाल बाकलीवालने संशोधित किया

और

मुम्बयीस्थ—जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयके सत्त्वाधिकारी

तथा

गांधी नाथारंगजी आकलूजनिवासीने

मुम्बयीके

निर्णयसागरयन्त्रालयमें छपाकर

प्रसिद्ध किया.

वीरसंवत् २४३० ईस्वी सन १९०४।

प्रथमावृत्तिः ।

मूल्य १॥) रु०] [डांक खर्च ।)

पुस्तक मिलनेके पते ।

१. पन्नालालजैनमालिक—

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,

पो० गिरगांव (मुम्बई).

२. शेठ—नाथारंगजी गांधी—

ठि. डबरागल्ली,

पो० मांडवी (मुम्बई).

३. शेठ—माणेकचंद पानाचंदजी जौंहरी—

ठि० जौंहरी बाजार पो० कालबादेवी,

(मुम्बई.)

ॐ

प्रस्तावना.

पाठक महाशय! हमारी इच्छा थी कि मूल ग्रन्थकर्त्ताका जीवन चरित्र यथाशक्ति संग्रह करके प्रकाशित किया जाय परन्तु यथासाध्य अन्वेषण करनेपर भी ग्रन्थकर्त्ताका कुछ भी तथ्य संग्रह नहिं हुवा. विशेष खेदकी बात यह है कि—स्वामिकार्तिकेय मुनिमहाराज कौनसी शताब्दीमें हुये सो भी निर्णय नहिं हुवा. यद्यपि दन्तकथापरसे प्रसिद्ध है कि ये आचार्यवर्य विक्रम संवत्से दो तीनसौ वर्ष पहिले हो गये हैं. परन्तु जबतक कोई प्रमाण न मिले इस दन्तकथापर विश्वास नहिं किया जा सक्ता. आचार्योंकी कई पट्टावली भी देखी गई उनमें भी इनका नाम कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहिं हुवा किन्तु इस ग्रंथकी गाथा ३९४की संस्कृत टीका वा भाषा टीकामें इतना अवश्य लिखा हुवा मिला कि--"स्वामिकार्त्तिकेय मुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया" परन्तु क्रौंचराजा कब हुवा और यह वाक्य कौनसे ग्रंथके आधारसे टीकाकारने लिखा है सो हमको मिला नहीं. एक मित्रने कहा कि इनकी कथा किसी न किसी कथा कोषमें मिलैगी. किन्तु प्रस्तुत समयतक कोई भी कथाकोश हमारे देखनेमें नहिं आया. परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बालब्रह्मचारी आचार्यश्रेष्ठ दो हजार वर्षसे पहिले हो गये हैं. क्योंकि इस ग्रंथकी प्राकृत भाषा व रचनाकी शैली विक्रमशताब्दीके बने प्राकृत ग्रंथोंसे भिन्न प्रकारकी ही यत्र तत्र दृष्टिगत हुयी. प्रचलित आधुनिक प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें भी इस ग्रन्थके आर्षप्रयोगोंकी सिद्धि बहुत कम होती है. इसकारण मूल ग्रन्थके शुद्ध करनेमें भी सिवाय प्राचीन प्रतियोंके कोई साधन प्राप्त नहीं हुवा है।

इस ग्रन्थमें मूल गाथा ४८९ हैं. जिनमें मुमुक्षुजनोंके लिये प्रायः आवश्यकीय सब ही विषय संक्षिप्तपूर्वक स्पष्टतया वर्णन किये गये हैं. परन्तु मुख्यतया इनमें संसारके दुःख दिखाकर संसारसे विरक्त होनेका उपदेश है, इसकारण समस्त विषय द्वादशअनुप्रेक्षाके कथनमें ही गर्भित करके वर्णन किये गये हैं. मानो घड़ेमें समुद्र भर दिया गया है।

इस ग्रन्थपर एक टीका तो वैद्यक ग्रन्थके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध दिगम्बरजैनाचार्य वाग्भट्ट विरचित है. जिसका उल्लेख पिटर्सनसाहब तथा बूथरसाहबकी किसी रिपोर्टमें किया गया है. उसके आदि अन्तके श्लोक छपे हुये एकबार हमारे देखनेमें आये थे। **दूसरी टीका**—पद्मनंदी आचाचार्यके पट्टपर सुशोभित त्रैविध्यविद्याधरषड्भाषाकविचक्रवर्त्ति भट्टारक **शुभचन्द्राचार्य** सागवाड़ा पट्टाधीशकृत है. जिसमें अनेक प्राचीन जैनग्रन्थोंके प्रमाणोंसे ७००० श्लोकोंमें विस्तृतव्याख्या की है. **तीसरे**—किसी महाशयने प्राकृत पदोंकी संस्कृत छाया लिखी है. इसके सिवाय एक प्राचीन गुर्जर भाषामिश्रित टिप्पणिग्रन्थ भी प्राप्त हुवा है. इन्ही सब ग्रंथोंपरसे मूल, संस्कृत छाया, तथा जयचन्द्रजीकी दो बचनिकापरसे शुद्ध करके मुद्रणयन्त्रद्वारा इस ग्रन्थकी सुलभप्राप्ति कियी गयी है. मूलपाठमें जहां कहीं पाठान्तर था, कहीं २ टिप्पणीमें दिखाया गया है तथा संस्कृत टीकाकी प्रतिका पाठ शुद्ध समझकर वही पाठ रक्खा गया है।

यद्यपि हमारे कई मित्रोंकी सम्मति थी कि जयचन्द्रजीकृत वचनिका (भाषागद्यटीका) ढुंढाड़ीभाषामिश्रित पुराने ढंगकी है. इसको वर्त्तमानकी प्रचलित हिंदीभाषामें परिवर्तन करके छपाना उचित है. परन्तु हमने ऐसा नहिं किया, कारण जैनियोंका जो कुछ हिंदी साहित्य—धर्मशास्त्र, पारलौकिक पदार्थविद्या वा वेदान्त पुराणादिक हैं वे सब जयपुरीभाषा और आगरेकी प्राचीन व्रजभाषाके गद्यपद्यमें ही हैं. यदि इस प्राचीन हिंदी साहित्यको सर्व साधारणमें प्रचार नहिं करके सर्वथा आजकलकी नवीन गढी हुई भाषामें ही अनुवादके ग्रंथ छपाये जांयगे तो कहाँतक अनुवाद किया जायगा ? क्योंकि प्रथम तो प्राचीन भाषाके बहुत हैं. दूसरे—हमारी क्षुद्रजैनसमाजमें ऐसे बहुत कम विद्वान् हैं जो प्राचीन हिंदी त्यके समस्त विषयोंके सैंकड़ों ग्रंथोंका नयी हिंदीमें अनुवाद कर सक्के हों. तीसरे ऐसा समझदार धर्मात्मा धनाढ्य भी तो नहीं दीखता, जो सबसे पहिले करने योग्य जिनवाणी-जीर्णोद्धार करानेमें पुण्य वा नामवरी समझता हो. जब समस्तप्रकारके प्राचीन हिंदी जैन ग्रंथोंको अनुवाद पूर्वक प्रकाशित करनेका वर्तमानमें कोई साधन नहीं है और उपदेशकोंके द्वारा पाठशालायें स्थापन करनेका व स्वाध्याय करनेका प्रचार बढाया जाता है तो कुछ ग्रन्थ प्राचीन भाषाके भी छपाकर सर्व साधारणको इस भाषाका जानकार कर देना बहुत लाभ दायक हो सक्ता है क्योंकि नयी भाषाके ग्रन्थोंकी प्राप्ति नहीं होगी तो प्राचीन भाषाका ज्ञान होनेसे हस्तलिखित प्राचीन भाषाके ग्रन्थोंकी स्वाध्याय करके ही हमारे जैनीभाई ज्ञानप्राप्ति कर सक्ते हैं. दूसरे—यह भाषा कुछ मराठी गुजरातीकी तरहँ सर्वथा पृथक् भी तौ नहीं है ? हम जहांतक विचारते हैं तो कोई २ ठेठ ढुंढाड़ी शब्द होने तथा द्वितीया पंचमी आदि विभक्तिव्यवहारका किंचिन्मात्र विभेदरूप होनेके सिवाय कोई भी दोष इस भाषामें दृष्टिगोचर नहिं होता. किन्तु आज कलकी नवीन हिंदी भाषामें बहुभाग लेखकगण व बंग भाषाके अनुवादकगण संस्कृत शब्दोंकी इतनी भरमार करते हैं कि उस भाषाको पश्चिमोत्तरप्रदेशके काशीप्रयागादि मुख्य २ सहरोंके सिवाय ग्रामनिवासी,मारवाड़ी (राजपूतानानिवासी) गुजराती आदि कोई भी नहिं समझ सक्के. ऐसा दोष इस प्राचीन जयपुरी भाषामें नहीं है. क्योंकि यह भाषा बहुत सरल है तथा इस भाषाके हजारों ग्रन्थ समस्त देशोंके बडे २ जैन मंदिरोंमे मोजूद हैं तथा बडे २ शहरों और ग्रामोंके पढे लिखे जैनी भाई नित्यशः स्वाध्यायभी करते रहते हैं. अतएव इस प्राचीन भाषाका अनादर नहिं करके इस भाषामें ही कुछ ग्रन्थोंका छपाना युक्तिसंगत समझकर इस ग्रन्थको नवीन भाषामें परिवर्तन नहिं किया गया किन्तु खास विद्वद्वर्य पंडित जयचन्द्रजीकी भाषामें ही छपाया है. परन्तु प्रमादवशतः यत्र तत्र इस भाषासंबंधी नियमोंका पालन नहिं हुवा हो तो जयपुरनिवासी विद्वद्गण क्षमा करैंगे।

भाषाकार महाशयने ग्रन्थकी आदिमें पीठिका (विषयानुक्रमणिका) लिखी थी और उसको प्रस्तावनामें छापनेकी हमने प्रतिज्ञा भी कियी थी परन्तु स्थलाभावके कारण उसे तथा इस ग्रंथके शुद्धिपत्रादिको नहिं छपा सके सो यह अपराध पाठक गण क्षमा करैंगे।

मुम्बयी जैनीभाइयोंका दास,

ता. १-१०-१९०४ ई० पन्नालाल बाकलीवाल.

यहां 'अनुप्रेक्षा'
प्रकार है -

ॐ

रत्न ३ रा.

श्रीपरमात्मने नमः

स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा.

संस्कृतछाया और भाषानुवादसहिता.

भाषाकारका मङ्गलाचरण.

दोहा.

प्रथम ऋषभ जिन धर्मकर, सनमति चरम जिनेश ॥
विघनहरन मंगलकरन, भवतमदुरितदिनेश ॥ १ ॥
वानी जिनमुखतैं खिरी, परी गणाधिपकान ॥
अक्षरपदमय विस्तरी, करहि सकल कल्यान ॥ २ ॥
गुरु गणधर गुणधर सकल, प्रचुर परंपर और ॥
व्रततपधर तनुनगनतर, वंदो वृष शिरमौर ॥ ३ ॥
स्वामिकार्त्तिकेयो मुनी, बारह भावन भाय ॥
कियो कथन विस्तार करि, प्राकृतछंद बनाय ॥ ४ ॥
ताकी टीका संस्कृत, करी सुघर शुभचन्द्र ॥
सुगमदेशभाषामयी, करूं नाम जयचन्द्र ॥ ५ ॥
पढहु पढावहु भव्यजन, यथाज्ञान मनधारि ॥
करहु निर्जरा कर्मकी, बार बार सुविचारि ॥ ६ ॥

ऐसें देवशास्त्र गुरुको नमस्काररूप मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा नामा ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करिये है। तहां संस्कृत टीकाका अनुसार ले, मेरी बुद्धिसारू गाथाका संक्षेप अर्थ लिखियेगा. तामें कहीं चूक होय तौ विशेष बुद्धिवान सवांर लीजियो।

श्रीमत्स्वामिकार्त्तिकेय नामा आचार्य अपने ज्ञानवैराग्यकी वृद्धि होना, नवीन श्रोताजनोंके ज्ञानवैराग्यका उपजना तथा विशुद्धता होनेतैं पापकर्मकी निर्जरा पुण्यका उपजना शिष्टाचारका पालना निर्विघ्नतैं शास्त्रकी समाप्ति होना इत्या-

(१) इस जगह भाषानुवादक स्वर्गीय पं. जयचन्द्रजीने समस्त ग्रंथकी पीठिका (कथनका संक्षिप्त सूचनिका) लिखी है. सो हमने उसको यहां न रखकर आधुनिक प्रथानुसार भूमिकामें (प्रस्तावनामें) लिखी है.

दि अनेक भले फल चाहता संता अपने इष्टदेवको नमस्कार (भाषागद्यटीका भाषामें परिवर्तन हिंदी तथा पूर्व गद्के ग्रंथ) प्रतिज्ञाका गाथा सूत्र कहैं है ।

तिहुवणतिलयं देवं, वंदित्ता तिहुअणिंद परिपुज्जं ।
वोच्छं अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ ॥ १ ॥

त्रिभुवनतिलकं देवं वंदित्वा त्रिभुवनेन्द्रपरिपूज्यं ।
वक्ष्ये अनुप्रेक्षाः भविकजनानन्दजननीः ॥ १ ॥

भाषार्थ—तीन भवनका तिलक, बहुरि तीन भवनके इंद्रनिकरि पूज्य ऐसा देव है ताहि मैं वंदिकर भव्य जीवनिको आनंदके उपजावनहारी अनुप्रेक्षा तिनहि कहूंगा. भावार्थ—यहां 'देव' ऐसी सामान्य संज्ञा है सो क्रीड़ा विजिगीषा [२]द्युति स्तुति मोद गति कांति इत्यादि क्रिया करै ताको देव कहिये. तहां सामान्यविषै तो च्यार प्रकारके देव वा कल्पित देव भी गिनिये हैं. तिनितैं न्यारा दिखावनेके अर्थि 'त्रिभुवनतिलकं' ऐसा विशेषण किया. तातैं अन्यदेवका व्यवच्छेद (निराकरण) भया. बहुरि तीनभुवनके तिलक इन्द्र भी हैं तिनितैं न्यारा दिखावनेकेअर्थि 'त्रिभुवनेन्द्रपरिपूज्यं' ऐसा विशेषण किया, यातैं तीन भुवनके इन्द्रनिकरि भी पूजनीक ऐसा देव है ताहि नमस्कार किया. इहां ऐसा जानना कि ऐसा देवपणा अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पंच परमेष्ठीविषै ही संभवै है. जातैं परम स्वात्मजनित आनंदसहित क्रीड़ा, तथा कर्मके जीतनेरूप विजिगीषा, स्वात्मजनित प्रकाशरूप द्युति, स्वस्वरूपकी स्तुति, स्वरूपविषै परमप्रमोद, लोकालोकव्यासरूप गति, शुद्धस्वरूपकी प्रवृत्तिरूप कान्ति इत्यादि देवपणाकी उत्कृष्ट क्रिया सो समस्त एकदेश वा सर्वदेशरूप इनिहीविषै पाई है. तातैं सर्वोत्कृष्ट देवपना इनिहीविषै आया, तातैं इनिकों मंगलरूप नमस्कार युक्त है. 'मं' कहिये पाप ताकों गालै, तथा 'मङ्ग' कहिये सुख, ताकों लाति ददाति कहिये दे, ताहि 'मङ्गल' कहिये. सो ऐसे देवको नमस्कार करनेतैं शुभपरिणाम हो है तातैं पापका नाश हो है. शान्तभावरूप सुखप्राप्ति हो है. बहुरि अनुप्रेक्षाका सामान्य अर्थ वारंवार चिन्तवन करना है। तहां चिन्तवन अनेक प्रकार हैं, ताके करनेवाले अनेक हैं. तिनितैं न्यारे दिखावनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननीः' ऐसा विशेषण दिया है. तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकैं आनंदकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा। बहुरि

(१) यह शब्द 'यतः' से बना है. जिसका अर्थ क्योंकि तथा जिसकारण इत्यादि होते है. (२) ज्ञानकी शक्ति. (३) यह शब्द 'ततः' से बना है. इसका अर्थ तिसकारण, इसकारण इत्यादि होता है.

यहां 'अनुप्रेक्षाः' ऐसा बहुवचनान्त पद है सो अनुप्रेक्षा सामान्य चिंतवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार हैं. तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चिन्तवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानि विषै कहेहैं ।

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्तं ।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥

इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणा णिच्चं ।
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥ युग्मम् ।

अध्रुवं अशरणं भणिताः संसारः एकं अन्यत् अशुचित्वम् ।
आस्रवः संवरनामा निर्जरा लोकानुप्रेक्षा ॥ २ ॥

इति ज्ञात्वा भावयन् दुर्लभधर्मानुप्रेक्षा नित्यं ।
मनोवचनकायशुद्ध्या एताः उद्देशतः भणिताः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं,तिनहिं जाणकरि मनवचनकायशुद्ध करि आगें कहेंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन ? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह । भावार्थ—ये बारह भावनाके नाम कहे,इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा। बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा ? अध्रुव तौ अनित्यकों कहिये । जामें शरण नाही सो अशरण । भ्रमणकों संसार कहिये । जहां दूसरा नहीं सो एकत्व । जहां सर्वतें जुदा सो अन्यत्व । मलिनताकों अशुचित्व कहिये । जो कर्मका आवना सो आस्रव । कर्मका आवना रोकै सो संवर । कर्मका क्षरना सो निर्जरा । जामें षट्द्रव्य पाइये सो लोक । अतिकठिनतासों पाइये सो दुर्लभ । संसारतें उद्धार करै सो वस्तुस्वरूपादिक धर्म । इस प्रकार इनके अर्थ हैं ।

अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण ।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि ॥ ४ ॥

यत्किमपि उत्पन्नं तस्य विनाशो भवति नियमेन।
परिणामस्वरूपेण अपि न च किं अपि अपि शास्वतं अस्ति ॥ ४ ॥

भाषार्थ–जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शास्वता नाहीं है. **भावार्थ**–सर्व वस्तु सामान्य विशेषस्वरूप है. तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु नित्य ही है. बहुरि गुण भी नित्य ही है और पर्याय है सो अनित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्यायबुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है. तथा ताकूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्याकुल होय है, ताकों यहु भावना (अनुप्रेक्षा) चिंतवना युक्त है। जो मैं द्रव्यकरि शास्वता आत्मद्रव्य हों, बहुरि उपजै विनशै है, सो पर्यायका स्वभाव है, यामें हर्षविषाद कहा? शरीर है, सो जीव पुद्गलका संयोगजनित पर्याय है. धन धान्यादिक हैं, ते पुद्गलके परमाणूनिकै स्कन्धपर्याय हैं. सो इनिकै मिलना विछुरना नियमकरि अवश्य है. थिरकी बुद्धि करै है. सो यहु मोहजनित भाव है. तातैं वस्तु स्वरूप जानि हर्ष विषादादिकरूप न होना।

आगें इसहीको विशेषकरि कहै हैं,—

जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं।
लच्छी विणाससहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह ॥ ५ ॥

जन्म मरणेन समं सम्पद्यते यौवनं जरासहितम्।
लक्ष्मीः विनाशसहिता इति सर्वं भङ्गुरं जानीत ॥ ५ ॥

भाषार्थ–भो भव्य हो यह जन्म है सो तौ मरणकरि सहित है, यौवन है सो जराकर सहित उपजै है, लक्ष्मी है सो विनाश सहित उपजै है, ऐसें ही सर्व वस्तु क्षणभंगुर जानहू. **भावार्थ**– जेती अवस्था जगतमें हैं, तेती सर्व प्रतिपक्षी भावकों लिये हैं. यह प्राणी जन्म होय तब तौ ताकूं थिर मानि हर्ष करै है. मरण होय तब गया मानि शोक करै है. ऐसें ही इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष, अप्राप्तिमें विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद अप्राप्तिमें हर्ष करै है. सो यह मोहका माहात्म्य है. ज्ञानीनिकों समभावरूप रहना।

अथिरं परियणसयणं पुत्तकलत्तं सुमित्त लावण्णं।
गिहगोहणाइ सव्वं णवघणविंदेण सारित्थं ॥ ६ ॥

(१) अधिक, अपिशब्दः आचार्यस्याभिप्रायान्तरं सूचयति तेन द्रव्यत्वापेक्षया गुणत्वापेक्षया च वस्तुतः कथंचिन्नित्यत्वं पर्यायात्कथंचिदनित्यमिति ।

अस्थिरं परिजनस्वजनः पुत्रः कलत्रं सुमित्रं लावण्यम् ।
गृहगोधनादि सर्वं नवघनवृन्देन सदृशं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसें नवीन मेघके बादल तत्काल उदय होयकर विलाय जाय, तैसें ही या संसारविषै परिवार बन्धुवर्ग पुत्र, स्त्री, भले मित्र, शरीरकी सुन्दरता, गृह, गोधन इत्यादि समस्त वस्तु अथिर हैं । भावार्थ—ये सर्व वस्तु अथिर जानिकरि हर्ष विषाद नहिं करना ।

सुरधणुतडिव्वचवला इंदियविसया सुभिच्चवग्गा य ।
दिट्ठपणट्ठा सव्वे तुरयगयरहवरादीया ॥ ७ ॥

सुरधनुस्तडिद्वच्चपला इन्द्रियविषयाः सुभृत्यवर्गाः च ।
दृष्टप्रणष्टाः सर्वे तुरगगजरथवरादयः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—या जगतविषै इन्द्रियनके विषय हैं ते इन्द्रधनुष तथा विजलीके चमत्कारवत् चंचल हैं. पहिली दीसै पीछैं तुरत विलाय जाय है. बहुरि तैसैं ही भले चाकरनिके समूह हैं बहुरि तैसें ही भले घोड़े हस्ती रथ हैं ऐसें सर्व ही वस्तु हैं. भावार्थ—यह प्राणी श्रेष्ठ इन्द्रियनके विषय भले चाकर घोड़े हाथी रथादिक की प्राप्ति करि सुख मानै है, सो ये सारे क्षण विनश्वर हैं. अविनाशी सुखका उपाय करना ही योग्य है.

आगें बन्धुजनका संगम कैसा है सो दृष्टान्तद्वारकरि कहै हैं,—

पंथे पहियजणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं ।
बंधुजणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥ ८ ॥

पथि पथिकजनानां यथा संयोगो भवति क्षणमात्रम् ।
बन्धुजनानां च तथा संयोगः अध्रुवः भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसें मार्गविषै पथिक जननिका संयोग क्षणमात्र है तैसैं ही संसारविषै बन्धुजननिका संयोग अथिर है. भावार्थ—यह प्राणी बहुत कुटुंब परिवार पावै, तब अभिमानकरि सुख मानै है. या मदकरि निजस्वरूपको भूलै है, सो यहु बन्धुवर्गका संयोग मार्गके पथिकजन सारिखा है. शीघ्र ही विछुडै है. याविषै सन्तुष्ट होय स्वरूपकूं न भूलना.

आगें देहसंयोगकूं अथिर दिखावै है—

अइलालिओ वि देहो ण्हाणसुयंधेहिं विविहभक्खेहिं ।
खणमित्तेण वि विहडइ जलभरिओ आमघडउव्व ॥ ९ ॥

अतिलालितः अपि देहः स्नानसुगन्धैः विविधभक्ष्यैः।
क्षणमात्रेण अपि विघटते जलभृतः आमघट इव ॥ ९ ॥

भाषार्थ–देखो यह देह स्नान तथा सुगन्ध वस्तुनिकरि सँवाऱ्या हुवा भी तथा अनेक प्रकार भोजनादि भक्ष्यनिकरि पाल्या हुवा भी जलका भऱ्या कच्चा घड़ाकी नाई क्षणमात्रमें विघट जाय है । भावार्थ–ऐसे शरीरविषै स्थिरबुद्धि करना बडी भूल है ।

आगें लक्ष्मीका अस्थिरपणा दिखावै हैं,—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।
सा किं वंधेइ रइं इयरजणाणं अपुण्णाणं ॥ १० ॥

या शाश्वता न लक्ष्मीः चक्रधराणां अपि पुण्यवताम् ।
सा किं बध्नाति रतिं इतरजनानां अपुण्यानाम् ॥ १० ॥

भाषार्थ–जो लक्ष्मीः कहिये संपदा पुण्यकर्मके उदयसहित जे चक्रवर्ति तिनके भी शास्वती नाहीं तौ अन्य जे पुण्य उदयरहित तथा अल्पपुण्यसहित जे पुरुष हैं तिनसहित कैसें राग बांधै ? अपितु नाही बांधै. भावार्थ–या संपदाका अभिमानकरि यहु प्राणी प्रीति करै है सो वृथा है.

आगें याही अर्थको विशेष करि कहै हैं,—

कत्थवि ण रमइ लच्छी कुलीणधीरे वि पंडिए सूरे ।
पुज्जे धम्मिट्ठे विय सुरूपसुयणे महासत्ते ॥ ११ ॥

कुत्र अपि न रमते लक्ष्मीः कुलीनधीरे अपि पण्डिते शूरे ।
पूज्ये धर्मिष्ठे अपि च सुरूपसुजने महासत्वे ॥ ११ ॥

भाषार्थ–यह लक्ष्मी सम्पदा कुलवान धैर्यवान पंडित सुभट पूज्य धर्मात्मा रूपवान सुजन महापराक्रमी इत्यादि काहू पुरुषनिविषैहू नाहीं राचै है. भावार्थ–कोई जानेगा कि मैं बडा कुलका हूं, मेरे बडांकी संपदा है, कहां जाती है. तथा मैं धीरजवान हौं. कैसे गमाऊंगा. तथा पंडित हौं, विद्यावान हौं, मेरी कौन ले है. मोकू देहीगा. तथा मैं सुभट हूं कैसें काहूकों लेनें द्योंगा. तथा मैं पूजनीक हूं. मेरी कौन ले है. तथा मैं धर्मात्मा हौं, धर्मतें तौ आवै, छती कहां जाय है. तथा मैं बडा रूपवान हौं, मेरा रूप देखि ही जगत प्रसन्न है, संपदा कहां जाय है. तथा मैं सुजन हौं परका उपकारी हौं, कहां जायगी. तथा मैं बडा पराक्रमी हौं, संपदा बढाऊंगा. छती कहां जानै द्योंगा; सो यह सर्व विचार मिथ्या है. यह संपदा देखते देखते विलय जाय है. काहूकी राखी रहती नाहीं ।

आगें कहै हैं जो लक्ष्मी पाई ताकों कहा करिये सोई कहिये है,—

ता भुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दयापहाणेण ।
जा जलतरंगचवला दोतिण्णदिणाणि चिट्ठेइ ॥ १२ ॥

तावत् भुज्यतां लक्ष्मीः दीयतां दानं दयाप्रधानेन ।
या जलतरङ्गचपला द्वित्रिदिनानि चेष्टते ॥ १२ ॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी जलतरंगसारखी चंचल है. जेतें दो तीन दिन ताई चेष्टा करै है, विद्यमान है, तेतें भोगवो; दयाप्रधान होय करि दान द्यो. भावार्थ—कोऊ कृपणबुद्धि या लक्ष्मीकूं संचय करि थिर राख्या चाहै, ताकूं उपदेश है. जो यह लक्ष्मी चंचल है, रहनेकी नाहीं, जेते थोरे दिन विद्यमान है, तेते प्रभुकी भक्तिनिमित्त तथा परोपकारनिमित्त दानकरि खरचो तथा भोगवो. इहां प्रश्न जो भोगनेमें तो पाप निपजै है. भोगनेका उपदेश काहेकूं दिया? ताका समाधान—संचय राखनेमें प्रथम तौ ममत्व बहुत होय तथा कोई कारणकरि विनशै तब विषाद बहुत होय, आसक्तपणेतें कषाय तीव्रपरिणाम मलिन निरंतर रहै हैं. बहुरि भोगनेमें परिणाम उदार रहैं, मलिन न रहै. उदारतासूं भोग सामग्रीविषै खरचै, तामें जगत जस करै. तहां भी मन उज्वल रहै है. कोई अन्य कारणकरि विनशै तो विषाद बहुत न होय इत्यादि भोगनेमें भी गुण होय हैं. कृपणकै तौ कछू ही गुण नाहीं. केवल मनकी मलिनताकों ही कारण है. बहुरि जो कोई सर्वथा त्याग ही करै तो ताको भोगनेका उपदेश है नाहीं ।

जो पुण लच्छिं संचदि ण य भुंजदि णेय देदि पत्तेसु ।
सो अप्पाणं वंचदि मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥ १३ ॥

यः पुनः लक्ष्मीं संचिनोति न च भुङ्क्ते नैव ददाति पात्रेषु ।
सः आत्मानं वञ्चति मनुजत्वं निष्फलं तस्य ॥ १३ ॥

भाषार्थ—बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीको संचय करै है, पात्रनिके निमित्त न दे है, न भोगवै है, सो अपने आत्माकों ठगै है ता पुरुषका मनुष्यपणा निष्फल है वृथा है. भावार्थ—जा पुरुषने लक्ष्मी पाय संचय ही किया. दान भोगमें न खर्चीं, तानें मनुष्यपणा पाय कहा किया, निष्फल ही खोया, आपा ठगाया.

जो संचिऊण लच्छिं धरणीयले संठवेदि अइदूरे ।
सो पुरिसो तं लच्छिं पाहाणसमाणियं कुणइ ॥ १४ ॥

यः सञ्चयीकृत्य लक्ष्मीं धरणीतले संस्थापयति अतिदूरे ।
सः पुरुषः तां लक्ष्मीं पाषाणसमानां करोति ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको अति ऊंडी पृथिवीतलमें गाडै है, सो पुरुष उस लक्ष्मीको पाषाणसमान करै है. भावार्थ—जैसें हवेलीकी नीवमें पाषाण धरिये है. तैसें याने लक्ष्मी गाडी तब पाषाणतुल्य भई।

अणवरयं जो संचदि लच्छि ण य देदि णेय भुंजेदि।
अप्पणिया वि य लच्छि परलच्छीसमाणिया तस्स ॥ १५ ॥

संचिनोति
अनवरतं यः संचदि लक्ष्मीं न च ददाति नैव भुङ्क्ते।
आत्मीया अपि लक्ष्मीः परलक्ष्मीसमानिका तस्य ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीको निरन्तर संचय करै है, न दान देहै, न भोगवै है, सो पुरुष अपनी लक्ष्मीको परकी समान करै है। भावार्थ—लक्ष्मी पाय दान भोग न करै है, ताकै वह लक्ष्मी पैलेकी है. आप रखवाला (चौंकीदार है) है (लक्ष्मीको) कोऊ अन्य ही भोगवैगा.

लच्छीसंसत्तमणो जो अप्पाणं धरेदि कट्ठेण।
सो राइदाइयाणं कज्जं साधेहि मूढप्पा ॥ १६ ॥

लक्ष्मीसंसक्तमनाः यः आत्मानं धरति कष्टेन।
स राजदायादीनां कार्यं साधयति मूढात्मा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीविषै आसक्तचित्त हुवासंता अपने आत्माको कष्टसहित राखै है, सो मूढात्मा राजानिका तथा कुटुम्बीनका कार्य साधै है। भावार्थ—लक्ष्मीकेविषै आसक्तचित्त होयकरि याके उपजावनेके अर्थि तथा रक्षाकेअर्थ अनेक कष्ट सहै है. सो वा पुरुषकै केवल कष्ट ही फल होय है. लक्ष्मी कै तो कुटुंब भोगवैगा कै राजा लेगा।

जो वड्ढारइ लच्छि वहुविहवुद्धीहिं णेय तिप्पेदि।
सव्वारंभं कुव्वदि रत्तिदिणं तंपि चिंतवदि ॥ १७ ॥
ण य भुंजदि वेलाए चिंतावत्थो ण सुयदि रयणीये।
सो दासत्तं कुव्वदि विमोहिदो लच्छितरुणीए ॥ १८ ॥

यः वृद्धीयति लक्ष्मीं वहुविधिबुद्धिभिः नैव तृप्यति।
सर्वारम्भं कुरुते रात्रिदिनं तमपि चिन्तयति ॥ १७ ॥
न च भुनक्ति वेलायां चिन्तावस्थः न सुप्यति रजन्याम्।
सः दासत्वं करोति विमोहितः लक्ष्मीतरुण्या ॥ १८ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष अनेक प्रकार कला चतुराई बुद्धि करि लक्ष्मीने बधावै है, तृप्ति न होय है, याके वास्ते असिमसि कृष्यादिक सर्वारंभ करै है, रातिदिन याहीके आरंभको चितवै है, वेला भोजन न करै है चिंतामें तिष्ठ्या हुवा रात्रि विषै सोवै नाहीं हैं, सो पुरुष लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोह्या हुवा ताका किंकरपणा करै हैं, भावार्थ–जो स्त्रीका किंकर होय ताको लोकविषै 'मोहल्या' ऐसा निंद्यनाम कहै है, सो जो पुरुष निरन्तर लक्ष्मीके निमित्तही प्रयास करै है सो लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहल्या है।

आगें जो लक्ष्मीको धर्म कार्यमें लगावै ताकी प्रशंसा करै है—

जो वड्ढमाण लच्छिं अणवरयं देहि धम्मकज्जेसु।
सो पंडिएहिं थुव्वदि तस्स वि सहला हवे लच्छी ॥ १९ ॥

यः वर्धमानलक्ष्मीं अनवरतं ददाति धर्मकार्येषु।
सः पण्डितैः स्तूयते तस्य अपि सफला भवेत् लक्ष्मीः ॥ १९ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष पुण्यके उदय करि वधती जो लक्ष्मी ताहि निरंतर धर्मकार्यनिविषै दे है सो पुरुष पंडितनिकरि स्तुति करनेयोग्य है. बहुरि ताहीकी लक्ष्मी सफल है. भावार्थ–लक्ष्मी पूजा प्रतिष्ठा, यात्रा, पात्रदान, परका उपकार इत्यादि धर्मकार्यविषै खरची हुईही सफल है, पंडितजनभी ताकी प्रशंसा करै है।

एवं जो जाणित्ता विहलियलोयाण धम्मजुत्ताणं।
णिरवेक्खो तं देहि हु तस्स हवे जीवियं सहलं ॥ २० ॥

एवं यः ज्ञात्वा विफलितलोकेभ्यः धर्मयुक्तेभ्यः।
निरपेक्षः तां ददाति खलु तस्य भवेत् जीवितं सफलं ॥ २० ॥

भाषार्थ–जो पुरुष पहिले कह्या ताको जाणि धर्मयुक्त जे निर्धन लोक हैं, तिनके अर्थि प्रति उपकारकी वांछामों रहित हुवा तिस लक्ष्मीको दे है, ताका जीवना सफल है. भावार्थ– अपना प्रयोजन साधनेके अर्थि तौ धन देनेवाले जगतमें बहुत हैं. बहुरि जे प्रतिउपकारकी वांछारहित धर्मात्मा तथा दुःखी दरिद्री पुरुषनिको धन दे हैं, ऐसे विरले हैं। उनका जीवितव्य सफल है।

आगें मोहका माहात्म्य दिखावै है।

जलवुव्वयसारित्थं धणजुव्वणजीवियं पि पेच्छंता।
मण्णंति तो वि णिच्चं अइवलिओ मोहमाहप्पो ॥ २१ ॥

जलबुद्बुदसदृशं धनयौवनजीवितं अपि पश्यन्तः ।
मन्यन्ते तथापि नित्यं अति बलिष्ठं मोहमाहात्म्यम् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—यह प्राणी धन यौवन जीविनको जलके बुद्बुदासारिखे तुरतविलय जाते देखते संते भी नित्य मानै है, सो यह हु बडा अचिरज है. यह मोहका माहात्म्य बडा बलवान है. **भावार्थ**— वस्तुका स्वरूप अन्यथा जनावनेको मदपीवना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार अन्धकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सबतैं बलवान है, जो प्रत्यक्ष विनाशीक वस्तुको देखै है, तो हू नित्य ही मनावै है. तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक हैं ते सब मोहहीके भेद हैं. ए सर्वही वस्तु स्वरूपविषै अन्यथा बुद्धि करावै है ।

आगें या कथनकों संकोचै है,—

चइऊण महामोहं विसये सुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥ २२ ॥

त्यक्त्वा महामोहं विषयान् श्रुत्वा भङ्गुरान् सर्वान् ।
निर्विषयं कुरुष्व मनः येन सुखं उत्तमं लभते ॥ २२ ॥

भाषार्थ—भो भव्य जीवहो ! तुम समस्तविषयनिकूं विनाशीक सुणकरि, महामोहको छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहू. जातैं उत्तम सुखको पावो. **भावार्थ**— पूर्वोक्त प्रकार संसार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकूं सुणिकरि अपना मनकूं विषयनितैं छुडाय अथिर भावैगा, सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखको पावैगा ।

दोहा.

द्रव्यदृष्टितैं वस्तु थिर, पर्यय अथिर निहारि ।
उपजत विनशत देखिकैं, हरष विषाद निवारि ॥ १ ॥

इति अध्रुवानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १ ॥

अथ अशरणानुप्रेक्षा लिख्यते.

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।
हरिहरबंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

तत्र भवे किं शरणं यत्र सुरेन्द्राणां दृश्यते विलयः ।
हरिहरब्रह्मादयः कालेन च कवलिताः यत्र ॥ २३ ॥

भाषार्थ–जिस संसारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है बहुरि जहां हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द कर बडे २ पदवीधारक सर्वही कालकरि ग्रसे, तिस संसारविषै कहा शरणा होय ? किछूभी न होय. भावार्थ– शरणा ताकूं कहिये जहां अपनी रक्षा होय, सो संसारमें जिनका शरणा विचारिये तेही काल-पाय नष्ट होय हैं. तहां काहेका शरणा ?

आगें याका दृष्टान्त कहै हैं,—

सींहस्स कमे पडिदं सारंगं जह ण रक्खदे को वि।
तह मिच्चुणा य गहियं जीवं पि ण रक्खदे को वि ॥ २४ ॥

सिंहस्य क्रमे पतितं सारङ्गं यथा न रक्षते कः अपि ।
तथा मृत्युना च गृहीतं जीवं अपि न रक्षते कः अपि ॥ २४ ॥

भाषार्थ–जैसें वनविषै सिंहके पगतलें पड्यो जो हिरण, ताहि कोऊभी राखनेवाला नाहीं, तैसें या संसारमें कालकरि ग्रह्या जो प्राणी, ताहि कोउ भी राखि सकै नाहीं. भावार्थ– उद्यानमें सिंह मृगकूं पगतलैं दे, तहां कौन राखै ? तैसें ही या कालका दृष्टान्त जानना ।

आगें याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति ॥ २५ ॥

यदि देवः अपि च रक्षति मन्त्रः तन्त्रः च क्षेत्रपालः च ।
म्रियमाणं अपि मनुष्यं तत् मनुजाः अक्षयाः भवन्ति ॥ २५ ॥

भाषार्थ–जो मरणकूं प्राप्त होते मनुष्यकूं कोई देव मंत्र तंत्र क्षेत्रपाल उपलक्षणतें लोक जिनकूं रक्षक मानै, सो सर्वही राखनेवाले होय तौ मनुष्य अक्षय होंय. कोईभी मरै नाहीं. भावार्थ– लोक जीवनेंके निमित्त देवपूजा मंत्रतंत्रा ओपधी आदि अनेक उपाय करै है परन्तु निश्चय विचारिये तौ कोई जीवत दीसै नाही. वृथाही मोहकरि विकल्प उपजावै है ।

आगें याही अर्थको बहुरि दृढ करै है,—

अइबलिओ वि रउद्दो मरणविहीणो ण दीसए को वि।
रक्खिज्जंतो वि सया रक्खपयारेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥

अतिबलिष्ठः अपि रौद्रः मरणविहीनः न दृश्यते कः अपि ।
रक्षमाणः अपि सदा रक्षा प्रकारैः विविधैः ॥ २६ ॥

भाषार्थ–या संसारविषै अति बलवान तथा अतिरौद्र भयानक बहुरि अनेक रक्षाके प्रकार तिनकरि निरंतर रक्षा कीया हूवाभी मरणरहित कोई भी नाहीं दीखै है. भावार्थ– अनेक रक्षाके प्रकार गढ कोट सुभट शस्त्र आदि उपाय कीजिये परन्तु मरणैंत कोऊ बचै नाहीं। सर्व उपाय विफल जाय हैं।

आगें शरणा कल्पै ताकूं अज्ञान बतावै है,—

एवं पेच्छंतो वि हु गहभूयपिसाय जोइणी जक्खं।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढ मिच्छत्तभावादो ॥ २७ ॥

एवं पश्यन् अपि खलु ग्रहभूतपिशाचयोगिनीयक्षम्।
शरणं मन्यते मूढः सुगाढमिथ्यात्वभावतः ॥ २७ ॥

भाषार्थ–ऐसें पूर्वोक्तप्रकार अशरण प्रत्यक्ष देखताभी मूढ जन तीव्रमिथ्यात्वभावतैं सूर्यादि ग्रह भूत व्यंतर पिशाच योगिनी चंडिकादिक यक्षमणिभद्रादिक इनहि शरणा मानै हैं. भावार्थ– यहु प्राणी प्रत्यक्ष जाणै है जो मरणतैं कोऊ भी राखणहारा नाहीं, तोऊ ग्रहादिकका शरणा कल्पै है, सो यह तीव्रमिथ्यात्वका उदयका माहात्म्य है।

आगें मरण है सो आयुके क्षयतें होय है यह कहै हैं,—

आउक्खयेण मरणं आउं दाऊण सक्कदे को वि।
तह्मा देविंदो वि य मरणाउण रक्खदे को वि ॥ २८ ॥

आयुःक्षयेण मरणं आयुः ददातुं न शक्नोति कः अपि।
तस्मात् देवेन्द्रः अपि च मरणात् न रक्षति कः अपि ॥ २८ ॥

भाषार्थ–जातैं आयुकर्मके क्षयतैं मरण होय है. बहुरि आयुकर्म कोईकूं कोई देनेको समर्थ नाही, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतैं नहिं राखसकै है. भावार्थ– मरण तो आयुः पूर्ण हुवा होय. बहुरि आयु कोई काहूकों देने समर्थ नाहीं, तब रक्षा करनेवाला कौन? यह विचारो!

आगें याही अर्थकूं दृढ करै है,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

आत्मानं अपि च्यवन्तं यदि शक्नोति रक्षितुं सुरेन्द्रः अपि।
तत् किं त्यजति स्वर्गं सर्वोत्तमभोगसंयुक्तम् ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जो देवनका इन्द्रहू आपको चयता (मरते हुये) राखनेको समर्थ

होता तो सर्वोत्तम भोगनिकरि संयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकूं काहेकूं छोडता ? **भावार्थ–** सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखावै हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए ।
अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

दर्शनज्ञानचारित्रं शरणं सेवस्व परमश्रद्धया ।
अन्यत् किं अपि न शरणं संसारे संसरताम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ–हे भव्य तू परम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप शरणा सेवन करि. या संसारविषै भ्रमते जीवनिकूं अन्य किछू भी शरणा नाहीं है. **भावार्थ–** सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अपना स्वरूप है सो ये ही परमार्थरूप (वास्तवमें) शरणा है. अन्य सर्व अशरणा हैं. निश्चय श्रद्धानकरि यहही शरणा पकड़ो, ऐसा उपदेश है ।

आगें इसहीको दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि य सरणं खमादिभावेहिं परिणदं होदि ।
तिव्वकसायाविट्ठो अप्पाणं हणदि अप्पेण ॥ ३१ ॥

आत्मानं अपि च शरणं क्षमादिभावैः परिणतं भवति ।
तीव्रकषायाविष्टः आत्मानं हिनस्ति आत्मना ॥ ३१ ॥

भाषार्थ–जो आपकूं क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करै, सो शरणा है. बहुरि जो तीव्रकषाययुक्त होय है, सो आपकरि आपकूं हणै है. **भावार्थ–** परमारथ विचारिये तो आपकूं आपही राखनेवाला है. तथा आपही घातनेवाला है. क्रोधादिरूप परिणाम करै है, तब शुद्ध चैतन्यका घात होय है. बहुरि क्षमादि परिणाम करै है, तब आपकी रक्षा होय है. इनही भावनिसों जन्ममरणतैं रहित होय अविनाशी पदकूं प्राप्त होय है ।

दोहा.

वस्तुस्वभावविचारतैं, शरण आपकूं आप ।
व्यवहारे पण परमगुरु, अवर सकल संताप ॥ २ ॥

इति अशरणानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ २ ॥

अथ संसारानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथमही दोय गाथानिकरि संसारका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

एक्कं चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो ।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि वहुवारं ॥ ३२ ॥
एवं जं संसरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स ।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स ॥ ३३ ॥

एकं त्यजति शरीरं अन्यत् गृह्णाति नवं नवं जीवः ।
पुनः पुनः अन्यत् अन्यत् गृह्णाति मुञ्चति बहुवारं ॥ ३२ ॥
एवं यत् संसरणं नानादेहेषु भवति जीवस्य ।
सः संसारः भण्यते मिथ्याकषायैः युक्तस्य ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तुको श्रद्धना, बहुरि कषाय कहिये क्रोधमानमायालोभ इनकरि युक्त यह जीव, ताकै जो अनेक देहनिविषै संसरण कहिये भ्रमण होय, सो संसार कहिये. ?सो कैसें सो ही कहिये है. एक शरीरकूं छोडै अन्य ग्रहण करै फेरि नवा ग्रहणकरि फेरि ताकूं छोडि अन्य ग्रहण करै ऐसें बहुतबार ग्रहण कीया करै सो ही संसार है. भावार्थ— शरीरतैं अन्य शरीरकी प्राप्ति होवो करै सो संसार है ।

आगें ऐसे संसारविषै संक्षेप करि चारगति हैं तथा अनेक प्रकार दुःख हैं. तहां प्रथम ही नरकगतिविषै दुःख है, ताकूं छह गाथानिकरि कहै हैं—

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं ।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अण्णदुक्खेहिं ॥ ३४ ॥

पापोदयेन नरके जायते जीवः सहते बहुदुःखं ।
पञ्चप्रकारं विविधं अनौपम्यं अन्यदुःखैः ॥ ३४ ॥

भावार्थ—यह जीव पापके उदयकरि नरकविषै उपजै है तहां अनेकभांतिके पंचप्रकारकरि उपमातैं रहित ऐसें बहुत दुःख सहै है. भावार्थ— जो जीवनिकी हिंसा करै है, झूंठ बोलै है, परधन हरै है, परनारि तकै है, बहुत आरंभ करै है, परिग्रहविषै आशक्त होय हैं, बहुत क्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, अतिकठोर भाषी, पापी, चुगल, कृपण, देवशास्त्रगुरुका निंदक, अधम, दुर्बुद्धि, कृतघ्नी, बहु शोक दुःख करनेहीकी प्रकृति जाकी, ऐसा होय सो जीव, मरिकरि नरकविषै उपजै है, अनेक प्रकार दुःखकूं सहै है ।

आगैं ऊपरि कहे जे पंचप्रकार दुःख तिनिकूं कहै है,—

असुरोदीरियदुक्खं सारीरं माणसं तहा विविहं ।
खित्तुब्भुवं च तिव्वं अण्णोण्णकयं च पंचविहं ॥ ३५ ॥

असुरोदीरितदुःखं शारीरं मानसं तथा विविधं ।
क्षेत्रोद्भवं च तीव्रं अन्योऽन्यकृतं च पञ्चविधं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—असुरकुमार देवनिकरि उपजाया दुःख, बहुरि शरीरहीकर निपज्या, बहुरि मनकरि भया, तथा अनेकप्रकार क्षेत्रसौं उपज्या, बहुरि परस्पर किया हुवा ऐसैं पांच प्रकार दुःख हैं. भावार्थ— तीसरे नरकतांई तौ असुरकुमार देव कुतूहलमात्र जाय हैं, सो नारकीनकों देखि परस्पर लड़ावै है. अनेकप्रकार दुःखी करै हैं. बहुरि नारकीनका शरीरही पापके उदयतैं स्वयमेव अनेक रोगनिसहित बुरा घिनावना दुःखमयी होय हैं. बहुरि चित्त जिनके महाक्रूर दुःखरूपही होय हैं. बहुरि नरकक्षेत्र महाशीत उष्ण दुर्गन्ध अनेक उपद्रवसहित है. बहुरि परस्पर वैरके संस्कारतैं छेदन भेदन मारन ताड़न कुंभीपाक आदि करै हैं. वहांका दुःख उपमारहित है.

आगैं याही दुःखका विशेष कहै हैं,—

छिज्जइ तिलतिलमित्तं भिंदिज्जइ तिलतिलं तरं सयलं।
वज्जग्गिए कढिज्जइ णिहिप्पए पूयकुंडह्मि ॥ ३६ ॥

छिद्यते तिलतिलमात्रं भिद्यते तिलतिलं तरां सकलं ।
वज्राग्निना क्वथ्यते निक्षिप्यते पूयकुण्डे ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—जहां तिलतिलमात्र छेदिये हैं बहुरि शकल कहिये खंड तिनकूंभी तिलतिलमात्र भेदिये हैं. बहुरि वज्राग्निविषै पचाइये हैं. बहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है ।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयह्मि ।
तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहस जीहो पि ॥ ३७ ॥

इत्येवमादिदुःखं यत् नरके सहते एकसमये ।
तत्सकलं वर्णयितुं न शक्नोति सहस्रजिह्वः अपि ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—इति कहिये ऐसैं एवमादि कहिये पूर्व गाथामें कहे तिनकूं आदि देकरि जे दुःख, ते नरकविषै एक काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाके ह-

जार जीभ होय सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ– या गाथामें नरकके दुःखनिका वचन अगोचरपणा कह्या है ।

बहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम दुःखमयीही हैं.

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं।
कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होंति णेरइया ॥ ३८ ॥

सर्वं अपि भवति नरके क्षेत्रस्वभावेन दुःखदं अशुभं ।
कुपिताः अपि सर्वकालं अन्योऽन्यं भवन्ति नैरयिकाः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ–नरकविषै क्षेत्र स्वभावकरि सर्वही कारण दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. बहुरि नारकी जीव सदा काल परस्पर क्रोधरूप हैं. भावार्थ–क्षेत्र तो स्वभावकर दुःखरूप हैही. बहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हूवा संता वह वाकूं मारै वह वाकूं मारै है. ऐसें निरंतर दुःखीही रहै हैं ।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ अइ कुविदो ।
एवं तिव्वविवागं बहुकालं विसहते दुःखं ॥ ३९ ॥

अन्यभवे यः स्वजनः सः अपि च नरके हन्ति अतिकुपितः ।
एवं तीव्रविपाकं बहुकालं विसहते दुःखं ॥ ३९ ॥

भाषार्थ–पूर्व भवविषै जो स्वजन कुटंबका था, सोभी या नरकविषै क्रोधी हुवा घात करै है. या प्रकार तीव्र है. विपाक जाका ऐसा दुःख बहुत कालपर्यंत नारकी सहै है. भावार्थ–ऐसे दुःख सागरांपर्यन्त सहै है आयु पूरी कियेविना तहांतैं निकसना न हो है ।

आगें तिर्यञ्चगतिसंबन्धी दुःखनिको ४॥ गाथानकरि कहै हैं.—

तत्तो णीसरिऊणं जायदि तिरएसु बहुवियप्पेसु ।
तत्थ विपावदि दुःखं गब्भे वि य छेयणादीयं॥४०॥

ततः निःसृत्य जायते तिर्यक्षु बहुविकल्पेषु ।
तत्र अपि प्राप्नोति दुःखं गर्भे अपि च छेदनादिकं ॥ ४० ॥

भाषार्थ–तिस नरकतैं नीसरिकरि अनेक भेद भिन्न जे तिर्यंच, तिनिविषै उपजै है. तहांभी गर्भविषै दुःख पावै है. अपि शब्दतैं सन्मूर्छन होय छेदनादिकका दुःख पावै है ।

तिरिएहिं खज्जमाणो दुट्ठमणुस्सेहिं हण्णमाणो वि ।
सव्वत्थ वि संतट्ठो भय दुक्खं विसहदे भीमं ॥ ४१ ॥

तिर्यग्भिः खाद्यमानः दुष्टमनुष्यैः हन्यमानः अपि ।
सर्वत्र अपि संत्रस्तः भयं दुःखं विसहते भीमं ॥ ४१ ॥

भाषार्थ–तिस तिर्यंचगतिविषै जीव सिंहव्याघ्रादिककरि भख्या हूवा तथा दुष्टमनुष्य म्लेच्छ व्याधधीवरादिककरि मास्या हूवा सर्व जायगां त्रास युक्त हूवा रौद्रभयानक दुःखकूं विशेष करि सहै है ।

अण्णुण्णं खज्जंता तिरिया पावंति दारुणं दुक्खं ।
माया वि जत्थ भक्खदि अण्णो को तत्थ रक्खेदि ॥ ४२ ॥

अन्योऽन्यं खाद्यमानाः तिर्यञ्चः प्राप्नुवन्ति दारुणं दुःखं ।
माता अपि यत्र भक्ष्यति अन्यः कः तत्र रक्षति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ–जिस तिर्यञ्चगतिविषै जीव परस्पर खाया हूवा उत्कृष्ट दुख पावै है. वह वाकूं खाय वह वाकूं खाय जहां जिसके गर्भमें उपज्या ऐसी माता भी पुत्रकूं भक्षण कर जाय तौ अन्य कौन रक्षा करै ? ।

तिव्वतिसाए तिसिदो तिव्वविभुक्खाइ भुक्खिदो संतो ।
तिव्वं पावदि दुक्खं उयरहुयासेहिं डज्झंतो ॥ ४३ ॥

तीव्रतृषया तृषितः तीव्रबुभुक्षया भुक्षितः सन् ।
तीव्रं प्राप्नोति दुःखं उदरहुताशेः दह्यन ॥ ४३ ॥

भाषार्थ–तिस तिर्यंचगतिविषै जीव तीव्र तृषाकरि तिसाया तीव्रक्षुधाकर भूखासता उदराग्निकरि जलता तीव्र दुःख पावै है ।

आगें इसको संकोचै है,—

एवं बहुप्पयारं दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तो णीसरऊणं लद्धि अपुण्णो णरो होइ ॥ ४४ ॥

एवं बहुप्रकारं दुःखं विसहते तिर्यग्योनिषु ।
ततः निःसृत्य लब्धि-अपूर्णः नरः भवति ॥ ४४ ॥

भाषार्थ–ऐसें पूर्वोक्तप्रकार तिर्यंचयोनिविषै जीव अनेक प्रकार दुखकूं पावै है ताहि सहै है. तिस तिर्यञ्चगतितैं नीसर मनुष्य होय तौ कैसा होय लब्धि अपर्याप्त जहां पर्याप्तपूरे ही न होय ।

अब मनुष्यगतिविषै दुःख है तिनकूं बारह गाथानि करि कहै हैं,–

सो प्रथम ही गर्भविषै उपजै ताकी अवस्था कहै हैं—

अह गब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवडीकयंगपच्चंगो ।
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणीदो ॥ ४५ ॥

अथ गर्भे अपि च जायते तत्र अपि निवडीकृतानि अङ्गप्रत्यङ्गानि ।
विसहते तीव्रं दुःखं निर्गममानः अपि योनितः ॥ ४५ ॥

भावार्थ—अथवा गर्भविषै भी उपजै तो तहां भी भेले सकुचि रहे हैं हस्त-पादादि अंग तथा अंगुली आदि प्रत्यंग जाके ऐसा हूवा संता दुःख सहै है. बहुरि योनितैं नीसरा तीव्र दुःखकूं सहै है ।

बहुरि कैसा होय सो कहै है,—

वालो पि पियरचत्तो परउच्छिट्ठेण वड्ढदे दुहिदो ।
एवं जायणसीलो गमेदि कालं महादुक्खं ॥ ४६ ॥

बालः अपि पितृत्यक्तः परोच्छिष्टेन वर्द्धते दुःखितः ।
एवं याचनाशीलः गमयति कालं महादुःखम् ॥ ४६ ॥

भावार्थ—गर्भतैं नीसर्यां पीछैं बाल अवस्थामें ही माता पिता मर जाय तब पराई औंठिकरि (उच्छिष्टसे) वध्या संता मागणेहीका स्वभावजाका ऐसे दुःखी हुवा संता काल गमावै है ।

बहुरि कहै है यह पापका फल है,—

पावेण जणो एसो दुक्कम्मवसेन जायदे सव्वो ।
पुनरवि करेदि पावं ण य पुण्णं को वि अज्जेदि ॥ ४७ ॥

पापेन जनः एषः दुःकर्मवशेन जायते सर्वः ।
पुनः अपि करोति पापं न च पुण्यं कः अपि अर्जयति ॥ ४७ ॥

भावार्थ—यह लोक जन सर्वही पापके उदयतैं असाता वेदनीय नीच गोत्र अशुभ नाम आयुः दुःकर्म ताके वशतैं ऐसं दुःख सहै है. तोऊ फेरि पाप ही करै है. पूजा दान व्रत तप ध्यानादि लक्षण पुण्यको नाहीं उपजावै है. यह बडा अज्ञान है ।

विरलो अज्जदि पुण्णं सम्मादिट्ठी वएहिं संजुत्तो ।
उवसमभावे सहियो णिंदणगरहाहि संजुत्तो ॥ ४८ ॥

विरलः अर्जयति पुण्यं सम्यग्दृष्टिव्रतैः संयुक्तः ।
उपशमभावेन सहितः निन्दनगर्हाभ्यां संयुक्तः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि कहिये यथार्थ श्रद्धावान बहुरि मुनि श्रावकके व्रतनिकरि सहित, तथा उपशम भाव कहिये मंद कषायरूप परिणाम, तथा निंदन कहिये अपने दोष आपही यादि करि पश्चात्ताप करना, गर्हण कहिये अपने दोष गुरुजनके निकट कहणा इनि दोऊनिकरि संयुक्त ऐसा जीव पुण्यप्रकृतिनकूं उपजावै है. सो ऐसा विरला ही है ।

आगें कहै हैं पुण्ययुक्तकै भी इष्टवियोगादि देखिये है ।

पुण्णजुदस्स वि दीसइ इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोयं ।
भरहो वि साहिमाणो परिज्जओ लहुयभायेण ॥ ४९ ॥

पुण्ययुतस्य अपि दृश्यते इष्टवियोगः अनिष्टसंयोगः ।
भरतः अपि साभिमानः पराजितः लघुकभ्रात्रा ॥ ४९. ॥

भाषार्थ–पुण्यउदयसहित पुरुषकै भी इष्टवियोग अनिष्टसंयोग देखिये है. देखो अभिमानसहित भरत चक्रवर्त्ति भी छोटाभाई जो बाहुबली तासूं हार्यो. भावार्थ–कोऊ जानैगा कि जिनिकै बडा पुण्यका उदय है तिनिकूं तो सुख है सो संसारमें तो सुख काहूकूं भी नाहीं. भरत चक्रवर्त्तिसारिखे भी अपमानादिकरि दुःखी ही भये तौ औरनिकी कहा बात?

आगें याही अर्थको दृढ करै है–

सयलट्ठविसहजोओ बहुपुण्णस्स वि ण सव्वदो होदि ।
तं पुण्णं पि ण कस्स वि सव्वं जे णिच्छिदं लहदि ॥ ५० ॥

सकलार्थविषययोगः बहुपुण्यस्य अपि न सर्वत्र भवति ।
तत् पुण्यं अपि न कस्य अपि सर्वं येन निश्चितं लभते ॥ ५० ॥

भाषार्थ–या संसारमें समस्त जे पदार्थ, तेई भये विषय कहिये भोग्य वस्तु, तिनिका योग बडे पुण्यवानकूं भी सर्वांगपणै नाही मिलै है. ऐसा पुण्य ही नाही है जाकरि सर्व ही मनोवांछित मिलै. भावार्थ– बडे पुण्यवानकै भी बांछित वस्तुमें किछु कमती रहै, *सर्व मनोरथ तो काहूके पूरै नाहीं तब सर्व सुखी काहेतैं होय?*

आगें कहै हैं सर्व सामग्री पायबो दुर्लभ है ताका विशेष कहै हैं–

कस्स वि णत्थि कलत्तं अहव कलत्तं ण पुत्तसंपत्ती ।
अह तेसिं संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥ ५१ ॥

कस्य अपि नास्ति कलत्रं अथवा कलत्रं न पुत्रसम्प्राप्तिः ।
अथ तेषां सम्प्राप्तिः तथापि सरोगः भवेत् देहः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ–कोई मनुष्यकै तो स्त्री नाहीं है. कोई कै जो स्त्री है तौ पुत्रकी प्राप्ति नाही है. कोईकै पुत्रकी प्राप्ति है तो शरीर रोगसहित है ।

अह णीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय सम्पत्ति ।
अह धणधण्णं होदि हु तो मरणं झत्ति ढुक्केइ ॥ ५२ ॥

अथ नीरोगः देहः तत् धनधान्यानां नैव सम्प्राप्तिः ।
अथ धनधान्यं भवति खलु तत् मरणं झगिति ढौकते ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—जो कोईकै नीरोग देह भी हो तो धन धान्यकी प्राप्ति नाहीं है. जो धनधान्यकी भी प्राप्ति हो जाय तौ शीघ्र मरण होय जाय है ।

कस्स वि दुट्ठकलित्तं कस्स वि दुव्वसणवसणिओ पुत्तो ।
कस्स वि अरिसमबंधू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ॥ ५३ ॥

कस्य अपि दुष्टकलत्रं कस्य अपि दुर्व्यसनव्यसनिकः पुत्रः ।
कस्य अपि अरिसमबन्धुः कस्य अपि दुहिता अपि दुश्चरित्रा ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—या मनुष्यभवमें कोईकै तो स्त्री दुराचारिणी है. कोईकै पुत्र जूवा आदिक व्यसनोंमें रत है, कोईकै शत्रुसमान कलही भाई है. कोईकै पुत्री दुराचारिणी है ।

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि महिला विणस्सदे इट्ठा ।
कस्स वि अग्गिपलित्तं गिहं कुडंबं च डज्झेइ ॥ ५४ ॥

कस्य अपि म्रियते सुपुत्रः कस्य अपि वनिता विनश्यते इष्टा ।
कस्य अपि अग्निप्रलिप्तं गृहं कुटुंबं च दह्यति ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—कोईकै तो भला पुत्र मरि जाय है कोईकै इष्ट स्त्री मरिजाय है. कोईकै घर कुटंब सर्व ही अग्नि करि बलिजाय है ।

एवं मणुयगदीए णाणा दुक्खाइं विसहमाणो वि ।
ण वि धम्मे कुणदि मइं आरंभं णेय परिचयइ ॥ ५५ ॥

एवं मनुजगत्यां नानादुःखानि विसहमानः अपि ।
न अपि धर्मे करोति मतिं आरम्भं नैव परित्यजति ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार मनुष्य गतिविषै नाना प्रकार दुःखनिकूं सहता भी यहु जीव धर्मविषै बुद्धि नांही करै है. पापारंभकूं नाहीं छोडै है. ।

सधणो वि होदि णिधणो धणहीणो तह य ईसरो होदि ।
राया वि होदि भिच्चो भिच्चो वि य होदि णरणाहो ॥ ५६ ॥

सधनः अपि भवति निधनः धनहीनः तथा च ईश्वरः भवति ।
राजा अपि भवति भृत्यः भृत्यः अपि च भवति नरनाथः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—धनसहित तौ निर्धन होय है तैसैं ही निर्धन होयसो ईश्वर[1] होजाय

---

(१) धनवान.

है. बहुरि राजा होय सो तो किंकर होय जाय है. बहुरि किंकर होय सो राजा होय जाय है।

सत्तू वि होदि मित्तो मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्मविवायवसादो एसो संसारसब्भावो ॥ ५७ ॥

शत्रुः अपि भवति मित्रं मित्रं अपि च जायते तथा शत्रुः।
कर्मविपाकवशात एषः संसारसद्भावः ॥ ५७ ॥

भाषार्थ–कर्मके उदयके वशतैं वैरी होय सो तौ मित्र होय जाय है. बहुरि मित्र होय सो वैरी होय जाय है. यहु संसारका स्वभाव है. भावार्थ–पुण्यकर्मके उदयतैं वैरी भी मित्र होय जाय अर पापकर्मके उदयतैं मित्र भी शत्रु होय जाय. संसारमें कर्म ही बलवान है।

आगें देवगतिका स्वरूप कहै हैं।

अह कहवि हवदि देवो तस्स य जायेदि माणसं दुक्खं।
दट्ठूण महड्ढीणं देवाणं रिद्धि संपत्ती ॥ ५८ ॥

अथ कथमपि भवति देवः तस्य च जायते मानसं दुःखं।
दृष्ट्वा महर्द्धीनां देवानां ऋद्धिसम्प्राप्तिं ॥ ५८ ॥

भाषार्थ–अथवा बडा कष्ट करि देवपर्याय भी पावै तौ ताकै भी बडे ऋद्धिके-धारक देवनिकी ऋद्धि सम्पदा देखिकरि मानसीक दुःख उपजै है।

इट्ठविओगं दुक्खं होदि महड्ढीण विसयतण्हादो।
विसयवसादो सुक्खं जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥ ५९ ॥

इष्टवियोगं दुःखं भवति महर्द्धीनां विषयतृष्णातः।
विषयवशात् सुखं येषां तेषां कुतः तृप्तिः ॥ ५९. ॥

भाषार्थ–महर्द्धिक देवनकै भी इष्ट, ऋद्धि देवांगनादिकका वियोग होय है, तासंबंधी दुःख होय हैं. जिनकै विषयनिकै आधीन सुख है तिनकै काहेतैं तृप्ति होय? तृष्णा वधती ही रहै।

आगै शारीरिक दुःखतैं मानसीक दुःख बडा है ऐसें कहै हैं।

सारीरियदुक्खादो माणसदुक्खं हवेइ अइपउरं।
माणसदुक्खजुदस्स हि विसया वि दुहावहा हुंति ॥ ६० ॥

शारीरिकदुःखात् मानसदुःखं भवति अतिप्रचुरम्।
मानसदुःखयुतस्य हि विषयाः अपि दुःखावहाः भवन्ति ॥ ६० ॥

भाषार्थ–कोई जानैगा शरीरसंबंधी दुःख बडा है मानसीक दुःख तुच्छ है, ताकूं कहै है, शारीरिक दुःखतैं मानसीक दुःख अति प्रचुर है बडाहै. देखो! मानसीक दुःख सहित पुरुषकै अन्यविषय बहुत भी होय तौ दुःखके उपजावनहारे दीसै. भावार्थ– मनकी चिंता होय तब सर्व ही सामग्री दुःखरूप भासै।

देवाणं पि य सुक्खं मणहरविसएहिं कीरदे जदि ही ।
विषयवसं जं सुक्खं दुक्खस्स वि कारणं तं पि ॥ ६१ ॥

देवानां अपि च सुखं मनोहरविषयैः क्रियते यदि हि ।
विषयवशं यत्सुखं दुःखस्य अपि कारणं तत् अपि ॥ ६१ ॥

भाषार्थ–प्रगटपणै जो देवनिकै मनोहर विषयनिकरि सुख विचारिये तौ सुख नाहीं है. जो विषयनिकै आधीन सुख है सो दुःखहीका कारण है. भावार्थ–अन्यनिमित्ततैं सुख मानिये सो भ्रम है जो वस्तु सुखका कारण मानिये है सो ही वस्तु कालान्तरमें दुःखकूं कारण होय है।

आगे ऐसैं विचार किये कहूं भी सुख नाहीं ऐसा कहै हैं.

एवं सुट्ठु-असारे संसारे दुक्ख सायरे घोरे ।
किं कत्थ वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो ॥ ६२ ॥

एवं सुष्ठु-असारे संसारे दुःखसागरे घोरे ।
किं कुत्र अपि अस्ति सुखं विचार्यमाणं सुनिश्चयतः ॥ ६२ ॥

भाषार्थ–ऐसें सर्व प्रकार असार जो यहु दुःखका सागर भयानक संसार, ताविषै निश्चयथकी विचार कीजिये तौ किछू कहूं सुख है? अपि तु नाहीं है. भावार्थ–चारगतिरूपसंसार है तहां चारि ही गति दुःखरूप है, तब सुख कहां?

आगें कहै हैं-जो यहु जीव पर्यायबुद्धि है जिस योनिमैं उपजै तहां ही सुख मानले है.

दुक्कियकम्मवसादो राया वि य असुइकीड़ओ होदि ।
तत्थेव य कुणइ रइं पेक्खह मोहस्स माहप्पं ॥ ६३ ॥

दुःकृतकर्मवशात् राजा अपि च अशुचिकीटकः भवति ।
तत्र एव च करोति रतिं प्रेक्षध्वं मोहस्य माहात्म्यम् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ–भो प्राणी हो तुम देखो मोहका माहात्म्य, कि पापके वशतैं राजा भी मरकरि विष्टाका कीड़ा जाय उपजै है सो तहांही रति मानै है क्रीड़ा करै है।

आगें कहै हैं कि या प्राणीकै एक ही भवविषै अनेक संबंध होय है.

पुत्तो वि भाओ जाओ सो वि य भाओ वि देवरो होदि।
माया होइ सवत्ती जणणो वि य होइ भत्तारो ॥ ६४ ॥
एयम्मि भवे एदे संबंधा होंति एय जीवस्स ।
अण्णभवे किं भण्णइ जीवाणं धम्मरहिदाणं ॥ ६५ ॥

पुत्रः अपि भ्राता जातः सः अपि च भ्राता अपि देवरः भवति ।
माता भवति सपत्नी जनकः अपि च भवति भर्ता ॥ ६४ ॥
एकस्मिन् भवे एते सम्बन्धाः भवन्ति एकजीवस्य ।
अन्यभवे किं भण्यते जीवानां धर्मरहितानाम् ॥ ६५ ॥

भावार्थ–एक जीवकै एक भवविषै एता संबन्ध होय है तौ धर्मरहित जीवनिकै अन्य भवविषै कहा कहिये? ते संबन्ध कौन कौन सो कहिये हैं. पुत्र तौ भाई हूवा बहुरि सो भाई था सो ही देवर भया. बहुरि माता थी सो सौकि भई. बहुरि पिता था सो भरतार हुवा. एता सम्बन्ध वसन्ततिलका वेश्याके अरु धन देवकै अरु कमलाके अरु वरुणकै हूवा तिनिकी कथा ग्रंन्थान्तरतैं लिखिये है.

एक ही भवमें अठारह नातेकी कथा.

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन. तहां सुदत्तनाम श्रेष्ठी वसै. सो सोलह कोटि द्रव्यको धनी. सो बसन्ततिलकानाम वेश्यासूं आशक्त होय ताहि घरमें घाली. सो गर्भवती भई. तब रोगसहित देहभई. तब घरमेंसूं काढि दई. बसन्ततिलका आपके घरहीमें पुत्र पुत्रीको जुगल जायो सो वेश्या खेद खिन्न हो, तिनि दोऊ बालकनिकूं जुदे जुदे रत्नकम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण दरवाजे क्षेपी. सो तहां प्रयागनिवासी विणजारे लेकर अपनी स्त्रीको सौंपी. कमला नाम धर्‍यो। बहुरि पुत्रको उत्तर दिशाके दरवाजै खेप्यो. तहां साकेतपुरके एक सुभद्रनाम विणजारैने अपनी स्त्री सुव्रताको सौंप्यो. धनदेव ताको नाम धर्‍यो. बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव अर कमलाके साथ विवाह हूवो. स्त्री भरतार भया. पीछें धनदेव विणज निमित्त उज्जयिनी नगरी गया. तहां बसन्ततिलका वेश्यासूं लुब्ध हूवा. तब ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाकै पुत्र हूवा. 'वरुण' नाम धर्‍या. बहुरि एक दिवस कमला मुनिनैं सम्बन्ध पूछ्या. मुनिने याका सर्व सम्बन्ध कह्या.

(१) अपने पतिकी दूसरी स्त्री.

इनका पूर्वभववर्णन.

इसी उज्जयिनी नगरीविषै सोमशर्म्मानामा ब्राह्मण, ताकै काश्यपी नामा स्त्री, तिनकै अग्निभूत सोमभूत नाम दोय पुत्र हुया. ते दोऊं कहींतैं पढकर आवते हुते. मार्गमें जिनदत्तमुनिको ताकी माता जो जिनमनी नामा आर्जिकाकूं शरीर समाधान पूछती देखी–बहुरि जिनभद्रनामा मुनिकूं सुभद्रानामा अर्यिका पुत्रकी बहू थी सो शरीर समाधान पूछती देखी–तहां दोऊ भाईने हास्य करी कि तरुणकै तौ वृद्ध स्त्री. अरु वृद्धकै तरुणी स्त्री–विधाता आछ्या विपरीत रच्या. सो हास्यके पापतैं सोमशर्मा तो वसन्ततिलका हुई. बहुरि अग्निभूति सोमभूति दोनूं भाई मरकरि बसन्ततिलकाके पुत्र पुत्री युगल भये- । तिनने कमला अरु धनदेव नाम पाया. बहुरि काश्यपी ब्राह्मणी वसन्ततिलकाकै धनदेवके संयोगतैं बरुण नाम पुत्र हुवा. ऐसैं सर्व सम्बन्ध सुणकरि कमलाकों जातिस्मरण हूवा, तब उज्जयिनी नगरीविषै बसन्ततिलकाके घर गई. तहां वरुण पालणै झूलै था, ताकूं कहती भई. कि हे बालक ! तेरे साथ मेरे छै नाते हैं सो सुणि–

१ । मेरा भरतार जो धनदेव ताके संयोगतैं तू हुवा सो मेरा भी तू (सोतेला) पुत्र है.

२ । बहुरि धनदेव मेरा सगा भाई है, ताका तू पुत्र, तातैं मेरा भतीजा भी है.

३ । तेरी माता बसन्ततिलका, सो ही मेरी माता है यातैं मेरा भाई भी है.

४ । तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई है, तातैं मेरा देवर भी है.

५ । धनदेव, मेरी माता बसन्ततिलकाका भरतार है, तातैं धनदेव मेरा पिता भया. ताका तू छोटा भाई है, तातैं मेरा काका (चचा) भी है.

६ । मैं बसन्ततिलकाकी शोकि (सौतिन) तातैं धनदेव मेरा पुत्र (सोतीला पुत्र) ताका तू पुत्र तातैं मेरा पोता भी है.

या प्रकार वरुणके साथ छह नाता कहती हुती सो बसन्ततिलका तहां आई और कमलाकूं बोली कि तू कौन है जो मेरे पुत्रसूं या प्रकार ६ नाता सुनावै है ? तब कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छै नाते हैं सो सुणि–

१ । प्रथम तो तू मेरी माता है-क्योंकि मैं धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हूं.

२ । धनदेव मेरा भाई, उसकी तू स्त्री, तातैं मेरी भावज (भौजाई) है.

३ । तू मेरी माता, ताका भरतार धनदेव मेरा पिता भया. ताकी तू माता, तातैं मेरी दादी है.

४। मेरा भरतार धनदेव, ताकी तू स्त्री, तातैं मेरी शौकि (सौतिन) भी है.

५। धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र (सौतीला पुत्र) ताकी तू स्त्री, तातैं तू मेरी पुत्रवधू भी है.

६। मैं धनदेवकी स्त्री, तू धनदेवकी माता, तातैं तू मेरी सास भी है.

या प्रकार वेश्या ६ नाते सुनकर चिन्तामें विचारती रही, सो ही तहां धनदेव आया. ताकूं देखकर कमला बोली कि तुमारे साथ भी मेरे ६ नाते हैं सो सुणो.

१। प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसूं युगल उपज्या सो मेरा भाई है.

२। पीछें तेरा मेरा विवाह हो गया सो तू मेरा पति है.

३। वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातैं मेरा पिता भी है।

४। वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता तातैं काका पिता होनेतैं मेरा तू दादा भी भया.

५। मैं वसन्ततिलकाकी सौकि-अर तू मेरी सौकिका पुत्र तातैं मेराभी तू पुत्र है।

६। तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वेश्या मेरी सास भई, बहुरि सासके तुम भरतार, तातैं मेरे ससुर भी भये. (१)

या प्रकार एकही भवमें एकही प्राणीके अठारह नाता भया. ताका उदाहरण कहा. यह संसारकी विचित्र विडंबना है. यामें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

आगें पांचप्रकार संसारके नाम कहे हैं,—

संसारो पंचविहो दव्वे खेत्ते तहेव काले य।
भवभमणो य चउत्थो पंचमओ भावसंसारो॥ ६६ ॥

संसार पञ्चविधः द्रव्ये क्षेत्रे तथैव काले च।
भवभ्रमणः च चतुर्थः पञ्चमकः भावसंसारः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—संसार कहिये परिभ्रमण सो पंचप्रकार है. द्रव्ये कहिये पुद्गल द्रव्यविषै ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण. बहुरि क्षेत्रे कहिये आकाशके प्रदेशनिविषै स्पर्शनेरूप परि भ्रमण. बहुरि काले कहिये कालके समयनिविषै उपजने

(१) यह अठारहनातेकी कथा ग्रंथान्तरसे लिखी गई है यथा—

बालय हि सुणि सुवयणं तुज्झ सरिस्सा हि अट्ठदहणत्ता।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पत्तिय हु पौत्तज्ज॥ १ ॥
तुहु पियरो मुहुपियरो पियामहो तहय हवइ भत्तारो।
भायउ तहावि पुत्तो ससुरो हवइ बालयो मज्झ ॥ २ ॥
तुहु जणणी हुइ भज्जा पियामही तह य मायरी सवई।
हवइ वहू तह सासू ए कहिया अट्ठदहणत्ता ॥ ३ ॥

विनसनेरूप परिभ्रमण. बहुरि तैसें ही भव कहिये नारकादि भवका ग्रहण त्यजनरूप परि भ्रमण. बहुरि भाव कहिये अपने कषाययोगनिका स्थानकरूप जे भेद तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण. ऐसे पंच प्रकार संसार जानना.

आगें इनिका स्वरूप कहै हैं. प्रथम ही द्रव्य परिवर्त्तनकूं कहै हैं।

वंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा ।
णोकम्मपुग्गला वि य मिच्छत्तकसायसंजुत्तो ॥ ६७ ॥

बध्नाति मुञ्चति जीवः प्रतिसमयं कर्मपुद्गलान् विविधान् ।
नोकर्मपुद्गलान् अपि च मिथ्यात्वकषायसंयुक्तः ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—यह जीव या लोकविषै तिष्ठते जे अनेक प्रकार पुद्गल तिनिकों ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूपकरि समयसमयप्रति मिथ्यात्वकषायनिकरि संयुक्त हूवा संता वांधै है तथा छोडै है. **भावार्थ**—मिथ्यात्व कषायके वश करि ज्ञानावरणादि कर्मका समयप्रबद्ध अभव्यराशितैं अनन्तगुणा सिद्धरासिके अनन्तवें भाग पुद्गलपरमाणुनिका स्कन्धरूप कार्माणवर्गणाकूं समयसमयप्रति ग्रहण करै है. बहुरि पूर्वें ग्रहे थे ते सत्तामें हैं, तिनमेंसों येते ही समयसमय क्षरै है। बहुरि तैसें ही औदारिकादि शरीरनिका समयप्रबद्ध शरीरग्रहणके समयतैं लगाय आयुकी स्थितिपर्यन्त ग्रहण करै है वा छोडै है. सो अनादि कालतैं लेकरि अनन्तवार ग्रहण करना वा छोडना हो है. तहां एक परिवर्त्तनका प्रारंभविषै प्रथमसमयमें समयप्रबद्धविषै जेते पुद्गल परमाणु जैसे स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध रूप रस तीव्र मंद मध्यम भाव करि ग्रहे होंय तेते ही तैसें ही कोई समयविषै फेरि ग्रहणमें आवै तब एक कर्म परावर्त्तन तथा नोकर्मपरावर्त्तन होय. बीचिमें अनन्तवार औरभांतिके परमाणू ग्रहण होय ते न गिणिये. जैसेके तैसे फेर ग्रहणकूं अनन्ता काल वीतै, ताकूं एक द्रव्यपरावर्त्तन कहिये. ऐसें या जीवने या लोकविषै अनन्ता परावर्त्तन किये।

आगें क्षेत्रपरिवर्त्तन कहै हैं—

सो को वि णत्थि देसो लोयायासस्स णिरवसेसस्स ।
जत्थ ण सव्वो जीवो जादो मरिदो य बहुवारं ॥ ६८ ॥

सः कः अपि नास्ति देशः लोकाकाशस्य निरवशेषस्य ।
यत्र न सर्वः जीवः जातः मृतः च बहुवारम् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—या लोकाकाशप्रदेशनिमें ऐसा कोई भी प्रदेश नाहीं है जामैं यह सर्वही संसारी जीव बहुतबार उपज्या तथा मऱ्या नाहीं है। **भावार्थ**—सर्व लोकाकाशका प्रदेशनिविषै यहु जीव अनन्तबार उपज्या अनन्तबार मऱ्या. ऐसा प्रदेश रह्या ही नाही जामें नाहीं उपज्या मऱ्या. इहां ऐसा जानना जो लोकाकाशके प्रदेश असंख्याता हैं. ताके मध्यके आठ प्रदेशकूं बीचि दे, सूक्ष्मनिगोदलब्धिअपर्याप्तिक जघन्य अवगाहनाका धारी उपजै है सो वाकी अवगाहना भी असंख्यात प्रदेश है सो जेते प्रदेश तेती बार तौ वाही अवगाहना तहां ही पावै. बीचिमें और जायगां अन्य अवगाहनातैं उपजै सो गिणतीमें नाही. पीछें एक एक प्रदेश क्रमकरि बधती अवगाहना पावै सो गिणतीमें, सो ऐसें उत्कृष्ट अवगाहना महामच्छकी तांई पूरण करै. तैसें ही क्रमकरि सर्व लोकाकाशके प्रदेशनिकूं परसै तब एक क्षेत्रपरावर्त्तन होय।

आगें कालपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

उवसप्पिणिअवसप्पिणिपढमसमयादिचरमसमयंतं।
जीवो कमेण जम्मदि मरदि य सव्वेसु कालेसु ॥६९॥

उवसर्पिणिअवसर्पिणिप्रथमसमयादिचर्मसमयान्तम्।
जीवः क्रमेण जायते म्रियते च सर्वेषु कालेषु ॥ ६९. ॥

भाषार्थ—उत्सर्पिणी बहुरि अवसर्पिणी कालके पहिले समयतैं लगाय अन्तके समयपर्यन्त यहु जीव अनुक्रमतैं सर्व कालविषै उपजै तथा मरै है. **भावार्थ**—कोई जीव उत्सर्पिणी जो दशकोड़ाकोड़ी सागरका काल ताका प्रथम समयविषै जन्म पावै, पीछें दूसरे उत्सर्पिणीके दूसरे समयविषै जन्मैं, ऐसे ही तीसरेके तीसरे समयविषै जन्मैं, ऐसें ही अनुक्रमतैं अन्तके समयपर्यन्त जन्मैं, बीचिबीचिमें अन्यसमयनिविषै विना अनुक्रम जन्मै सो गिणतीमें नाहीं. ऐसें ही अवसर्पिणीके दशकोड़ा कोड़ी सागरके समय पूरण करै तथा ऐसें ही मरण करै सो यह अनन्त काल होय ताकूं एक कालपरावर्त्तन कहिये।

आगें भवपरिवर्त्तनकूं कहै हैं—

णेरइयादिगदीणं अवरट्ठिदिदो वरट्ठिदी जाव।
सव्वट्ठिदिसु वि जम्मदि जीवो गेवेज्जपज्जंतं ॥ ७० ॥

नैरयिकादिगतीनां अपरस्थितितः वरास्थितिः यावत्।
सर्वास्थितिषु अपि जायते जीवः ग्रैवेयकपर्यन्तम् ॥ ७० ॥

भाषार्थ–संसारी जीव नरक आदि चारि गतिकी जघन्य स्थितितैं लगाय उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त सर्व स्थितिविषै ग्रैवेयकपर्यन्त जन्मै. भावार्थ– नरकगतिकी जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है सो याके जेते समय हैं तेतीबार तौ जघन्यस्थितिकी आयु ले जन्मै. पीछें एक समय अधिक आयु लेकर जन्मै. पीछें दोय समय अधिक आयु ले जन्मै. ऐसें ही अनुक्रमतैं तेतीस सागरपर्यन्त आयु पूरण करै. बीचिबीचिमें घाटि बाधि आयु ले जन्मै तो गिणतीमें नाहीं. ऐसें ही तिर्यंच गतिकी जघन्य आयु अन्तरमुहूर्त्त, ताके जेते समय हैं तेतीबार जघन्य आयुका धारक होय पीछें एक समयाधिकक्रमतैं तीन पल्य पूरण करै. वीचमें घाटि बाधि पावै ते गिणतीमें नाहीं. ऐसें ही मनुष्यकी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट तीनपल्य पूरण करै. ऐसें ही देव गतिकी जघन्य दश हजार वर्षतैं लगाय ग्रैवेयकके उत्कृष्ट इकतीस सागरतांई समयाधिकक्रमतैं पूरण करै. ग्रैवेयकके आगें उपजनेवाला एक दोय भव ले मोक्ष ही जाय, तातैं न गिण्या ऐसें या भवपरावर्त्तनका अनन्त काल है।

आगें भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

परिणमदि सण्णिजीवो विविहकसाएहिं ठिदिणिमित्तेहिं ।
अणुभागणिमित्तेहिं य वट्टंतो भावसंसारो[1] ॥ ७१ ॥

परिणमते संज्ञिजीवः विविधकषायैः स्थितिनिमित्तैः ।
अनुभागनिमित्तैः च वर्द्धमानः भावसंसारः ॥ ७१ ॥

भाषार्थ–भावसंसारविषै वर्त्तता जीव अनेक प्रकार कर्मकी स्थितिबंधकूं कारण बहुरि अनुभागबंधकूं कारण जे अनेक प्रकार कषाय तिनिकरि सैनी पंचेंद्रिय जीव परिणमैं है. भावार्थ– कर्मकी एक स्थितिबंधकूं कारण कषायनिके स्थानक असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तामें एक स्थितिबन्धस्थानमें अनुभागबन्धकूं कारण कषायनिके स्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं. बहुरि योग्यस्थान हैं ते जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग हैं. सो यह जीव तिनिकूं परिवर्त्तन करै है. सो कैसें ? कोई सैनी मिथ्यादृष्टीपर्याप्तकजीव स्वयोग्य सर्व जघन्य ज्ञानावरण प्रकृतिकी स्थिति अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण बांधै, ताके कषायनिके स्थान असंख्यात लोकमात्र हैं. तामें सर्व जघन्यस्थान एकरूप परिणमै, तामें तिस एक स्थानमें अनुभागबंधकूं कारण स्थान ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण हैं. तिनमैंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणमै तहां तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणमै, तब

१ 'भावसंसारे' इति च पुस्तकान्तरे.

जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतें पूरण करै. बीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणमैं सो गिणतीमें नाहीं. ऐसे योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूप परिणमैं, तहां भी तैसें ही योगस्थान सर्व पूरण करै-बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहां भी तेते ही योगस्थान भुगतै. ऐसें असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतें पूरण करै तब दूसरा कषाय. स्थान लेणा. तहां भी तैसें ही क्रमतें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्श्रेणीकैं असंख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसें ही चतुर्थादि असंख्याता लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामैं भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै. ऐसें दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीसकोड़ाकोड़ीसागरपर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसें ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसे परिणमतें अनंत काल वीतै, तिनिकूं भेला कीये एक भावपरिवर्त्तन होय. ऐसें अनन्त परावर्त्तन यह जीव भोगता आया है।

आगें पंचपरावर्त्तनका कथनकूं संकोचै हैं,—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारे।
णाणादुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥ ७२ ॥

एवं अनादिकालं पञ्चप्रकारे भ्रमति संसारे।
नानादुःखनिधाने जीवः मिथ्यात्वदोषेण ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—ऐसें पांच प्रकार संसारविषें यह जीव अनादि कालतैं मिथ्यात्व दोषकरि भ्रमै है. कैसा है संसार अनेक प्रकारके दुःखनिका निधान[1] है।

आगें संसारतें छूटनेका उपदेश करै हैं,—

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण।
तं झायह ससहावं संसरणं जेण णासेइ ॥ ७३ ॥

इति संसारं ज्ञात्वा मोहं सर्वादरेण त्यक्त्वा।
तं ध्यायत स्वस्वभावं संसरणं येन नश्यति ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार संसारकूं जाणि सर्व प्रकार उद्यम करि मोहकूं छोडि करि हे भव्य हो ! तिस आत्मस्वभावकूं ध्यावो जाकरि संसारका भ्रमणका नाश होय।

१ खजाना

दोहा.

पंचपरावर्त्तनमयी, दुःखरूप संसार।
मिथ्याकर्म उदै यहै, भरमै जीव अपार॥ ३॥

इति संसारानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ३॥

अथ एकत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

इक्को जीवो जायदि इक्को गब्भम्मि गिह्लदे देहं।
इक्को बाल जुवाणो इक्को वुड्ढो जरागहिओ॥ ७४॥

एकः जीवः जायते एकः गर्भे गृह्णाति देहं।
एकः बालः युवा एकः वृद्धः जरागृहीतः॥ ७४॥

भाषार्थ–जीव है सो एक ही उपजै है. सो ही एक गर्भविषै देहकूं ग्रहण करै है. सो ही एक बालक होय है. सो ही एक जुवान होय है. सो ही एक वृद्ध जराकरि गृहीत होय है. भावार्थ–एक ही जीव नाना पर्यायनिकूं धारै है।

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे।
इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि॥ ७५॥

एकः रोगी शोकी एकः तप्यति मानसैः दुःखैः।
एकः म्रियते वराकः नरकदुःखं सहति एकः अपि॥ ७५॥

भाषार्थ–एक ही जीव रोगी होय है, सो ही एक जीव शोकसहित होय है. सो ही एक जीव मानसीक दुःखकरि तप्तायमान होय है. सो ही एक जीव मरै है. सो ही एक जीव दीन होय नरकके दुःख सहै है. भावार्थ–जीव अकेला ही अनेक अनेक अवस्थाकूं धारै है।

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं।
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं॥ ७६॥

एकः संचिनोति पुण्यं एकः भुनक्ति विविधसुरसौख्यं।
एकः क्षपति कर्म्म एकः अपि च प्राप्नोति मोक्षम्॥ ७६॥

भाषार्थ–एक ही जीव पुण्यका संचय करै है. सो ही एक जीव देवगतिके सुख भोगवै है. सो ही एक जीव कर्मकी निर्जरा करै है. सो ही एक जीव मो-

क्षकूं पावै है. भावार्थ-सो ही जीव पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय है. सो ही जीव कर्मनाशकर मोक्ष जाय है।

सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं।
एवं जाणंतो वि हु तोवि ममत्तं ण छंडेइ॥ ७७॥

स्वजनः पश्यन्नपि स्फुटं न दुःखलेशं अपि शक्नोति गृहीतुं।
एवं जानन् अपि स्फुटं तदपि ममत्वं न त्यजति॥ ७७॥

भाषार्थ-स्वजन कहिये कुटुंब है सो भी या जीवमें दुःख आवै ताकूं देखता संता भी दुःखका लेश भी ग्रहण करणेकूं असमर्थ होय है. ऐसे जानता भी प्रगटपणै या कुटंबतें ममत्व नाही छोडै है. भावार्थ-दुःख आपका आप ही भोगवै है. कोई बटायसकै नाहीं. या जीवकै ऐसा अज्ञान है जो दुःख सहता भी परके ममत्वकूं नाहीं छोडै है।

आगें कहै हैं या जीवकै निश्चयतें धर्म ही स्वजन है।

जीवस्स णिच्चयादो धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो।
सो णेइ देवलोए सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ॥ ७८॥

जीवस्य निश्चयतः धर्मः दशलक्षणः भवेत् स्वजनः।
सः नयति देवलोके सः एव दुःखक्षयं करोति॥ ७८॥

भाषार्थ-या जीवकै अपना हितू निश्चयतें एक उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ही है. काहेतें? जातें सो धर्म ही देवलोककूं प्राप्त करै है. बहुरि सो धर्म ही सर्व दुःखका नाशरूप मोक्षकूं करै है. भावार्थ-धर्मसिवाय और कोऊ हितू है नाहीं।

आगें कहै हैं ऐसा एकला जीवकूं शरीरतें भिन्न जानहू।

सव्वायरेण जाणह इक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं।
जह्मि दु मुणिदे जीवे होइ असेसं खणे हेयं॥ ७९॥

सर्वादरेण जानीहि एकं जीवं शरीरतः भिन्नं।
यस्मिन् तु ज्ञाते जीवे भवति अशेषं क्षणे हेयं॥ ७९॥

भाषार्थ-भो भव्य हो! तुम जीवकूं शरीरतें भिन्न सर्वप्रकार उद्यमकरि जानहु. जाके जाने अवशेष सर्व परद्रव्य क्षणमात्रमें त्यजने योग्य होय हैं.

भावार्थ–जब अपना स्वरूपकूं जानै, तब परद्रव्य हेय ही भासै, तातैं अपना स्वरूपहीके जाननेका महान उपदेश है ।

दोहा.

एक जीव परजाय बहु, धारैं स्वपर निदान ।
परतजि आपा जानिकैं करो भव्य कल्यान ॥ ४ ॥

इति एकत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ४ ॥

अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

अण्णं देहं गिह्णदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो ।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो ॥ ८० ॥

अन्यः देहं गृह्णाति जननी अन्या च भवति कर्मतः ।
अन्यत् भवति कलत्रं अन्यः अपि च जायते पुत्रः ॥ ८० ॥

भावार्थ–यह जीव संसारविषै देह ग्रहण करै है सो आपतैं अन्य है. बहुरि माता है सो भी अन्य है. बहुरि स्त्री है सो भी अन्य है. बहुरि पुत्र है सो भी अन्य उपजै है. यह सर्व कर्मसंयोगतैं होय है ।

एवं बाहिरदव्वं जाणदि रूवा हु अप्पणो भिण्णं ।
जाणं तो वि हु जीवो तत्थेव य रच्चदे मूढः ॥ ८१ ॥

एवं बाह्यद्रव्यं जानाति रूपात् स्फुटं आत्मनः भिन्नं ।
जानन् अपि स्फुटं जीवः तत्रैव च रज्यति मूढः ॥ ८१ ॥

भावार्थ–ऐसें पूर्वोक्तप्रकार सर्व बाह्यवस्तुकूं आत्मस्वरूपतैं न्यारा जानै है तोऊ प्रगटपणैं जाणता संता भी यह मूढ मोही जीव तिनि परद्रव्यनिविषै ही राग करै है. सो यह बडी मूर्खता है ।

जो जाणिऊण देहं जीवसरूपादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥ ८२ ॥

यः ज्ञात्वा देहं जीवस्वरूपात् तत्त्वतः भिन्नम् ।
आत्मानं अपि च सेवते कार्यकरं तस्य अन्यत्वम् ॥ ८२ ॥

---

१ ' रूवादु ' इत्यपि पाठः

भाषार्थ–जो जीव अपने स्वरूपतें देहकूं परमार्थतें भिन्न जानिकरि आत्म स्वरूपकूं सेवै है, ध्यावै है ताके अन्यत्वभावना कार्यकारी है. भावार्थ–जो देहादिक परद्रव्यकूं न्यारे जानि अपने स्वरूपका सेवन करै है ताके न्यारा-भावना (अन्यत्वभावना) कार्यकारी है।

दोहा.

निज आतमतैं भिन्न पर, जानै जे नर दक्ष।
निजमें रमै वमैं अपर, ते शिव लखैं प्रत्यक्ष॥ ५॥
इति अन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता. ॥ ५ ॥

अथ अशुचित्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

सयलकुहियाण पिंडं किमिकुलकलियं अउव्वदुग्गंधं।
मलमुत्ताणं गेहं देहं जाणेह असुइमयं ॥ ८३ ॥

सकलकुथितानां पिण्डं क्रिमिकुलकलितं अतीवदुर्गन्धं।
मलमूत्राणां गृहं देहं जानीहि अशुचिमयं ॥ ८३ ॥

भाषार्थ–हे भव्य तू या देहकूं अपवित्रमयी जाणि. कैसा है देह? समस्त जे कुत्सित कहिये निंदनीक वस्तु तिनिका पिंड कहिये समूह है. बहुरि कैसा है? क्रिमि कहिये उदरके जीव लट तथा अनेक प्रकार निगोदादिक जीव तिनकरि भऱ्या है. बहुरि अत्यन्त दुर्गन्धमय है. बहुरि मल तथा मूत्रका घर है. भावार्थ–सर्व अपवित्र वस्तुका समूह या देहकूं जाण हू।

आगैं कहै हैं यहु देह अन्य सुगन्ध वस्तुकूं भी संयोगतैं दुर्गंध करै है–

सुट्ठु पवित्तं दव्वं सरससुगंधं मणोहरं जं पि।
देहणिहित्तं[1] जायदि घिणावणं सुट्ठुदुग्गंधं ॥ ८४ ॥

सुष्ठु पवित्रं द्रव्यं सरससुगन्धं मनोहरं यदपि।
देहनिक्षिप्तं जायते घृणास्पदं सुष्ठु दुर्गन्धं ॥ ८४ ॥

भाषार्थ–या देहकैविषै क्षेपे लगाये भले पवित्र सुरस सुगंध मनके हरण हारे द्रव्य, ते भी घिणावणा अत्यन्त दुर्गन्ध होय हैं। भावार्थ–या देहकै चंदन कपूरादिकूं लगाये ते दुर्गन्ध होय जाय, भले मिष्टान्नादि रससहित खाये ते मला-दिकरूप परिणमै. अन्य भी वस्तु या देहके स्पर्शतैं अस्पर्श्य होय जाय है।

१ 'देहणिमित्त' इत्यपि पाठः

बहुरि या देहकूं अशुचि दिखावै हैं—

मणुआणं असुइमयं विहिणा देहं विणिम्मियं जाण ।
तेसिं विरमणकज्जे ते पुण तत्थेव अणुरत्ता ॥ ८५ ॥

मनुजानां अशुचिमयं विधिना देहं विनिर्मितं जानीहि ।
तेषां विरमणकार्ये ते पुनः तत्र एव अनुरक्ताः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य यहु मनुष्यनिका देह कर्मने अशुचि बणाया है, सो यहां ऐसी उत्प्रेक्षा संभावना जाणि, जो इनि मनुष्यनिकूं वैराग्य उपजावनेकै अर्थिही ऐसा रच्या है परंतु ये मनुष्य ऐसे भी देहमें अनुरागी होय हैं सो यह अज्ञान है।

बहुरि याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

एवं विहं पि देहं पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं ।
सेवंति आयरेण य अलद्धपुव्वत्ति मण्णंता ॥ ८६ ॥

एवं विधं अपि देहं पश्यन्तः अपि च कुर्वन्ति अनुरागं ।
सेवन्ते आदरेण च अलब्धपूर्वं इति मन्यमानः ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—ऐसा पूर्वोक्तप्रकार अशुचि देहकूं प्रत्यक्ष देखता भी ये मनुष्य तहां अनुराग करै हैं, जैसैं पूर्वै ऐसे कभी न पाया ऐसा मानते संते आदर हं, याकूं सेवै हैं, सो यह बडा अज्ञान हैं ।

आगें या देहसूं विरक्त हो है ताकै अशुचि भावना सफल है ऐसा कहै हैं—

जो परदेहविरत्तो णियदेहे ण य करेदि अणुरायं ।
अप्पसरूवि सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स ॥ ८७ ॥

यः परदेहविरक्तः निजदेहे न च करोति अनुरागं ।
आत्मस्वरूपे सुरक्तः अशुचित्वे भावना तस्य ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—जो भव्य परदेह जो स्त्री आदिककी देह तातैं विरक्त हुवा संता निज देहविषै अनुराग नाहीं करै है ताके अशुचि भावना सार्थिक होय है. भावार्थ—केवल विचारहीतैं भावना प्रधान नाहीं, देहकूं अशुचि विचारनैतैं वैराग्य प्रगट होय ताकै भावना सत्यार्थ कहिये ।

दोहा.

स्वपरदेहकूं अशुचिलखि. तजै तास अनुराग ।
ताकै सांची भावना, सो कहिये बडभाग ॥ ६ ॥

इति अशुचित्वानुप्रेक्षा समाप्ता. ॥ ६ ॥

अथ आस्रवानुप्रेक्षा लिख्यते ।

मणवयणकायजोया जीवपयेसाणफंदणविसेसा ।
मोहोदएण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति ॥ ८८ ॥

मनवचनकाययोगाः जीवप्रदेशानां स्पन्दनविशेषाः ।
मोहोदयेन युक्ताः वियुताः अपि च आस्रवाः भवन्ति ॥ ८८ ॥

भाषार्थ–मन वचन काययोग हैं ते ही आस्रव हैं । कैसें हैं ते योग ? जीवके प्रदेशनिका जो स्पन्दन कहिये चलणा कंपना तिसके विशेष हैं ते ही योग हैं. बहुरि कैसे हैं ते ? मोहकर्मका उदय जे मिथ्यात्व कषाय तिन कर्म सहित हैं. बहुरि मोहके उदयकरि रहित भी हैं. भावार्थ–मन वचनकायके निमित्त पाय जीवके प्रदेशनिका चलाचल होना सो योग है. तिनिहीकूं आस्रव कहिये. ते गुणस्थानकी परिपाटीविषै सूक्ष्मसाम्प्राय दशमां गुणस्थानताई तो मोहके उदयरूप यथासंभव मिथ्यात्व कषायनिकरि सहित होय है. ताकूं साम्प्रायिक आस्रव कहिये. बहुरि उपरि तेरहवां गुणस्थानतांई मोहके उदयकरि रहित हैं ताकूं ईर्यापथ आस्रव कहिये. जो पुद्गलवर्गणा कर्मरूप परिणमै ताकूं द्रव्यास्रव कहिये. जीवके प्रदेश चंचल होय ताकूं भावास्रव कहिये ।

आगें मोहके उदयसहित आस्रव है तेही आस्रव हैं ऐसा विशेषकरि कहै हैं–

मोहविवागवसादो जे परिणामा हवंति जीवस्स ।
ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥ ८९ ॥

मोहविपाकवशात् ये परिणामा भवन्ति जीवस्य ।
ते आस्रवाः मन्यस्व मिथ्यात्वादयः अनेकविधाः ॥ ८९ ॥

भाषार्थ–मोहकर्मके उदयतैं जे परिणाम या जीवकै होय हैं ते ही आस्रव हैं, हे भव्य तू प्रगटपणें ऐसे जाणि. ते परिणाम मिथ्यात्वनै आदि लेकर अनेक प्रकार हैं. भावार्थ–कर्मबन्धके कारण आस्रव हैं. ते मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ऐसें पांच प्रकार हैं. तिनिमें स्थिति अनुभागरूप बंधकूं कारण मिथ्यात्वादिक च्यारि ही हैं सो ए मोह कर्मके उदयतैं होय हैं. बहुरि योग हैं ते समयमात्र बंधकूं करै हैं. कछू स्थिति अनुभागकूं करै नाहीं तातैं बंधका कारणमें प्रधान नाहीं ।

आगें पुण्यपापके भेदकरि आस्रव दोय प्रकार कहै हैं—

कम्मं पुण्णं पावं हेउं तेसिं च होंति सच्छिदरा ।
मंदकसाया सच्छा तिव्वकसाया असच्छा हु ॥ ९० ॥

कर्म पुण्यं पापं हेतुं तयोः च भवन्ति स्वच्छेतराः ।
मन्दकषायाः स्वच्छाः तीव्रकषायाः अस्वच्छाः स्फुटं ॥ ९० ॥

भाषार्थ—कर्म है सो पुण्य तथा पाप ऐसे दोय प्रकार है. ताकूं कारण भी दो प्रकार है. प्रशस्त अर इतर कहिये अप्रशस्त. तहां मंद कषाय परिणाम ते तौ प्रशस्त हैं शुभ हैं । बहुरि तीव्रकषाय परिणाम ते अप्रशस्त अशुभ हैं. ऐसें प्रगट जानहु. **भावार्थ**—सातावेदिनी शुभआयुः उच्चगोत्र शुभनाम ये प्रकृतियें तो पुण्यरूप हैं, अवशेष चार घातियाकर्म, असातावेदनी, नरकायुः नीचगोत्र अशुभनाम ए प्रकृतियें पापरूप हैं. तिनिकूं कारण आस्रव भी दोय प्रकार हैं. तहां मंदकषायरूप परिणाम तौ पुण्यास्रव है और तीव्रकषायरूप परिणाम पापास्रव हैं।

आगें मंद तीव्रकषायकूं प्रगट दृष्टान्त करि कहै हैं.—

सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं ।
सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता ॥ ९१ ॥

सर्वत्र अपि प्रियवचनं दुर्वचने दुर्जने अपि क्षमाकरणं ।
सर्वेषां गुणग्रहणं मन्दकषायाणां दृष्टान्ताः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—सर्व जायगां शत्रु तथा मित्र आदिविषै तो प्यारा हितरूप वचन और दुर्वचन सुणिकरि दुर्जनविषै भी क्षमा करणा, बहुरि सर्व जीवनिके गुण ही ग्रहण करना, एते मंदकषायनिके उदाहरण हैं ।

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं ।
वेरधरणं च सुइरं तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥ ९२ ॥

आत्मप्रशंसनकरणं पूज्येषु अपि दोषग्रहणशीलत्वं ।
वैरधारणं च सुचिरं तीव्रकषायाणां लिङ्गानि ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—अपनी प्रशंसा करणा पूज्य पुरुषनिका भी दोष ग्रहण करनेका स्वभाव तथा घणे कालतांई वैर धारणा ए तीव्रकषायनिके चिह्न हैं ।

आगें कहै हैं ऐसे जीवके आस्रवका चितवन निर्फल है ।

एवं जाणंतो वि हु परिचयणीये वि जो ण परिहरइ ।
तस्सासवाणुपिक्खा सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥ ९३ ॥

एवं जानन् अपि स्फुटं परित्यजनीयान् अपि यः न परिहरति ।
तस्य आस्रवानुप्रेक्षा सर्वा अपि निरर्थका भवति ॥ ९३ ॥

भाषार्थ–ऐसे प्रगटपणै जानतासंता भी जो त्यजनेयोग्य परिणामनिकूं नाहीं छोडै है ताकै सारा आस्रवका चितवन निरर्थक है, कार्यकारी नाहीं. **भावार्थ**–आस्रवानुप्रेक्षाका चितवन करि प्रथम तौ तीव्रकषाय छोड़णा, पीछैं शुद्ध आत्मस्वरूपका ध्यान करणा, सर्व कषाय छोड़ना, तब यहु चितवन सफल है. केवल वार्त्ता करणेमात्र ही तौ सफल है नाहीं ।

एदे मोहजभावा जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो ।
हेयमिदि मण्णमाणो आसवअणुपेहणं तस्स ॥ ९४ ॥

एतान् मोहजभावान् यः परिवर्जयति उपशमे लीनः ।
हेयं इति मन्यमानः आस्रवानुप्रेक्षणं तस्य ॥ ९४ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष एते पुर्वोक्त मोहके उदयतैं भये जे मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनिकूं छोडै है, कैसा हूवा संता ? उपशम परिणाम जो वीतराग भाव ताविषै लीन हूवा संता तथा इनि मिथ्यात्वादिक भावनिकूं हेय कहिये त्यागनेयोग्य है, ऐसें जानतासंता. ताकै आस्रवानुप्रेक्षा हो है ।

दोहा.

आस्रव पंचप्रकारकूं, चिंतवैं तजैं विकार ।
ते पावैं निजरूपकूं, यहै भावनासार ॥ ७ ॥

इति आस्रवानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ७ ॥

अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सम्मत्तं देसवयं महव्वयं तह जओ कसायाणं ।
एदे संवरणामा जोगाभावो तह च्चेव ॥ ९५ ॥

सम्यक्त्वं देशव्रतं महाव्रतं तथा जयः कषायाणाम् ।
एते संवरनामानः योगाभावः तथा च एव ॥ ९५ ॥

भाषार्थ–सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. **भावार्थ**–पूर्वे आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय योगरूप पंच प्रकार कह्या था, तिनिका अनुक्रमतैं रोकना सो ही संवर है. सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तौ चतुर्थ गुणस्थानविषै भया तहां अ-

विरतका संवर भया. अविरतका अभाव एक देश तौ देशविरतिविषै भया अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. बहुर अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगी जिनविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया. ऐसें संवरका क्रम है.

आगें इसीको विशेष करि कहै हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि ।
उक्किट्ठं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

गुप्तयः समितयः धर्मः अनुप्रेक्षाः तथा परीसहजयः अपि ।
उत्कृष्टं चारित्रं संवरहेतवः विशेषेण ॥ ९६ ॥

भावार्थ—कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणाप्र तिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि बाईस परीसहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंचप्रकार चारित्र एते विशेषकर संवरके कारण हैं ।

आगें इनिको स्पष्ट करि कहै हैं,—

गुत्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिंता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

गुप्तिः योगनिरोधः समितिः च प्रमादवर्जनं चैव ।
धर्मः दयाप्रधानः सुतत्त्वचिन्ता अनुप्रेक्षा ॥ ९७ ॥

भावार्थ—योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतें प्रवर्त्तना सो समिति है. जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है. भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निजस्वरूपका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है ।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण जं सहणं ॥ ९८ ॥

सः अपि परीसहविजयः क्षुधादिपीडानां अतिरौद्राणाम् ।
श्रवणानां च मुनीनां उपशमभावेन यत् सहनम् ॥ ९८ ॥

भावार्थ—जो अति रौद्र भयानक क्षुधा आदि पीड़ा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहनां सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिकै परीसहनिका जीतना कहिये है ।

अप्पसरूवं वत्थुं चत्तं रायादिएहिं दोसेहिं।
सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तमं चरणं ॥ ९९ ॥

आत्मस्वरूपं वस्तुं त्यक्तं रागादिकैः दोषैः।
स्वध्याने निलीनं तत् जानीहि उत्तमं चरणं ॥ ९९ ॥

भावार्थ– जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोषनिकरि रहित धर्मशुक्ल ध्यानविषै लीन होना ताहि भो भव्य तू उत्तम चारित्र जाणि।

आगें कहै हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदुं वियारमाणो वि जो ण आयरइ।
सो भमइ चिरं कालं संसारे दुक्ख संतत्तो ॥ १०० ॥

एतान् संवरहेतून् विचारयन् अपि यः न आचरति।
सः भ्रमते चिरं कालं संसारे दुःखसन्तप्तः ॥ १०० ॥

भावार्थ–जो पुरुष पूर्वोक्तप्रकार संवरके कारणनिकूं विचारतासन्ता भी आचरै नाही है सो दुःखनिकरि तप्तायमान हूवासंता घणे काल संसारमें भ्रमण करै है।

आगें कहै हैं जो कैसे पुरुषके संवर हो है.—

जो पुण विसयविरत्तो अप्पाणं सव्वदा वि संवरई।
मणहरविसयेहिंतो (?) तस्स फुडं संवरो होदि ॥ १०१ ॥

यः पुनः विषयविरक्तः आत्मानं सर्वदा अपि संवृणोति।
मनोहरविषयेभ्यः तस्य स्फुटं संवरः भवति ॥ १०१ ॥

भावार्थ–जो मुनि इन्द्रियनके विषयनितैं विरक्त हूवासंता मनकूं प्यारे जे विषय, तिनितैं आत्माको सदाकाल निश्चयतैं संवररूप करै है ताके प्रगटपणै संवर होय है. भावार्थ–इन्द्रिय मनकूं विषयनितैं रोकै अपने शुद्ध स्वरूपविषै रमावै ताकै संवर होय।

दोहा.

गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसहकार।
चारित धारै संगतजि, सो मुनि संवरधार ॥ ८ ॥

इति संवरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ८ ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा लिख्यते।

वारसविहेण तवसा णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि।
वेरग्गभावणादो णिरहंकारस्स णाणिस्स ॥ १०२ ॥

द्वादशविधेन तपसा निदानरहितस्य निर्जरा भवति ।
वैराग्यभावनातः निरहङ्कारस्य ज्ञानिनः ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी होय ताकै बारह प्रकार तपकरि कर्मनिकी निर्जरा होय है. कैसे ज्ञानीकै होय ? जो निदान कहिये इन्द्रियविषयनिकी इच्छा ताकरि रहित होय. बहुरि अहंकार अभिमानकरि रहित होय. बहुरि काहेतैं निर्जरा होय? वैराग्यभावना जो संसार देहभोगतैं विरक्त परिणाम तातैं होय. **भावार्थ**—तपकरि निर्जरा होय सो ज्ञानसहित तप करै ताकै होय. अज्ञानसहित विपर्यय तप करै तामें हिंसादिक होय, ऐसे तपतैं उलटा कर्मका बन्ध होय है. बहुरि तपकरि मदकरै, परकूं न्यून गिणै, कोई पूजादिक न करै, तासूं क्रोध करै ऐसे तपतैं बन्ध ही होय. गर्वरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि तपकरि या लोक परलोकविषै ख्याति लाभ पूजा इन्द्रियनिके विषयभोग चाहै, ताकै बंध ही होय. निदानरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि संसार देहभोगविषै आशक्त होय तप करै, ताका आशय शुद्ध होय नाही, ताकै निर्जरा न होय. वैराग्यभावनाहीतैं निर्जरा होय है ऐसा जानना ।

आगें निर्जरा कहा कहिये सो कहै हैं,—

✓ सव्वेसिं कम्माणं सत्तिविवाओ हवेइ अणुभाओ ।
तदणंतरं तु सडणं कम्माणं णिज्जरा जाण ॥ १०३ ॥

सर्वेषां कर्मणां शक्तिविपाकः भवति अनुभागः ।
तदनन्तरं तु सटनं कर्मणां निर्जरां जानीहि ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—समस्त जे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म तिनकी शक्ति कहिये फल देनेकी सामर्थ्य, ताका विपाक कहिये पकना, उदय होना, ताकूं अनुभाग कहिये, सो उदय आयकें अनंतर ही ताका सटन कहिये झड़ना क्षरना होय ताकूं कर्मकी निर्जरा हे भव्य तू जाणि. **भावार्थ**—कर्म उदय होय क्षर जाय ताकूं निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार है सो ही कहै हैं,—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा ।
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥ १०४ ॥

सा पुनः द्विविधा ज्ञेया सकालप्राप्ता तपसा कृतमाना ।
चतुर्गतिकानां प्रथमा व्रतयुक्तानां भवेत् द्वितीया ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है. एक तौ स्वकालप्राप्त एक तपकरि करी हुई होय. तामें पहिली स्वकालप्राप्त निर्जरा तौ चारही गतिके जीवनिकै होय है. बहुरि व्रतकरि युक्त हैं तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है. भावार्थ—निर्जरा दोय प्रकार है. तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि उदय होय रस देकरि खिरै सो तो सविपाक कहिये. यह निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है. बहुरि तपकरि कर्म विनास्थिति पूरी भये ही पकै, क्षरि जाय, ताकूं अविपाक ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है।

आगें निर्जरा बधती काहेतैं होय सो कहै हैं,—

उवसमभावतवाणं जह जह वड्ढी हवेइ साहूणं ।
तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो ॥ १०५ ॥

उपशमभावतपसां यथा यथा वृद्धिः भवति साधोः ।
तथा तथा निर्जरावृद्धिः विशेषतः धर्मशुक्लाभ्यां ॥ १०५ ॥

भाषार्थ—मुनिनिके जैसें जैसें उपशमभाव तथा तपकी बधवारी होय है तैसेंतैसें निर्जराकी बधवारी होय है. बहुरि धर्मध्यान शुक्लध्यानके विशेषतैं बधवारी होय है।

आगें इस वृद्धिके स्थान कहते हैं,—

मिच्छादो सद्दिट्ठी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि ।
तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६ ॥
पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य ।
दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥ १०७ ॥
खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया ।
एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥ १०८ ॥

मिथ्यात्वतः सदृष्टिः असंख्यगुणिकर्म्मनिर्जरा भवति ।
ततः अणुव्रतधारी ततः च महाव्रती ज्ञानी ॥ १०६ ॥
प्रथमकषायचतुर्णां वियोजकः तथा च क्षपकशीलः च ।
दर्शनमोहत्रिकस्य च ततः उपशमकचत्वारि ॥ १०७ ॥
क्षपकः च क्षीणमोहः सयोगिनाथः तथा अयोगिनः ।
एते उपरि उपरि असंख्यगुणकर्म्मनिर्जरकाः ॥ १०८ ॥

भाषार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्तकी उत्पत्तिविषै करणत्रयवर्त्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है. तातैं असंयत सम्यग्दृष्टिकै असं-

ख्यात गुणी निर्जरा होय है. यातैं देशव्रती श्रावककै असंख्यात गुणी होय है. यातैं महाव्रती मुनिनिकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन कहिये अप्रत्याख्यानादिकरूप परिणमावना ताकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं दर्शनमोहका क्षय करनेवालेकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं उपशम श्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असंख्यात गुणी होय है. यातैं उपशान्त मोह ग्यारमां गुणस्थानवालेके असंख्यातगुणी होय है. यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असंख्यातगुणी होय है. यातैं क्षीणमोह बारहमां गुणस्थान-विषै असंख्यातगुणी होय है. यातैं सयोग केवलीकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है. ऊपरि ऊपरि असंख्यात गुणकार है याही तैं याकूं गुणश्रेणी निर्जरा कहिये है।

आगें गुणाकाररहित अधिकरूप निर्जरा जातैं होय सो कहै हैं,—

जो वि सहदि दुव्वयणं साहम्मियहीलणं च उवसग्गं।
जिणऊण कसायरिउं तस्स हवे णिज्जरा विउला ॥ १०९ ॥

यः विसहते दुर्वचनं साधर्म्मिकहीलनं च उपसर्गम्।
जित्वा कषायरिपुं तस्य भवेत् निर्जरा विपुला ॥ १०९ ॥

भाषार्थ—जो मुनि दुर्वचन सहै तथा साधर्मी जे अन्यमुनि आदिक तिनकरि कीया अनादर सहै तथा देवादिकनिकरि कीया उपसर्ग सहै कषायरूप बैरीनिकूं जीतकरि ऐसें करै. ताकै विपुला कहिये विस्ताररूप बडी निर्जरा होय. **भावार्थ**—कोई कुवचन कहै तौ तासूं कषाय न करै तथा आपकूं अतीचारादिक लागै तब आचार्य्यादि कठोर वचन कहि प्रायश्चित्त दे निरादर करै ताकूं निकषायपणै सहै. तथा कोई उपसर्ग करै तासूं कषाय न करै ताकै बडी निर्जरा होय है।

रिणमोयणुव्व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पावफलं मे एदे मया वि यं संचिदं पुव्वं ॥ ११० ॥

रिणमोचनवत् मन्यते यः उपसर्गं परीषहं तीव्रं।
पापफलं मे एतत् मया अपि यत् संचितं पूर्वं ॥ ११० ॥

भाषार्थ—जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परीषहकूं ऐसा मानै जो मैं पूर्वजन्ममैं पापका संचै कियाथा ताका यह फल है सो भोगना. यामैं व्याकुल न होना. जैसे काहूका करज काढ्या होय सो पैलो मांगै, तब देना. यामैं व्याकुलता कहा. ऐसैं मानै ताकै निर्जरा बहुत होय है।

जो चिंतेइ सरीरं ममत्तजणयं विणस्सरं असुइं ।
दंसणणाणचरित्तं सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं ॥ १११ ॥

यः चिन्तयति ममत्वजनकं विनश्वरं अशुचिम् ।
दर्शनज्ञानचरित्रं शुभजनकं निर्मलं नित्यम् ॥ १११ ॥

भाषार्थ–जो मुनि या शरीरकूं ममत्व मोहका उपजावनहारा तथा विनाशीक तथा अपवित्र मानैं. बहुरि दर्शन ज्ञानचारित्रकूं सुखका उपजावनहारा निर्मल तथा नित्य मानैं, ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ–शरीरकूं मोहका कारन अथिर अशुचि मानैं तब याका सोच न रहै. अपना स्वरूपमैं लागै, तब निर्जरा होय ही होय ।

अप्पाणं जो णिंदइ गुणवंताणं करेदि वहुमाणं ।
मणइंदियाण विजई स सरूवपरायणो होदि ॥ ११२ ॥

आत्मानं यः निन्दयति गुणवतां करोति बहुमानम् ।
मनइन्द्रियाणां विजयी स स्वरूपपरायणो भवति ॥ ११२ ॥

भाषार्थ–जो साधु अपने स्वरूपविषै तत्पर होयकरि अपने कीये दुष्कृतकी निन्दा करै. बहुरि गुणवान पुरुषनिका प्रत्यक्ष परोक्ष बडा आदर करै. बहुरि अपना मन इन्द्रियनिका जीतनहारा वश करनहारा होय ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ–मिथ्यात्वादि दोषनिका निरादर करै तब वे काहेकूं रहै. झडिही पडै ।

तस्स य सहलो जम्मो तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि ।
तस्स वि पुण्णं वड्ढइ तस्स य सोक्खं परो होदि ॥ ११३ ॥

तस्य च सफलं जन्म तस्य अपि पापस्य निर्जरा भवति ।
तस्य अपि पुण्यं वर्द्धते तस्य च सौख्यं परं भवति ॥ ११३ ॥

भाषार्थ– जो साधु ऐसें पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कारणनिविषै प्रवर्त्तै है, ताहीका जन्म सफल है. बहुरि तिसहीकै पाप कर्मकी निर्जरा होय है, पुण्यकर्मका अनुभाग बधै है. बहुरि तिसहीकै उत्कृष्ट सुख होय है. भावार्थ–जो निर्जराका कारणनिविषै प्रवर्त्तै, ताकै पाप नाश होय, पुण्यकी वृद्धि होय. स्वर्गादिकके सुख भोगि मोक्षकूं प्राप्त होय ।

आगें उत्कृष्ट निर्जरा कहकरि निर्जराका कथनकूं पूरण करै हैं,—

जो समसुक्खणिलीणो वारं वारं सरेइ अप्पाणं ।
इंदियकसायविजई तस्स हवे णिज्जरा परमा ॥ ११४ ॥

य: समसौख्यनिलीनः वारं वारं स्मरति आत्मानम् ।
इन्द्रियकषायविजयी तस्य भवेत् निर्जरा परमा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ–जो मुनि, वीतराग भावरूप सुख, याहीका नाम परम चारित्र है सो याविषै तौ लीन कहिये तन्मय होय वारवार आतमाकूं सुमिरै ध्यावै. बहुरि इन्द्रियनिका तथा कषायानिका जीतनहारा होय, ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है. **भावार्थ**–इन्द्रियनिका कषायनिका निग्रहकरि परम वीतराग भावरूप आत्मध्यानविषै लीन होय ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है ।

दोहा.

पूरव बांधे कर्म जे, क्षरैं तपोबल पाय ।
सो निर्जरा कहाय है, धारैं ते शिव जाय ॥ ९ ॥

इति निर्जरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षा लिख्यते.

आगें लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करियेगा. तामें प्रथमही लोकका आकारादिक कहैंगे. तहां किछू गणित प्रयोजनकारी जाणि संक्षेपसा भावार्थ गणितका अन्य ग्रथनिकै अनुसार लिखिये है. तहां प्रथम तौ परिकर्माष्टक है. तामें संकलन कहिये जोड़ देना जैसै आठ वा सातका जोड दिया पंधरा होय. बहुरि व्यवकलन कहिये बाकी काढना जैसै आठमें तीन घटाये पांच रहै. बहुरि गुणाकार जैसे आठकों सातकरि गुणे छप्पन होय. बहुरि भागाकार जैसें आठकूं दोयका भाग दिये च्यारि पाये. बहुरि वर्ग कहिये दोयराशि बराबरकी गुणिये जेते होय तेते ताकूं वर्ग कहिये. जैसें आठका वर्ग चौसठि. बहुरि वर्गमूल जैसें चौसठिका वर्गमूल आठ. बहुरि घन कहिये तीन राशि बराबरकी गुणे जो होय सो. जैसें, आठका घन पांचसैबारा. बहुरि घनमूल जैसें पांचसैबाराका घनमूल आठ. ऐसें परिकर्माष्टक जानना. बहुरि त्रैराशिक है. जहां एक प्रमाणराशि, एक फलराशि, एक इच्छा राशि. जैसें दोय रुपयोंकी जिनस सोलह सेर आवै तो आठ रुपयोंकी केती आवै. ऐसें प्रमाणराशि दोय, फलराशि सोलह, इच्छाराशि आठ. तहां फलराशिकू इच्छाकरि गुणें एकसौ अठाईस होय. ताकूं प्रमाणराशि दोयका भाग दिये चौसठि सेर आवै. ऐसै जानना. बहुरि क्षेत्रफलविषै जहां बरोबरिके खंड करिये ताकूं क्षेत्रफल कहिये. जैसें खेतमें डोरि मापिये तब कचवांसी विसवांसी वीघा

करिये ताकूं क्षेत्रफल संज्ञा है. जैसें अस्सी हाथकी डोरि होय ताकै वीस गट्टा कहिये च्यारि हाथका एक गट्टा, ऐसें खेतमैं एक डोरि लांबा चौड़ा खेत होय ताकै च्यारि हाथके लांबे चोड़े खंड कीजिये, तब वीसकूं वीस गुणा कीये च्यारिसै भये. सोई कचवांसी भई. याकै वीस विसवे भये. ताका एक बीघा भया. ऐसें ही जहां चौखूंटा तिखूंटा गोल आदि खेत होय, ताका बराबरिका खंडकरि मापि क्षेत्रफल ल्याइये है. तैसें ही लोकका क्षेत्रकूं योजनादिककी संख्याकरि जैसा क्षेत्र होय तैसा विधानकरि क्षेत्रफल ल्यावनेका विधान गणितशास्त्रतैं जानना. इहां लोकके क्षेत्रविषै तथा द्रव्यनिकी गणनाविषै अलौकिक गणित इकईस हैं तथा उपमागणित आठ हैं. तहां संख्यातके तीनभेद–जघन्य मध्य उत्कृष्ट. असंख्यातके नव भेद, तामैं परीतासंख्यात–जघन्य मध्य उत्कृष्ट. युक्तासंख्यात–जघन्य मध्य उत्कृष्ट. असंख्यातासंख्यात–जघन्य मध्य उत्कृष्ट. ऐसें नौ भये. बहुरि अनन्तके नवभेद परीतानन्त युक्तानन्त अनन्तानन्त ताके जघन्य मध्य उत्कृष्ट करि नव. ऐसें इकईस। तहां जघन्यपरीत असंख्यात ल्यावनेके अर्थ लाख लाख योजनके जंबूद्वीपप्रमाण व्यासवाले हजार हजार योजन ऊंडे च्यारि कुंडकरिये. एकका नाम अनवस्थ, दूजा शलाका, तीजा प्रतिशलाका, चौथा महाशलाका. तिनमैंसूं अनवस्थ कुंडकूं सिरस्यूंतैं सिघाऊ भरिये. तिसमैं छियालीस अंक प्रमाण सिरस्यूं मावै. तिनकूं संकल्प मात्र ले चालिये. एक द्वीपमैं एक समुद्रमैं ऐसें गेरते जाइये. तहां वे सिरस्यूं वीतैं तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण अनवस्थकुंड कीजै. तामैं सिरस्यूं भरिये बहुरि शलाका कुंडमैं एक सिरस्यूं अन्य ल्याय गेरिये बहुरि तैसें ही तिस दूजे अनवस्थ कुंडकी एक सिरस्यूं एक द्वीपमैं एक समुद्रमैं गेरते जाइये. ऐसें करतैं तिस अनवस्थ कुंडकी सिरस्यूं जहां वीतै, तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण फेर अनवस्थ कुंडकरि तैसें ही सिरस्यूं भरिये. बहुरि एक सिरस्यूं शलाका कुंडमैं अन्य ल्याय गेरिये, ऐसें करतैं छियालीस अंक प्रमाण अनवस्थ कुंड होय चुकै. तब एक शलाका कुंड भरै. तब एक सिरस्यूं प्रतिशलाका कुंडमैं गेरिये. तैसेंही अनवस्थ होता जाय. शलाका होता जाय. ऐसें करतैं छियालीस अंक प्रमाण शलाका कुंडभरि चुकै, तब एक प्रतिशलाका भरै. ऐसें ही अनवस्थ कुंड होता जाय शलाका भरते जाय प्रति शलाका भरते जाय, तब छियालीस अंक प्रमाण प्रतिशलाका कुंड भरि चुकै तब एक महा शलाका कुंड भरै. ऐसें करतैं छियालीस अंकनिके घन प्रमाण अनवस्थ कुंड भये. तिनिमैं अंतका अनवस्थ जिस द्वीप तथा समुद्रकी सूची प्रमाण वण्या

तामैं जेती सिरस्यूं मावै तेता प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है. यामैं एक सिरस्यूं घटाये उत्कृष्टसंख्याता कहिये. दोय सिरस्यूं प्रमाण जघन्य संख्यात कहिये. वीचके सर्व मध्य संख्यातके भेद हैं. बहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यातकी सिरस्यूंकी राशिकूं एक एक वखेरि एक एक पर तिसही राशिकूं थापि परस्पर गुणता अंतमैं जो राशि निपजै, ताकूं जघन्य युक्तासंख्यात कहिये. यामैं एक रूप घटाये उत्कृष्टपरीतासंख्यात कहिये. मध्यके नाना भेद जानने. बहुरि जघन्ययुक्ता संख्यातकूं जघन्ययुक्ता संख्यातकरि एकबार परस्पर गुणनैतै जो परिमाण आवै, सो जघन्य असंख्याता संख्यात जानने. यामैं एक घटाये उत्कृष्ट युक्तासंख्यात हैं. मध्य युक्त असंख्यात वीचके नाना भेद जानने. अब इस जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीन राशि करनी. एक शलाका एक विरलन एक देय. तहां विरलन राशिकूं वखेरि एक एक जुदा जुदा करना एक एकके ऊपरि एक एक देय राशि धरना तिनकूं परस्पर गुणिये जब सर्व गुणाकार होय चुकै, तब एक रूप शलाका राशिमैंसूं घटावना. बहुरि जो राशि भया तिस प्रमाण विरलन देय राशि करना, तहां विरलनकूं वखेरि एक एककूं जुदा करि एक एक परि देय राशि देना, तिनकूं परस्पर गुणन करनां जो राशि निपजै तब एक शलाकाराशिमेसूं फेरि घटावना. बहुरि जो राशि निपज्या ताके परिमाण विरलन देय राशि करनां विरलनकूं बखेरि देयकूं एक एक पर स्थापि परस्पर गुणन करना, एकरूप शलाकामैंसूं घटावना. ऐसैं विरलन देय राशिकरि गुणाकार करता जाना, शलाकामैंसूं घटाता जाना. जब शलाका राशि निःशेष हो जाय तब जो किछू परमाण आया सो मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तितने तितने परिमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि फेरि करना तिनकूं पूर्ववत् करैतै शलाका राशि निःशेष होय जाय, तब जो महाराशि परिमाण आया सोभी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तिस राशि परिमाणके फेरि शलाका विरलन देय राशि करना तिनकूं पूर्वोक्त विधानकरि गुणनेतैं जो महाराशि भया सो यह भी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद भया. अर शलाकात्रय निष्ठापन एक बार भया. बहुरि इस राशिमैं असंख्यातासंख्यात प्रमाण छह राशि और मिलावणी लोकप्रमाण धर्म्म द्रव्यके प्रदेश, अधर्म्म द्रव्यके प्रदेश, एक जीवके प्रदेश, लोकाकाशके प्रदेश बहुरि तिस लोकतैं असंख्यात गुणें अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवनिका परिमाण, बहुरि तिसतैं असंख्यातगुणे सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति जीवोंका परिमाण ये छह राशि मिलाय पूर्वोक्त

प्रकार शलाका विरलन देयराशिके विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करना, तब जो महाराशि निपज्या सो भी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. तामैं च्यारि राशि और मिलावने कल्प काल वीस कोडाकोडी सागरके समय, बहुरि स्थिति बंधकूं कारण कषायनिके स्थान, अनुभाग बंधकूं कारण कषायनिके स्थान, योगनिके अविभाग प्रतिच्छेद ऐसी च्यारि राशि मिलाय अर पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसें करतें जो परिमाण होय सो जघन्य परीतानन्तराशि भया. यामैंसूं एक रूप घटाये उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होय है. वीचिमैं मध्यके नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य परीतानन्त राशिका विरलनकरि एक एकपरि एक एक जघन्य परीतानन्त स्थापनकरि परस्पर गुणे जो परिमाण होय सो जघन्य युक्तानन्त जानना. तामैं एक घटाये उत्कृष्ट परीतानन्त है. मध्य परीतानन्तके वीचिमैं नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य युक्तानन्तकूं जघन्य युक्तानन्त करि एकबार परस्पर गुणे जघन्य अनन्तानन्त हैं. यामैं सूं एक घटाये उत्कृष्ट युक्तानन्त होय हैं. मध्य युक्तानन्तके वीचमैं नाना भेद हैं. अब उत्कृष्ट अनन्तानन्तकूं ल्यावनेका उपाय करै हैं. तहां जघन्य अनन्तानन्त परिमाण शलाका विरलन देय. इन तीन राशिकरि अनुक्रमतें पहलैं कह्या तैसैं शलाकात्रय निष्ठापन करै. तब मध्य अनन्तानन्तका भेदरूप राशिमैं निपजै है. ताविषै छह राशि मिलावै सिद्धराशि, निगोदराशि, प्रत्येक वनस्पतिसहित निगोदराशि, पुद्गलराशि, कालके समय, आकाशके प्रदेश ये छह राशि मध्य अनन्तानन्तके भेदरूप मिलाय शलाकात्रयनिष्ठापन पूर्ववत् विधानकरि करना तब मध्य अनन्तानन्तका भेदरूप राशि निपजै, ताविषै फेरि धर्म्मद्रव्य अधर्म्मद्रव्यके अगुरु लघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय जो महाराशि परिमाण राशि भया. ताकूं फेरि पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करिये तब जो कोई मध्य अनन्तानन्तका भेदरूप राशि भया, ताकूं केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनका समूह परिमाणविषै घटाय फेरि मिलाइये तब केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त परिमाण राशि होय है। बहुरि उपमा प्रमाण आठ प्रकार करि कह्या है. पल्य सागर सूच्यंगुल प्रतरांगुल घनांगुल जगतश्रेणी जगतप्रतर जगतघन. तहां पल्य तीन प्रकार है—व्यवहारपल्य उद्धारपल्य अद्धापल्य. तहां व्यवहारपल्य तौ रोमनिकी संख्या मात्रही है. बहुरि उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्या गणिये है. बहुरि अद्धापल्यकरि कर्मनिकी स्थिति देवादिककी आयुस्थिति गणिये हैं. अब इनका परिमाण जाननेकूं परिभाषा करै हैं. तहां अनन्त

पुद्गलके परमाणूनिका स्कन्ध तौ एक अवसन्नासन्न नाम है. तातैं आठ आठ गुणो क्रमकरि बारह स्थानक जानने. सन्नासन्न त्रसरेणु, उणुरथरेणु तृटरेणु, उत्तमभोगभूमिका बालका अग्रभाग, मध्यम भोगभूमिका, जघन्य भोगभूमिका, कर्म्मभूमिका, लीख, सरसूं, यव, अंगुल ए बारह हैं. सो ऐसैं अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है. सो याकरि नारकी तिर्यञ्च देव मनुष्यनिका शरीरका प्रमाण वर्णन कीजिये हैं, अर देवनिके नगर मन्दिर वर्णन कीजिये हैं. बहुरि उत्सेध अंगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल है. यातैं द्वीप समुद्र पर्वत आदिकनिका परिमाण वर्णन है, बहुरि आत्मांगुल जहां जैसा मनुष्यनिका होय तिस परिमाण जाननां. बहुरि छह अंगुलका पाद होय, दोय पादका एक बिलस्त होय, दोय विलस्तका एक हाथ होय, दोय हाथका एक भीष होय, दोय भीषका एक धनुष होय, दोय हजार धनुषका एक कोश होय, च्यारि कोशका एक योजन होय, सो यहां प्रमाणांगुलकरि निपज्या ऐसा एक योजन प्रमाण उंडा चौड़ा एक खाडा करना ताकूं उत्तम भोगभूमिविषैं उपज्या जो जनमतैं लगाय सात दिन तांईका मीढाका बालका अग्रभाग तिनिकरि भूमि समान अत्यन्त गाढा भरना तामैं रोम पैंतालीस अंकनि परिमाण मावै, तिनकू एक एक रोमखंडकूं सौ सौ बरस गये काढैं. जित्ते बरस होय सो व्यवहार पल्य है. तिनि वर्षनिके असंख्यात समय होय हैं. बहुरि तिनि रोमके एक एकके असंख्यात कोडि वर्षके समय होय, तेते तेते खंड कीजिये सो उद्धार पल्यके रोमखंड होय. तेते समय उद्धार पल्यके हैं. बहुरि इन उद्धार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात वर्षके जेते समय होय तितने खंड कीये अद्धापल्यके रोमखण्ड होय हैं ताके समय भी इतने ही हैं. बहुरि दश कोडाकोडी पल्यका एक सागर होय है. बहुरि एक प्रमाणांगुल प्रमाण लंबा एकप्रदेश प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकूं सूच्यंगुल कहिये हैं. याके प्रदेश अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिकूं विरलनकरि एक एक अद्धापल्य तिनपरि स्थापि परस्पर गुणिये जो परिमाण आवै तेते याके प्रदेश हैं. बहुरि याका वर्गकूं प्रतरांगुल कहिये. बहुरि सूच्यगुंलके घनकूं घनांगुल कहिये. एक अंगुल चौडा तेताही लांबा अर ऊंचा ताकूं घन अंगुल कहिये. बहुरि सात राजु लांबा एक प्रदेश प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकूं जगतश्रेणी कहिये. याकी उत्पत्ति ऐसैं जो अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिका असंख्यातवां भागका प्रमाणकूं विरलनकरि एक एक परि घनांगुल देय परस्पर गुणें जो राशि निपजै सो जगतश्रेणी है. बहुरि जगतश्रेणीका वर्ग सो जगतप्रतर कहिये. बहुरि जगतश्रेणीका घन सो जगतघन कहिये. सात राजु चौडा लांबा ऊंचाकूं जगतघन कहिये. यह लोकके प्रदेशनिका प्रमाण

हैं. सो भी मध्य असंख्यातका भेद है. ऐसैं ए गणित संक्षेप करि कही. बहुरि गणितका कथन विशेषकरि गोमट्टसार त्रिलोकसारतें जानना. द्रव्यमैं तो सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, क्षेत्रमें आकाशके प्रदेश, कालमें समय, भावमें अविभागप्रतिच्छेद, इन च्यारूहीकूं परस्पर प्रमाण संज्ञा है. सो घाटिसूं घाटि तौ ये हैं अर वाधिसूं वाधि द्रव्यमैं तौ महास्कन्ध, क्षेत्रमें आकाश, कालमैं तीनूं काल, भावमैं केवलज्ञान, ऐसा जानना. बहुरि कालमें एक आवलीके जघन्य युक्ताअसंख्यात समय हैं. अर असंख्यात आवलीका मुहूर्त्त है. तीस मुहूर्त्तका दिनराति है. तीस दिन रातिका एक मास है. वारह मासका एक वर्ष है. इत्यादि जानना।

आगें प्रथम ही लोकाकाशका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वायासमणंतं तस्स य बहुमज्झिसंट्ठियो लोओ ।
सो केण वि णेय कओ ण य धरिओ हरिहरादीहिं ॥ ११५ ॥

सर्वाकाशमनन्तं तस्य च बहुमध्यसंस्थितः लोकः ।
सः केन अपि नैव कृतः न च धृतः हरिहरादिभिः ॥ ११५ ॥

भाषार्थ—आकाश द्रव्य है ताका क्षेत्र प्रदेश अनन्त है. ताका बहुमध्यदेश कहिये वीचही वीचका क्षेत्र, ताविषै तिष्ठै ऐसा लोक है. सो काहू करि कीया नाहीं है तथा कोई हरिहरादिकरि धर्‍या, वा राख्या नाहीं है. **भावार्थ**—केई अन्य मतमैं कहै हैं जो लोककी रचना ब्रह्मा करै है. नारायण रक्षा करै है. शिव संहार करै है. तथा काछिवा तथा शेष नाग धार्‍या है. तथा प्रलय होय है, तब सर्वशून्य होय जाय है. ब्रह्मकी सत्ता मात्र रह जाय है. बहुरि ब्रह्मकी सत्तामैंसूं सृष्टिकी रचना होय है. इत्यादि अनेक कल्पित कहै हैं. ताका निषेध इस सूत्रतैं जानना. लोक काहू करि कीया नाहीं. काहू करि धार्‍या नाहीं. काहू करि विनसै नाहीं. जैसा है तैसा ही सर्वज्ञनै देख्या है सो वस्तु स्वरूप है ।

आगें इस लोकविषै कहा है सो कहै हैं,—

अण्णोण्णपवेसेण य दव्वाणं अत्थणं भवे लोओ ।
दव्वाणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुणह णिच्चत्तं ॥ ११६ ॥

अन्योन्यप्रवेशेन च द्रव्याणां अस्तित्वं भवेत् लोकः ।
द्रव्याणां नित्यत्वात् लोकस्य अपि जानीहि नित्यत्वम् ॥ ११६ ॥

भाषार्थ—जीवादिक द्रव्यनिका परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप प्रवेश कहिये मिलापरूप अवस्थान सो लोक है. जे द्रव्य हैं ते नित्य हैं. याहीतैं लोक भी

नित्य है ऐसा जानहु. भावार्थ—षड्द्रव्यनिका समुदाय सो लोक है. ते द्रव्य नित्य हैं, तातैं लोक भी नित्य ही है ।

आगें कोई तर्क करै जो नित्य है तो उपजै विनसै कौन है, ताका समाधानका सूत्र कहै है,—

परिणामसहावादो पडिसमयं परिणमंति दव्वाणि ।
तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणामं ॥ ११७ ॥

परिणामस्वभावात् प्रतिसमयं परिणमन्ति द्रव्याणि ।
तेषां परिणामात् लोकस्य अपि जानीहि परिणामम् ॥ ११७ ॥

भाषार्थ—या लोकमैं छह द्रव्य हैं ते परिणामस्वभाव हैं यातें समय समय परिणमै हैं तिनके परिणमतैं लोककै भी परिणाम जानहु. भावार्थ—द्रव्य हैं. ते परिणामी हैं. लोक है सो द्रव्यनिका समुदाय है यातैं द्रव्यनिकै परिणाम है सो लोककै भी परिणाम आया. कोई पूछै परिणाम कहा? ताका उत्तर—परिणाम नाम पर्य्यायका है. जो एक अवस्थारूप द्रव्य था सो पलटि दूजी अवस्थारूप होना. जैसैं माटी पिंडअवस्थारूप थी सो पलटि करि घट बण्या. ऐसैं परिणामका स्वरूप जानना. सो लोकका आकार तौ नित्य है. अर द्रव्यनिकी पर्य्याय पलटै है या अपेक्षा परिणाम कहिये है ।

आगें या लोकका आकार तौ नित्य है. ऐसा धारि व्यासादि कहै हैं,—

सत्तेक्कु पंच इक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते ।
लोयंते रज्जूओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥ ११८ ॥

सप्त एकः पञ्च एकः मूले मध्ये तथैव ब्रह्मान्ते ।
लोकान्ते रज्जवः पूर्वापरतः च विस्तारः ॥ ११८ ॥

भाषार्थ—लोकका पूर्व पश्चिम दिशाविषै मूल कहिये नीचैं तौ सात राजू विस्तार है. बहुरि मध्य कहिये बीचि एक राजूका विस्तार है. बहुरि ऊपरि ब्रह्म स्वर्गके अंन्त पांच राजूका विस्तार है. बहुरि लोकका अन्तविषै एक राजूका विस्तार है. भावार्थ—लोक नीचले भागविषै पूर्व पश्चिमदिशाविषै सात राजू चौड़ा है. तहांतैं अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोक एक राजू रह्या. पीछैं ऊपरि अनुक्रमतैं बधता बधता ब्रह्मस्वर्गताईं पांच राजू चौड़ा भया. पीछैं घटतैं घटतैं अन्तमैं एक राजू रह्या. ऐसैं होतैं ड्योढ मृदंग ऊभी धरिये तैसा आकार भया ।

आगें दक्षिण उत्तर विस्तार वा उंचाईकूं कहै हैं,—

दक्खिणउत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ ।
उड्ढो चउदसरज्जू सत्त वि रज्जूघणो लोओ ॥ ११९ ॥

दक्षिणोत्तरतः पुनः सप्त अपि रज्जवः भवति सर्वत्र ।
ऊर्ध्वः चतुर्दशरज्जुः सप्त अपि रज्जुघनः लोकः ॥ ११९॥

भाषार्थ–लोक है सो दक्षिण उत्तर दिशाकूं सर्व ऊंचाई पर्य्यन्त सात राजू विस्तार है. ऊंचा चौधै राजू है. बहुरि सात राजूका घनप्रमाण है. **भावार्थ**–दक्षिण उत्तरकूं सर्वत्र सात राजू चौडा है. ऊंचा चौधै राजू है. ऐसा लोकका घन फल करिये तब तीनसै तियालीस (३४३) राजू होय है. समान क्षेत्रखंडकरि एक राजू चौड़ा लांबा ऊंचा खंड करिये ताकूं घनफल कहिये ।

आगें ऊंचाईके भेद कहै हैं,—

मेरुस्स हिट्ठभाये सत्त वि रज्जू हवे अहोलोओ ।
उड्ढम्हि उड्ढलोओ मेरुसमो मज्झिमो लोओ ॥ १२० ॥

मेरोः अधोभागे सप्त अपि रज्जू भवेत् अधोलोकः ।
ऊर्ध्वे ऊर्ध्वलोकः मेरुसमः मध्यमः लोकः ॥ १२० ॥

भाषार्थ–मेरुके नीचे भागविषै सात राजू अधोलोक है. ऊपरि सात राजू ऊर्द्धलोक है. मेरु समान मध्यलोक है. **भावार्थ**–मेरुकै नीचें सात राजू अधो लोक. ऊपर सात सात राजू ऊर्द्धलोक, बीचिमैं मेरुसमान लाख योजनका मध्यलोक है. ऐसैं तीन लोकका विभाग जानना ।

आगें लोक शब्दका अर्थ कहै हैं,—

दंसंति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णदे लोओ ।
तस्स सिहरम्मि सिद्धा अंतविहीणा विरायंति ॥ १२१ ॥

दृश्यन्ते यत्र अर्थाः जीवाद्याः स भण्यते लोकः ।
तस्य शिखरे सिद्धाः अन्तविहीनाः विराजन्ति ॥ १२१ ॥

भाषार्थ–जहां जीव आदिक पदार्थ देखिये हैं सो लोक कहिये. ताके शिखर ऊपरि अनन्ते सिद्ध विराजै हैं. **भावार्थ**–'लोक' दर्शने नामा व्याकरणमैं धातु है. ताकै आश्रयार्थविषै अकार प्रत्ययतैं लोक शब्द निपजै है. तातैं जामैं जीवादिक द्रव्य देखिये. ताकूं लोक कहिये. बहुरि ताके ऊपरि अन्तविषै कर्मरहित शुद्धजीव अनन्त गुणनिकरि सहित अविनाशी अनन्त विराजै हैं ।

आगें या लोकविषै जीव आदि छह द्रव्य हैं तिनिका वर्णन करै हैं. तहां प्रथमही जीव द्रव्यकूं कहै हैं ।

एइंदियेहिं भरिदो पंचपयारेहिं सव्वदो लोओ ।
तसनाडीए वि तसा ण बाहिरा होंति सव्वत्थ ॥ १२२ ॥

एकेन्द्रियैः भृतः पञ्चप्रकारैः सर्वतः लोकः ।
त्रसनाड्यां अपि त्रसा न बाह्याः भवन्ति सर्वत्र ॥ १२२ ॥

भाषार्थ–यह लोक पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ऐसैं पंचप्रकार कायके धारक जे एकेन्द्रिय जीव तिनकरि सर्वत्र भऱ्या है. बहुरि त्रस जीव त्रस-नाडीविषै ही हैं. बाहिर नाहीं हैं. **भावार्थ**–जीव द्रव्य उपयोग लक्षणवाला समान परिणामकी अपेक्षा सामान्यकरि एक है. तथापि वस्तु भिन्नप्रदेशकरि अपने अपने स्व-रूपकूं लीये न्यारे न्यारे अनन्ते हैं. तिनमैं जे एकेन्द्रिय हैं. ते तौ सर्व लोकमैं हैं बहुरि बेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय ऐसे त्रस हैं ते त्रस नाडी विषैही हैं ।

आगें वादरसूक्ष्मादि भेद कहै हैं,—

पुण्णा वि अपुण्णा वि य थूला जीवा हवंति साहारा ।
छविहा सुहमा जीवा लोयायासे वि सव्वत्थ ॥ १२३ ॥

पूर्णाः अपि अपूर्णाः अपि च स्थूलाः जीवाः भवन्ति साधाराः ।
षोढा सूक्ष्माः जीवाः लोकाकाशे अपि सर्वत्र ॥ १२३ ॥

भाषार्थ–जे जीव आधारसहित हैं ते तौ स्थूल कहिये वादर हैं. ते पर्य्याप्त हैं. बहुरि अपर्य्याप्त भी हैं. बहुरि जे लोकाकाशविषै सर्वत्र अन्य आधाररहित हैं ते जीव सूक्ष्म हैं ते छह प्रकार हैं ।

आगें वादर सूक्ष्म कूंन कूंन हैं सो कहै हैं,—

पुढवीजलग्गिवाऊ चत्तारि वि होंति बायरा सुहमा ।
साहारणपत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा ॥ १२४ ॥

पृथ्वीजलाग्निवायवः चत्वारः अपि भवन्ति वादराः सूक्ष्माः ।
साधारणप्रत्येकाः वनस्पतिः पञ्चमा द्विविधाः ॥ १२४ ॥

भाषार्थ–पृथ्वी जल अग्नि वायु ये च्यारि तौ वादर भी हैं तथा सूक्ष्म भी हैं बहुरि पांचई वनस्पति है सो प्रत्येक साधारण भेद करि दोय प्रकार है ।

आगें साधारण प्रत्येककै सूक्ष्मपणाकूं कहै हैं,—

साहारणा वि दुविहा अणाइकाला य साइकाला य ।
ते वि य बादरसुहमा सेसा पुण बायरा सव्वे ॥ १२५ ॥

---

१ "वायरा" ऐसा भी पाठ है तहां अर्थ ऐसा जो सर्व लोकमैं पृथ्वीकायिकादिक स्थूल और त्रस नहीं है।

साधारणाः अपि द्विविधाः अनादिकालाः च सादिकालाः च ।
ते अपि च बादरसूक्ष्माः शेषाः पुनः बादराः सर्वे ॥ १२५ ॥

भाषार्थ–साधारण जीव दोय प्रकार हैं. अनादिकाल कहिये नित्य निगोद सादिकाला कहिये इतर निगोद ते दोऊं हू बादरभी हैं सूक्ष्म भी हैं. बहुरि शेष कहिये प्रत्येक वनस्पती वा त्रस ते सर्व बादर ही हैं. **भावार्थ**–पूर्वं कह्या जो सूक्ष्म छह प्रकार है ते पृथ्वी जल तेज वायु तौ पहली गाथामें कहे. बहुरि नित्य निगोद इतर निगोद ए दोय ऐसैं छह प्रकार तौ सूक्ष्म जानने. बहुरि छह प्रकार तौ ए रहे अर अवशेष ते सर्व बादर जानने ।

आगें साधारणका स्वरूप कहै हैं,—

साहारणाणि जेसिं आहारुस्सासकायआऊणि ।
ते साहारणजीवा णंताणंतप्पमाणाणं ॥ १२६ ॥

साधारणानि येषां आहारोच्छ्वासकायआयूंषि ।
ते साधारणजीवाः अनन्तानन्तप्रमाणानाम् ॥ १२६ ॥

भाषार्थ–जिन अनन्तानन्त प्रमाण जीवनिकै आहार उच्छ्वास काय आयु साधारण कहिये समान हैं. ते साधारण जीव हैं । उक्तं च गोमट्टसारे—

"जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं ॥"

यत्र एकः म्रियते जीवः तत्र तु मरणं भवेत् अनन्तानाम् ।
चक्रमति यत्र एकः चक्रमणं तत्र अनन्तानाम् ॥

भाषार्थ–जहां एक साधारण जीव निगोदिया उपजै तहां ताकी साथि ही अनन्तानन्त उपजैं अर एक निगोद जीव मरै ताकी साथि ही अनन्तानन्त समान आयुवाला मरै है. **भावार्थ**–एक जीव आहार करै तेई अनन्तानन्त जीवनिका आहार, एक जीव स्वासोस्वास ले सो ही अनन्तानन्त जीवनिका स्वासोस्वास, एक जीवका शरीर सोई अनन्तान्तका शरीर, एक जीवका आयु सो ही अनन्तानन्तका आयु ऐसें समान है तातैं साधारण नाम जानना ।

आगें सूक्ष्म बादरका स्वरूप कहै हैं,—

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवीतोएहिं अग्गिवाएहिं ।
ते जाण सुहमकाया इयरा पुण थूलकाया य ॥१२७॥

न च येषां प्रतिस्खलनं पृथ्वीतोयैः अग्निवायुभिः ।
ते जानीहि सूक्ष्मकायाः इतरे पुनः स्थूलकायाः च ॥ १२७ ॥

भाषार्थ–जिन जीवनिका पृथ्वी जल अग्नि पवन इन करि रुकना न होय ते जीव सूक्ष्म जानहु. बहुरि जे इन करि रुकै ते वादर जानहु ।

आगे प्रत्येककूं वा त्रसकूं कहै हैं,—

पत्तेया वि य दुविहा णिगोदसहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा वि य बितिचउरक्खा तहेव पंचक्खा ॥१२८॥

प्रत्येकाः अपि च द्विविधा. निगोदसहिताः तथैव रहिताः च ।
द्विविधाः भवन्ति त्रसाः अपि च द्वित्रिचतुरक्षाः तथैव पञ्चाक्षाः ॥ १२८ ॥

भाषार्थ–प्रत्येक वनस्पती भी दोय प्रकार है. ते निगोदसहित हैं तैसैं ही निगोदरहित हैं. बहुरि त्रसभी दोय प्रकार है. बेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ऐसैं तो विकलत्रय. बहुरि तैसैं ही पंचेन्द्रिय हैं. भावार्थ–जिस वनस्पतीके आश्रय निगोद पाइये सो तौ साधारण है, याकूं सप्रतिष्ठित भी कहिये. बहुरि जिसकै आश्रय निगोद नाहीं ताकूं प्रत्येक ही कहिये, याहीकों अप्रतिष्ठित भी कहिये हैं. बहुरि बेन्द्रिय आदिककूं त्रस कहिये है. (१) ।

आगें पञ्चेन्द्रियनिके भेद कहै हैं,—

पंचक्खा वि य तिविहा जलथलआयासगामिणो तिरिया ।
पत्तेयं ते दुविहा मणेण जुत्ता अजुत्ता य ॥ १२९ ॥

---

(१) प्रोक्तं च गोमट्टसारे.

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीज बीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १ ॥
मूलाग्रपर्वबीजाः कन्दाः स्कन्धबीजाः बीजरुहाः ।
सम्मूर्छना च भणिताः प्रत्येकाः अनन्तकायाः च ॥ १ ॥
गूढसिरं संधिपव्वं समभंगं महीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ २ ॥
गूढशिरः सन्धिपर्व समभङ्गं महीरुह च छिन्नरुह ।
साधारण शरीर तद्विपरीतं च प्रत्येकम् ॥ २ ॥
मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ३ ॥
मूले कन्दे त्वचि प्रवाले अङ्कुरे दले कुसुमे फले बीजे ।
समभङ्गे सति अनन्ताः असमे सति भवन्ति प्रत्येकाः ॥ ३ ॥
कंदस्स व मूलस्स व साखाखंधस्स वा वि बहुलतरी ।
छल्ली सा णंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ४ ॥
कन्दस्य वा मूलस्य वा शाखास्कन्धस्य वा अपि बहुलतरी ।
त्वक् सा अनन्तजीवा प्रत्येकजीवा तु तनुकदरी ॥ ४ ॥

पञ्चाक्षाः अपि च त्रिविधाः जलस्थलआकाशगामिनः तिर्यञ्चः ।
प्रत्येकं ते द्विविधा मनसा युक्ताः अयुक्ताः च ॥ १२९ ॥

भाषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच हैं ते जलचर थलचर नभचर ऐसैं तीन प्रकार हैं. बहुरि प्रत्येक मनकरि युक्त सैनी भी हैं तथा मन रहित असैनी भी हैं ।

बहुरि इनके भेद कहै हैं,—

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भजजम्मा तहेव सम्मुत्था ।
भोगभुवा गब्भभुवा थलयरणहगामिणो सण्णी १३० ॥

ते अपि पुनः अपि च द्विविधाः गर्भजजन्मानः तथैव सम्मूर्छनाः ।
भोगभुवः गर्भभुवः स्थलचरनभोगामिनः संज्ञिनः ॥ १३० ॥

भाषार्थ—ते छह प्रकार कहे जे तिर्यंच ते गर्भज भी हैं बहुरि सम्मूर्च्छन भी हैं. बहुरि इनिविषै जे भोगभूमिके तिर्यंच हैं ते थलचर नभचर ही हैं. जलचर नाहीं हैं. बहुरि ते सैनी ही हैं. असैनी नाही हैं ।

आगें अठ्याणवें जीवसमासनिकूं तथा तिर्यंचके पिच्यासी भेदनिकूं कहै हैं ।

अट्ठ वि गब्भज दुविहा तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा ।
इदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होंति तिरियाणं ॥ १३१ ॥

अष्टौ अपि गर्भजाः द्विविधाः त्रिविधाः सम्मूर्च्छनाः अपि त्रयोविंशतिः ।
इति पञ्चाशीतिः भेदाः सर्वेषां भवन्ति तिरश्चां ॥ १३१ ॥

भाषार्थ—सर्व ही तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद हैं. तहां गर्भजके आठ ते तौ पर्य्याप्त अपर्य्याप्तकरि सोलह भये. बहुरि सम्मूर्च्छनके तेईस भेद, ते पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि गुणहत्तरि भये ऐसैं पिच्यासी हैं. **भावार्थ**—पूर्वे कहे जे कर्मभूमिके गर्भज जलचर थलचर नभचर ते सैनी असैनी करि छह भेद, बहुरि भोगभूमिके थलचर नभचर सैनी ये आठ ही पर्य्याप्त अपर्याप्त भेदकरि सोलह, बहुरि सम्मूर्च्छनके पृथ्वी अप् तेज वायु नित्य निगोदके सूक्ष्म वादरकरि वारह, बहुरि वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसैं चौदह तौ एकेन्द्रियके भेद बहुरि विकलत्रय तीन, बहुरि पंचेन्द्रिय कर्मभूमिके जलचर थलचर नभचर सैनी असैनी करि छह भेद, ऐसैं सब मिलि तेईस. ताकै पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्य्याप्तकरि गुणहत्तरि ऐसैं पिच्यासी होय हैं ।

आगें मनुष्यनिके भेद कहै हैं ।

अज्जव मिलेच्छखंडे भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु ।
मणुआ हवंति दुविहा णिव्वित्तिअपुण्णगा पुण्णा ॥ १३२ ॥

आर्य्यम्लेच्छखण्डेषु भोगभूमिषु अपि कुभोगभूमिषु ।

मनुष्याः भवन्ति द्विविधाः निवृत्यपर्याप्ताः पूर्णपर्याप्ताश्च ॥ १३२ ॥

भाषार्थ–मनुष्य आर्यखंडविषै तथा म्लेच्छखंडविषै तथा भोगभूमिविषै तथा कुभोगभूमिविषै हैं ते च्यारि ही पर्याप्त निवृत्ति अपर्याप्तकरि आठ भेद भये।

सम्मुच्छणा मणुस्सा अज्जवखंडेसु होंति णियमेण ।

ते पुण लद्धिअपुण्णा णारय देवा वि ते दुविहा ॥ १३३ ॥

सम्मूर्छनाः मनुष्याः आर्य्यखण्डेषु भवन्ति नियमेन ।

ते पुनः लब्धिअपूर्णाः नारकाः देवाः अपि ते द्विविधाः ॥ १३३ ॥

भाषार्थ–सन्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंडविषै ही नियम करि होय हैं. ते लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं. बहुरि नारक तथा देव ते पर्याप्त तथा निर्वृत्य अपर्याप्तके भेद करि च्यारि भेद हैं. ऐसें तिर्यचके भेद पिच्यासी, मनुष्यके नव नारक देवके च्यारि, सर्व मिलि अठ्याणवैं भेद भये. बहुतनिको समानता करि भेले करि कहिये संक्षेप करि संग्रह करि कहिये ताकूं समास कहिये है. सो यहां बहुत जीवनिका संक्षेप करि कहना सो जीवसमास जानना. ऐसें जीवसमासनिकूं कहे ।

आगें पर्याप्तका वर्णन करे हैं,—

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्सासहासमणसाण ।

परिणइ वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥ १३४ ॥

आहार शरीरेन्द्रियनिःश्वासोश्वासभाषामनसां ।

परिणतयः व्यापारेषु च याः षडेव शक्तयः ॥ १३४ ॥

भाषार्थ–जो आहार शरीर इन्द्रिय स्वासोस्वास भाषा मन इनिका परिणमनकी प्रवृत्तिविषैं सामर्थ्य सो छह प्रकार है. **भावार्थ**–आत्माके यथायोग्य कर्मका उदय होतें आहारादिक ग्रहणकी शक्तिका होना सो शक्तिरूप पर्याप्त कहिये सो छह प्रकार है ।

आगें शक्तिका कार्य कहै हैं ।

तस्सेव कारणाणं पुग्गलखंधाण जा हु णिप्पत्ती ।

सा पज्जत्ती भण्णदि छब्भेया जिणवरिंदेहिं ॥ १३५ ॥

तस्याः एव कारणानां पुद्गलस्कन्धानां या स्फुटं निष्पत्तिः ।

सा पर्य्याप्तिः भण्यते षड्भेदाः जिनवरेन्द्रैः ॥ १३५ ॥

भाषार्थ–तिस शक्ति प्रवृत्तिकी पूर्णताकूं कारण जे पुद्गलके स्कंध तिनिकी प्रगटपणैं निष्पत्ति कहिये पूर्णता होना ताकूं पर्याप्त ऐसा जिनेन्द्र देवने कह्या है ।

आगें पर्य्याप्त निवृत्यपर्याप्तके कालकूं कहै हैं,—

पज्जत्तिं गिह्णंतो मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि ।
ता णिव्वत्तिअपुण्णो मणुपुण्णो भण्णदे पुण्णो ॥ १३६ ॥

पर्याप्तिं गृह्णन् मनःपर्य्याप्तिं न यावत् समाप्नोति ।
तावत् निर्वृत्यपर्य्याप्तकः मनःपूर्णः भण्यते पूर्णः ॥ १३६ ॥

भाषार्थ—यह जीव पर्याप्तकूं ग्रहण करता संता जेतै मनःपर्याप्तकूं पूर्ण न करै तेतै निर्वृत्यपर्याप्त कहिये. बहुरि जब मनःपर्याप्त पूर्ण होय तब पर्याप्त कहिये. **भावार्थ**—इहां सैनी पंचेन्द्रिय जीवकी अपेक्षा मनमैं धारि ऐसैं कथन कीया है. अन्य ग्रन्थनिमैं जेतै शरीर पर्याप्त पूर्ण न होय तेतै निर्वृत्यअपर्याप्त है. ऐसैं कथन सर्व जीवनिका कह्या है। (१)

आगें लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहै हैं,—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणोदि ।
एका वि य पज्जत्ती लद्धिअपुण्णो हवे सो दु ॥ १३७ ॥

उच्छ्वासाष्टदशैकभागे यः म्रियते न च समाप्नोति ।
एकां अपि च पर्याप्तिं लब्ध्यपर्याप्तकः भवेत् स तु ॥ १३७ ॥

भाषार्थ—जो जीव स्वासके अठारवैं भागमैं मरै एक भी पर्याप्त पूर्ण न करै सो जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहिये (२)।

---

(१) उक्तं च ग्रन्थान्तरे.

पज्जत्तस्स य उदये णिय णिय पज्जति णिट्ठिदो होदि ।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णगो ताव ॥ १ ॥
पर्य्याप्तस्स च उदये निजनिजपर्याप्तिनिष्ठितः भवति ।
यावत् शरीर अपूर्णं निर्वृत्यपूर्णकः तावत् ॥ १ ॥

(२) गोमट्टसारोक्तगाथात्रयमाह—

तिण्णसया छत्तीसा छावट्ठीसहस्सगाणि मरणानि ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १ ॥
षट्त्रिंशत्रिशताधिकषट्सहस्रकानि मरणानि ।
अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तः च एव क्षुद्रभवाः ॥ १ ॥
सीदीसट्ठीतालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे ।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ २ ॥
अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशत् विकले चतुर्विंशतिः भवन्ति पञ्चाक्षे ।
षट्षष्टिः च सहस्राणि शत च द्वात्रिंशत् एकाक्षे ॥ २ ॥
पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बारखं छक्कं ॥ ३ ॥
पृथ्वीदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः ।
एतेषु अपूर्णेषु च एकैकस्मिन् द्वादश षट्सहस्राणि ॥ ३ ॥

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकै पर्याप्तनिकी संख्या कहै हैं,—

लद्धिअपुण्णे पुण्णं पज्जत्ती एयक्खवियलसण्णीणं।
चदु पण छक्कं कमसो पज्जत्तीए वियाणेह ॥ १३८ ॥

लब्ध्यपर्याप्तके पूर्णं पर्याप्त्या एकाक्षविकलसंज्ञिनाम्।
चतस्रः पञ्च षट् क्रमशः पार्याप्तयः विजानीहि ॥ १३८ ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि विकलत्रयकै पांच सैनी पंचेन्द्रियकै छह ऐसैं क्रमतें पर्याप्त जाणूं. बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक है सो अपर्याप्तक है. याकै पर्याप्त नाहीं. भावार्थ—एकेन्द्रियादिककै क्रमतें पर्याप्त कहे. इहां असैनीका नाम लीया नहीं तहां तौ सैनीकै छह असैनीकै पांच जाननें. बहुरि निर्वृत्यपर्याप्त ग्रहण कीये ही हैं पूर्ण होसी ही तातैं जो संख्या कही है सो ही है. बहुरि लब्ध्यपर्याप्त यद्यपि ग्रहण कीया है तथापि पूर्ण होय शक्या नाहीं, तातैं ताकूं अपूर्ण ही कह्या ऐसा सूचै है. ऐसें पर्याप्तका वर्णन कीया।

आगें प्राणनिका वर्णन करै हैं तहां प्रथमही प्राणनिका स्वरूप वा संख्या कहै हैं।

मणवयणकायइंदियणिस्सासुस्सासआउरुदयाणं।
जेसिं जोए जम्मदि मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा॥१३९॥

मनोवचनकायेन्द्रियनिःश्वासोच्छ्वासायुरुदयानां।
येषां योगे जायते म्रियते वियोगे ते अपि दश प्राणाः ॥ १३९ ॥

भाषार्थ—जो मन वचन काय इन्द्रिय स्वासोस्वास आयु है तिनके संयोगतैं तौ उपजै जीवै, बहुरि इनिकै वियोगतैं मरै, ते प्राण कहिये. ते दश हैं. **भावार्थ**—जीव ऐसा प्राणधारण अर्थ है सो व्यवहार नयकरि दश प्राण हैं. तिनमैं यथा-योग्य प्राणसहित जीवै ताकूं जीवसंज्ञा है।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकै प्राणनिकी संख्या कहै हैं,—

एयक्खे चदुपाणा बितिचउरिंदिय असण्णि सण्णीणं।
छह सत्त अट्ठ णवयं दह पुण्णाणं कमे पाणा ॥ १४० ॥

एकाक्षे चतुःप्राणाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनाम्।
षट् सप्त अष्ट नवकं दश पूर्णानां क्रमेण प्राणाः ॥ १४० ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि प्राण हैं बेइंद्रिय तेइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी पंचेन्द्रिय सैनी पंचेन्द्री इनिकै पर्याप्तनिकै अनुक्रमतैं छह सात आठ नव दश प्राण हैं ए प्राण पर्याप्त अवस्थाविषै कहे।

आगें इनिही जीवनिकै अपर्याप्त अवस्थाविषै कहै हैं,—

दुविहाणमपुण्णाणं इगिबितिचउरक्ख अंतिमदुगाणं।
तिय चउ पण छह सत्त य कमेण पाणा मुणेयव्वा ॥ १४१ ॥

द्विविधानां अपूर्णानां एकद्वित्रिचतुरक्षान्तिमद्विकानां ।
त्रयः चत्वारः पञ्च षट् सप्त च क्रमेण प्राणाः ज्ञातव्याः ॥ १४१ ॥

भाषार्थ–दोय प्रकारके अपर्याप्त जे एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी तथा सैनी पंचेन्द्रियनिके तीन च्यारि पांच छह सात ऐसैं अनुक्रमतैं प्राण जानने. **भावार्थ**–निवृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त एकेन्द्रियकै तीन बेइन्द्रियके च्यारि तेइन्द्रियके पांच चतुरिन्द्रियके छह असैनी सैनी पंचेन्द्रियके सात ऐसैं प्राण जानने।

आगें विकलत्रय जीवनिका ठिकाणा कहै हैं,—

बितिचउरक्खा जीवा हवंति णियमेण कम्मभूमीसु।
चरमे दीवे अद्धे चरम समुद्दे वि सव्वेसु ॥ १४२ ॥

द्वित्रिचतुरक्षाः जीवाः भवन्ति नियमेन कर्मभूमिषु ।
चरमे द्वीपे अर्द्धे चरमसमुद्रे अपि सर्वेषु ॥ १४२ ॥

भाषार्थ–द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय जे विकलत्रय कहावैं ते जीव नियमकरि कर्मभूमिविषै ही होय हैं तथा अंतका आधा द्वीप तथा अंतका सारा समुद्रविषै होय हैं. भोगभूमिविषै न होय हैं. **भावार्थ**–पंच भरत पंच ऐरावत पंच विदेह ए कर्मभूमिके क्षेत्र हैं तथा अंतका स्वयंप्रभ द्वीपकै बीचि स्वयंप्रभ पर्वत है तातैं परैं आधा द्वीप तथा अंतका स्वयंभूरमण सारा समुद्र एती जायगां विकलत्रय हैं और जायगां नाहीं।

आगें अढाई द्वीपतैं बाह्य तिर्यंच हैं तिनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत सारिखी है ऐसैं कहै हैं,—

माणुसखित्तस्स बहिं चरमे दीवस्स अद्धयं जाव।
सव्वत्थे वि तिरिच्छा हिमवदतिरिएहिं सारित्था ॥ १४३ ॥

मनुष्यक्षेत्रस्य बहिः चरमे द्वीपस्य अर्द्धकं यावत् ।
सर्वत्र अपि तिर्यञ्चः हिमवततिर्यग्भिः सदृशाः ॥ १४३ ॥

भाषार्थ–मनुष्य क्षेत्रतैं बारैं मानुषोत्तर पर्वततैं परैं अंतका द्वीप जो स्वयंप्रभ ताका आधाकै उरैं बीचिकै सर्व द्वीप समुद्रके तिर्यंच हैं ते हैमवत क्षेत्रके

तिर्यञ्चनि सारिखे हैं. भावार्थ—हैमवतक्षेत्रमैं जघन्य भोगभूमि है. सो मानुषोत्तर पर्वततैं परैं असंख्यात द्वीप समुद्र आधा स्वयंप्रभ नामा अंतका द्वीपतांई समस्तमैं जघन्य भोगभूमिकी रचना है वहांके तिर्यंचनिकी आयु काय हैमवत क्षेत्रके तिर्यञ्चनिसारिखी है।

आगें जलचर जीवनिका ठिकाणा कहै हैं,—

लवणोए कालोए अंतिमजलहिम्मि जलयरा संति।
सेससमुद्देसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण ॥१४४॥

लवणोदके कालोदके अन्तिमजलधौ जलचराः सन्ति।
शेषसमुद्रेषु पुनः न जलचराः सन्ति नियमेन ॥ १४४ ॥

भाषार्थ—लवणोद समुद्रविषै बहुरि कालोद समुद्रविषै तथा अंतका स्वयंभूरमण समुद्रविषै जलचर जीव हैं. बहुरि अवशेष बीचिके समुद्रनिविषै नियमकरि जलचर जीव नाहीं हैं।

आगें देवनिके ठिकाणे कहै हैं. तहां प्रथम भवनवासी व्यंतरनिके कहै हैं,—

खरभायपंकभाए भावणदेवाण होंति भवणाणि।
विंतरदेवाण तहा दुह्णं पि य तिरियलोए वि ॥ १४५ ॥

खरभागपङ्कभागे भावनदेवानां भवन्ति भवनानि।
व्यन्तरदेवानां तथा द्वयमपि च तिर्यग्लोके अपि ॥ १४५ ॥

भाषार्थ—खरभाग पंकभागविषै भवनवासीनिके भवन हैं तथा व्यन्तर देवनिके निवास हैं. बहुरि इन दोऊनिके तिर्यग्लोकविषै भी निवास हैं. **भावार्थ**—पहली पृथ्वी रत्नप्रभा एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटी ताकै तीन भाग तामैं खरभाग सोलह हजार योजनका, ताविषै असुरकुमार विना नवकुमार भवनवासीनिके भवन हैं. तथा राक्षसकुल विना सात कुल व्यंतरनिके निवास हैं. बहुरि दूसरा पंकभाग चौरासी हजार योजनका तामैं असुर कुमार भवनवासी तथा राक्षसकुल व्यंतर वसै हैं. बहुरि तिर्यग्लोक जो मध्यलोक असंख्याते द्वीप समुद्र तिनिमैं भवनवासीनिकै भी भवन हैं. बहुरि व्यंतरनिके भी निवास हैं।

आगें ज्योतिषी तथा कल्पवासी तथा नारकीनिकी वसती कहै हैं,—

जोइसियाण विमाणा रज्जूमित्ते वि तिरियलोए वि।
कप्पसुरा उड्ढम्हि य अहलोए होंति णेरइया ॥ १४६ ॥

ज्योतिषां विमानाः रज्जूमात्रे अपि तिर्यग्लोके अपि।
कल्पसुराः ऊर्ध्वे च अधोलोके भवन्ति नैरयिकाः ॥ १४६ ॥

भाषार्थ–ज्योतिषी देवनिके विमान एक राजू प्रमाण तिर्यग्लोक असंख्यात द्वीप समुद्र है, तिनकै ऊपरि तिष्ठै हैं. बहुरि कल्पवासी ऊर्ध्वलोकविषै हैं. बहुरि नारकी अधोलोकविषै हैं ।

आगें जीवनिकी संख्या कहै हैं, तहां तेजवातकायके जीवनिकी संख्या कहै हैं.

वादरपज्जत्तिजुदा घणआवलिया असंखभागो दु ।
किंचूणलोयमित्ता तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥ १४७ ॥

वादरपर्याप्तियुताः घनावलिः असंख्यभागमात्राः तु ।
किञ्चिन्न्यूनलोकमात्राः तेजसः वायवः यथाक्रमशः ॥ १४७ ॥

भाषार्थ–अग्निकाय वातकायके वादरपर्याप्तसहित जीव हैं ते घन आवलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ घाटि लोकके प्रदेशप्रमाण यथा अनुक्रम जानने. **भावार्थ**–अग्निकायके घनआवलीके असंख्यातवें भाग वातकायके क्योंएक घाटि लोकप्रदेशप्रमाण हैं।

आगें पृथ्वी आदिकी संख्या कहै हैं,—

पुढवीतोयसरीरा पत्तेया वि य पइट्ठिया इयरा ।
होंति असंखा सेढी पुण्णापुण्णा य तह य तसा ॥ १४८ ॥

पृथ्वीतोयशरीराः प्रत्येकाः अपि च प्रतिष्ठिताः इतरे ।
भवन्ति असंख्यातश्रेणयः पर्याप्ताः अपर्याप्ताः च तथा च त्रसाः ॥ १४८ ॥

भाषार्थ–पृथ्वीकायक अपकायक प्रत्येकवनस्पतिकायक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ए सारे पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं ते जुदे जुदे असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण हैं ।

वादरलद्धिअपुण्णा असंखलोया हवंति पत्तेया ।
तह य अपुण्णा सुहुमा पुण्णा वि य संखगुणगुणिया ॥ १४९॥

वादरलब्ध्यपर्याप्तकाः असंख्यातलोकाः भवन्ति प्रत्येकाः ।
तथा च अपूर्णाः सूक्ष्माः पूर्णाः अपि च संख्यातगुणगुणिताः ॥ १४९ ॥

भाषार्थ–प्रत्येक वनस्पतिकाय तथा वादर अलब्ध्यपर्याप्तक जीव हैं ते असंख्यात लोकप्रमाण हैं. ऐसैं ही सूक्ष्मअपर्याप्तक असंख्यात लोकप्रमाण हैं बहुरि सूक्ष्मपर्याप्तक जीव हैं ते संख्यात गुणे हैं ।

सिद्धा संति अणंता सिद्धाहिंतो अणंतगुणगुणिया ।
होंति णिगोदा जीवा भाग अणंता अभव्वा य ॥ १५० ॥

सिद्धाः सन्ति अनन्ताः सिद्धेभ्यः अनन्तगुणगुणिताः ।
भवन्ति निगोदाः जीवाः अनन्तभागमात्राः अभव्याः च ॥ १५० ॥

भाषार्थ–सिद्ध जीव अनन्ते हैं बहुरि सिद्धनितैं अनन्त गुणें निगोद जीव हैं बहुरि सिद्धनिके अनन्तवैं भाग अभव्य जीव हैं ।

सम्मुच्छिया हु मणुया सेढियसंखिज्ज भागमित्ता हु ।
गब्भजमणुया सव्वे संखिज्जा होंति णियमेण ॥ १५१ ॥

सम्मूर्छनाः स्फुटं मनुष्यः श्रेणिअसंख्यातभागमात्राः स्फुटं ।
गर्भजमनुष्याः सर्वे संख्याताः भवन्ति नियमेन ॥ १५१ ॥

भाषार्थ–सन्मूर्छन मनुष्य हैं ते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं बहुरि गर्भज मनुष्य हैं ते नियमकरि संख्यात ही हैं ।

आगें सान्तर निरन्तरकूं कहे हैं,—

देवा वि णारया वि य लद्धियपुण्णा हु संतरा होंति ।
सम्मुछिया वि मणुया सेसा सव्वे णिरंतरया ॥ १५२ ॥

देवाः अपि नारकाः अपि च लब्ध्यपर्याप्ताः स्फुटं सान्तराः भवन्ति ।
सम्मूर्छनाः अपि मनुष्याः शेषाः सर्वे निरन्तराः ॥ १५२ ॥

भाषार्थ–देव तथा नारकी बहुरि लब्ध्यपर्याप्त बहुरि सन्मूर्छन मनुष्य एते तौ सान्तर कहिये अन्तरसहित हैं. अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं. **भावार्थ**–पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेतै वीचमें अन्तर रहै ताकूं सांतर कहिये सो इहां नाना जीव अपेक्षा अन्तर कह्या है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमैं न होय सो तो अन्तर कहिये. बहुरि अंतर न पडै सो निरंतर कहिये. सो वैक्रियक मिश्रकाय योगी जे देव नारकी तिनिका तौ बारह मुहूर्त्तका कह्या है. कोई ही न उपजै तो बारह मुहूर्त्त तांई न उपजै. बहुरि सन्मूर्छन मनुष्य कोई ही न होय तौ पल्यके असंख्यातवैं भाग कालतांई न होय. ऐसैं अन्य ग्रन्थनिमें कह्या है अवशेष सर्व जीव निरंतर उपजै हैं ।

आगें जीवनिकूं संख्याकरि अल्प बहुत कहै हैं,—

मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया ।
सव्वे हवंति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो ॥ १५३ ॥

मनुष्यात् नैरयिकाः नैरयिकात् असंख्यातगुणगुणिताः ।
सर्वे भवन्ति देवाः प्रत्येकवनस्पतयः ततः ॥ १५३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यनितैं नारकी असंख्यात गुणे हैं. नारकीनितैं सर्व देव असंख्यात गुणे हैं. देवनितैं प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणे हैं ।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा ।
वेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संखाए ॥ १५४ ॥

पञ्चाक्षाः चतुरक्षाः लब्ध्यपर्याप्ताः तथैव त्र्यक्षाः ।
द्व्यक्षाः अपि च क्रमशः विशेषसहिताः स्फुटं सर्वसंख्यया ॥ १५४ ॥

भाषार्थ—पंचेन्द्रिय चौइन्द्रिय तेइन्द्रिय बेइन्द्रिय ये लब्ध्यपर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं. किछू अधिककूं विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतैं बधते बधते हैं।

चउरक्खा पंचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा ।
एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव ॥ १५५ ॥

चतुरक्षाः पञ्चाक्षाः द्व्यक्षाः तथा च जानीहि त्र्यक्षाः ।
एते पर्याप्तियुताः अधिकाः अधिकाः क्रमेण एव ॥ १५५ ॥

भाषार्थ—चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसैं ही तेइन्द्रिय ये पर्याप्तसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु ।

परिवज्जिय सुहुमाणं सेसतिरिक्खाण पुण्णदेहाणं ।
इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णाणं ॥ १५६ ॥

परिवर्जयित्वा सूक्ष्मानां शेषतिरश्चां पूर्णदेहानाम् ।
एकः भागः भवति स्फुटं संख्यातीताः अपूर्णानाम् ॥ १५६ ॥

भाषार्थ—सूक्ष्म जीवनिकूं छोडि अवशेष पर्याप्त तिर्यञ्च हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त है. बहुरि बहुभाग असंख्याते अपर्याप्त हैं. भावार्थ—बादर जीवनिविषै पर्याप्त थोरे हैं अपर्याप्त बहुत हैं ।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण ।
संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाणं ॥ १५७ ॥

सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तानां एकः भागः भवति नियमेन ।
संख्याताः खलु भागाः तेषां पर्याप्तदेहानाम् ॥ १५७ ॥

भाषार्थ–सूक्ष्मपर्याप्त जीव संख्यात भाग हैं इनिमें अपर्याप्तक एक भाग है. **भावार्थ**–सूक्ष्म जीवनिमैं पर्याप्त बहुत हैं अपर्याप्त थोरे हैं।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला दु आणदं जाव ।
तत्तो असंख गुणिदा सोहम्मं जाव पडिपडलं ॥ १५८ ॥

संख्यातगुणाः देवाः अन्तिमपटलात् तु आनतं यावत् ।
ततः असंख्यातगुणाः सौधर्म्मं यावत् प्रतिपटलम् ॥ १५८ ॥

भाषार्थ–देव हैं ते अंतिम पटल जो अणुत्तर विमान तातैं ले अर नीचै आणत स्वर्गका पटलपर्यन्त संख्यात गुणें है. तापीछै नीचैं सौधर्म्मपर्यंत असंख्यात गुणे पटलपटलप्रति हैं।

सत्तमणारयहिंतो असंखगुणिदा हवंति णेरइया ।
जावय पढमं णरयं बहुदुक्खा होंति हेट्ठट्ठा ॥ १५९ ॥

सप्तमनारकेभ्यः असंख्यगुणिताः भवन्ति नैरयिकाः ।
यावच्च प्रथमं नरकं बहुदुःखाः भवन्ति अधोऽधः ॥ १५९ ॥

भाषार्थ–सातवां नरकतैं ले ऊपरि पहला नरकतांई जीव असंख्यात असंख्यात गुणे हैं. बहुरि प्रथम नरकतैं ले नीचैं नीचैं बहुत दुःख हैं।

कप्पसुरा भावणया विंतरदेवा तहेव जोइसिया ।
बे होंति असंखगुणा संखगुणा होंति जोइसिया ॥ १६० ॥

कल्पसुराः भावनाः व्यन्तरदेवाः तथैव ज्योतिष्काः ।
द्वौ भवतः असंख्यगुणौ संख्यातगुणाः भवन्ति ज्योतिष्काः ॥ १६० ॥

भाषार्थ–कल्पवासी देवनितैं भवनवासीदेव व्यंतरदेव ए दोय रासि तौ असंख्यात गुणा है. बहुरि ज्योतिषीदेव व्यन्तरनितैं संख्यातगुणे हैं।

आगें एकेन्द्रियादिक जीवनिकी आयु कहै हैं,—

पत्तेयाणं आऊ वाससहस्साणि दह हवे परमं ।
अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं ॥ १६१ ॥

प्रत्येकानां आयुः वर्षसहस्राणि दश भवेत् परमम् ।
अन्तर्मुहूर्त्तं आयुः साधारणसर्वसूक्ष्माणाम् ॥ १६१ ॥

भावार्थ–प्रत्येक वनस्पतिकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्षकी है. बहुरि साधारण नित्य इतर निगोद सूक्ष्म बादर तथा सर्व ही सूक्ष्म, पृथ्वीअपतेजवात कायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त्तकी है।

आगें बादर जीवनिकी आयु कहै हैं,—

बावीससत्तसहसा पुढवीतोयाण आउसं होदि।
अग्गीणं तिण्णि दिणा तिण्णि सहस्साणि वाऊणं॥ १६२॥

द्वाविंशतिसप्तसहस्राणि पृथ्वीतोयानां आयुष्कं भवति।
अग्नीनां त्रीणि दिनानि त्रीणि सहस्राणि वायूनाम्॥ १६२॥

भावार्थ–पृथ्वीकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी है. अपकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्षकी है. अग्निकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन दिनकी है. वायुकायक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्षकी है।

आगें वेन्द्रिय आदिककी आयु कहै हैं,—

बारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे।
चउरक्खे छम्मासा पंचक्खे तिण्णि पल्लाणि॥ १६३॥

द्वादशवर्षाणि द्व्यक्षे एकोनपञ्चाशत दिनानि त्र्यक्षे।
चतुरक्षे षण्मासाः पञ्चाक्षे त्रीणि पल्यानि॥ १६३॥

भावार्थ–वेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्षकी है. तेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनकी है. चौइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु छह महीनाकी है. पञ्चेन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु भोगभूमिकी अपेक्षा तीन पल्यकी है।

आगें सर्व ही तिर्यंच अर मनुष्यनिकी जघन्य आयु कहै हैं,—

सव्वजहण्णं आऊ लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं।
मज्झिमहीणमुहुत्तं पज्जत्तिजुदाण णिक्किट्ठं॥ १६४॥

सर्वजघन्यं आयुः लब्ध्यपर्याप्तानां सर्वजीवानाम्।
मध्यमान्तर्मुहूर्त्तमात्रं पर्याप्तयुतानां निःकृष्टम्॥ १६४॥

भावार्थ–लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिकी जघन्य आयु मध्यमहीनमुहूर्त्त है. सो यह क्षुद्रभवमात्र जाननी. एक उस्वासकै अठारहवैं भाग मात्र है. बहुरि जिनकै लब्ध्यपर्याप्त होय, ऐसैं कर्मभूमिके तिर्यंच मनुष्य तिनि सर्व ही पर्याप्त जीवनकी जघन्य आयु भी मध्यहीनमुहूर्त्त है. सो यह पहलेतैं बड़ा मध्यअन्तर्मुहूर्त्त है।

अब देवनारकीनिकीआयु कहै हैं,—

देवाण णारयाणं सायरसंखा हवंति तेतीसा ।
उक्किट्ठं च जहण्णं वासाणं दस सहस्साणि ॥ १६५ ॥

देवानां नारकाणां सागरसंख्या भवन्ति त्रयस्त्रिंशत् ।
उत्कृष्टं च जघन्यं वर्षाणां दशसहस्राणि ॥ १६५ ॥

भाषार्थ—देवनिकी तथा नारकी जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है. बहुरि जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है. **भावार्थ**—यह सामान्य देवनिकी अपेक्षा कही है विशेष त्रैलोक्यसार आदि ग्रंथनितैं जाननी ।

आगें एकेन्द्रिय आदि जीवनिकी शरीरकी अवगाहना उत्कृष्ट जघन्य दश गाथानिमैं कहै हैं,—

अंगुलअसंखभागो एयक्खचउक्कदेहपरिमाणं ।
जोयणसहस्समहियं पउमं उक्कस्सयं जाण ॥ १६६ ॥

अङ्गुलासंख्यातभागमात्रं एकाक्षचतुष्कदेहपरिमाणं ।
योजनसहस्रं अधिकं पद्मं उत्कृष्टं जानीहि ॥ १६६ ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रिय चतुष्क कहिये पृथ्वी अप तेज वायु कायके जीवनिकी अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. इहां सूक्ष्म-तथा वादर पर्याप्तिक अपर्याप्तिकका शरीर छोटा बड़ा है. तोऊ घनांगुलके असंख्यातवैं भाग ही सामान्यकरि कह्या. विशेष गोमट्टसारतैं जानना. बहुरि अंगुल उत्सेधअंगुल आठ यव प्रमाण लेणी. प्रमाणांगुल न लेणी.बहुरि प्रत्येक वनस्पती कायकविषै उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है ताकी किछू अधिक हजार योजन है।

वारसजोयण संखो कोसतियं गुब्भिया समुद्दिट्ठा ।
भमरो जोयणमेगं सहस्स सम्मुच्छिदो मच्छो ॥ १६७ ॥

द्वादशयोजनायामः संखः क्रोशत्रिकं ग्रेष्मिका समुद्दिष्टा ।
भ्रमरः योजनं एकं सहस्रं सम्मूर्च्छितः मत्स्यः ॥ १६७ ॥

भाषार्थ—वेइन्द्रियविषै संख बड़ा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन लांबी है. तेइन्द्रियविषै गोभिका कहिये कानखिजूरा बडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश लांबी है. बहुरि चौइन्द्रियविषै बडा भ्रमर है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन लांबी है. बहुरि पंचेन्द्रियविषै बडा मच्छ है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लांबी है. ए जीव अंतका स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्रमैं जानने ।

अब नारकीनिकी उत्कृष्ट अवगाहना कहै हैं,—

पंचसयाधणुछेहा सत्तमणरए हवंति णारइया ।
तत्तो उस्सेहेण य अद्धद्धा होंति उवरुवरिं ॥ १६८ ॥

पञ्चशतधनुरुत्सेधाः सप्तमनरके भवन्ति नारकाः ।
ततः उत्सेधेन च अर्द्धार्द्धा भवन्ति उपर्युपरि ॥ १६८ ॥

भावार्थ—सातवें नरकविषें नारकी जीवनिका देह पांचसै धनुष ऊंचा है. ताके ऊपरि देहकी ऊंचाई आधी आधी है. छट्ठामैं दोसै पचास धनुष, पांचवामैं एकसौ पच्चीस धनुष, चौथामैं साढावासठि धनुष, तीसरामैं सवाइकतीस धनुष, दूसरामैं पनरा धनुष आना दश, पहलामैं सात धनुष तेरह आना, ऐसैं जानना. इनमैं पटल गुणचास हैं तिनिविषें न्यारी न्यारी विशेष अवगाहना त्रैलोक्यसारतैं जाननी ।

अब देवनिकी अवगाहना कहै हैं,—

असुराणं पणवीसं सेसं णवभावणा य दहदंडं ।
विंतरदेवाण तहा जोइसिया सत्तधणुदेहा ॥ १६९ ॥

असुराणां पञ्चविंशतिः शेषाः नवभावनाश्च दशदण्डाः ।
व्यन्तरदेवानां तथा ज्योतिष्काः सप्तधनुर्देहाः ॥ १६९ ॥

भावार्थ—भवनवासीनिविषें असुर कुमार हैं तिनकी देहकी ऊंचाई पच्चीस धनुष, वाकी नवनिकी दश धनुष, अर व्यंतरनिकी देहकी ऊंचाई दश धनुष है. अर ज्योतिषी देवनिकी देहकी ऊंचाई सात धनुष है ।

अब स्वर्गके देवनिकी कहै हैं,—

दुगदुगचदुचदुदुगदुगकप्पसुराणं सरीरपरिमाणं ।
सत्तछहपंचहत्था चउरो अद्धद्ध हीणा य ॥१७०॥
हिट्ठिममज्झिमउवरिमगेवज्झे तह विमाणचउदसए ।
अद्धजुदा वे हत्था हीणं अद्धद्धयं उवरि ॥ १७१ ॥

द्विकद्विकचतुश्चतुर्द्विकद्विकविकल्पसुराणां शरीरपरिमाणम् ।
सप्तषट्पञ्चहस्ताः चत्वारः अर्द्धार्द्धहीनाः च ॥ १७० ॥
अधस्तनमध्यमोपरिमग्रैवेयकेषु तथा विमानचतुर्दशसु ।
अर्द्धयुक्तौ द्वौ हस्तौ हीनं अर्द्धार्द्धकं उपरि ॥ १७१ ॥

भावार्थ—सौधर्म्म ईशान जुगलके देवनिका देह सात हाथ ऊंचा है. सानत्कुमार माहेन्द्र युगलके देवनिका देह छह हाथ ऊंचा है. ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव का-

पिष्ट इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह पांच हाथ ऊंचा है. शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह च्यारि हाथ ऊंचा है. आणत प्राणत युगल देवनिका देह साडा तीन हाथ ऊंचा है. आरण अच्युतविषैं देवनिका देह तीन हाथ ऊंचा है। अधोग्रैवेयकविषै देवनिका देह अढाई हाथ ऊंचा है. मध्यमग्रैवेयकविषै देवनिका देह दोय हाथ ऊंचा है ऊपरिके ग्रैवेयकविषै देवनिका देह ड्योढ हाथ ऊंचा है. नव अणुदिस पंच अणुत्तरविषै देवनिका देह एक हाथ ऊंचा हैं।

आगें भरत ऐरावत क्षेत्रविषै कालकी अपेक्षातें मनुष्यनिका शरीरकी ऊंचाई कहै हैं।

अवसप्पिणिए पढमे काले मणुया तिकोसउच्छेहा ।
छट्ठस्स वि अवसाणे हत्थपमाणा विवत्था य ॥ १७२ ॥

अवसर्पिण्याः प्रथमे काले मनुष्याः त्रिकोशोत्सेधाः ।
षष्ठस्य अपि अवसाने हस्तप्रमाणाः विवस्त्राः च ॥ १७२ ॥

भाषार्थ–अवसर्पिणीका पहला कालविषै आदिमें मनुष्यनिका देह तीन कोश ऊंचा है. बहुरि छटाकालका अंतमें मनुष्यनिका देह एक हाथ ऊंचा है. बहुरि छटा कालका जीव वस्त्रादिकरि रहित होय हैं।

आगें एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह कहै हैं,—

सव्वजहण्णो देहो लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
अंगुलअसंखभागो अणेयभेओ हवे सो वि ॥ १७३ ॥

सर्वजघन्यः देहः लब्ध्यपर्याप्तानां सर्वजीवानाम् ।
अङ्गुलाऽसंख्यातभागः अनेकभेदः भवेत सः अपि ॥ १७३ ॥

भाषार्थ–लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिका देह घनअंगुलके असंख्यातवें भाग है. सो यह सर्व जघन्य है.सो यामें भी अनेक भेद हैं. **भावार्थ**–एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह भी छोटा बडा है.सो घनांगुलके असंख्यातवें भागमें भी अनेक भेद हैं. सो गोमट्टसारविषै अवगाहनाके चौसठि भेदनिका वर्णन है तहांतें जानना।

आगें बेइन्द्रिय आदिकी जघन्य अवगाहना कहै हैं,—

वितिचउपंचक्खाणं जहण्णदेहो हवेइ पुण्णाणं ।
अंगुलअसंखभाओ संखगुणो सो वि उवरुवरि ॥१७४॥

द्वित्रिचतुःपञ्चाक्षाणां जघन्यदेहः भवति पर्याप्तानाम् ।
अङ्गुलाऽसंख्यातभागः संख्यातगुणः सः अपि उपर्युपरि ॥ १७४ ॥

भाषार्थ–बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवनिका जघन्य देह

घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है.सो भी ऊपरि ऊपरि संख्यात गुणे हैं.भावार्थ–वेइन्द्रियका देहतें संख्यातगुणा तेइन्द्रियका देह है. तेइन्द्रियतैं संख्यात गुणा चौइन्द्रियका देह है. तातें संख्यात गुणा पंचेन्द्रियका है।

आगें जघन्य अवगाहनाका धारक वेइन्द्रिय आदि जीव कौन कौन हैं सो कहै हैं।

आणुधरीयं कुंथं मच्छाकाणा य सालिसिच्छो य।
पज्जत्ताण तसाणं जहण्णदेहो विणिद्दिट्ठो ॥ १७५ ॥

अनुधरीयः कुन्थुः काणमाक्षिका च शालिसिच्छः च।
पर्याप्तानां त्रसानां जघन्यदेहः विनिर्दिष्टः ॥ १७५ ॥

भाषार्थ–वेइन्द्रियतौ अणुद्धरी जीव तेइन्द्रियमें कुंथु जीव चौइन्द्रियमें काण मक्षिका पञ्चेन्द्रियमें शालिसिच्छक नामा मच्छ इनि त्रस पर्याप्त जीवनिकें जघन्य देह कह्या है।

आगें जीवका लोकप्रमाण अर देहप्रमाणपणा कहै हैं,—

लोयपमाणो जीवो देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते।
ओगाहणसत्तीदो संहरणविसप्पधम्मादो ॥ १७६ ॥

लोकप्रमाण. जीवः देहप्रमाणः अपि आम्ने क्षेत्रे।
अवगाहनशक्तितः संहरणविसर्पधर्म्मात् ॥ १७६ ॥

भाषार्थ–जीव है सो लोक प्रमाण है. बहुरि देहप्रमाण भी है जातें संकोच विस्तार धर्म यामें पाइये है. ऐसी अवगाहनाकी शक्ति है. भावार्थ–लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं. सो जीवके भी एते ही प्रदेश हैं. केवल समुद्घात करै तौंकाल लोकपूरण होय है. बहुरि संकोचविस्तारशक्ति यामें है तातें जैसी देह पावै तिसही प्रमाण रहै है. अर समुद्घात करै तब देहातें भी प्रदेश नीसरैं हैं।

आगें कोई अन्यमती जीवकूं सर्वथा सर्वगत ही कहै हैं तिनिका निषेध करै हैं,–

सव्वगओ जदि जीवो सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती।
जाइज्ज ण सा दिट्ठी णियतणुमाणो तदो जीवो ॥ १७७ ॥

सर्वगतः यदि जीवः सर्वत्र अपि दुःखसुखसम्प्राप्तिः।
जायते न सा दृष्टिः निजतनुमानः ततः जीवः ॥ १७७ ॥

भाषार्थ–जो जीव सर्वगत ही होय तौ सर्व क्षेत्रसंबंधी सुखदुःखकी प्राप्ति याकें भई सो तौ नाहीं देखिये है. अपने शरीरमें ही सुखदुःखकी प्राप्ति देखिये है. तातें अपनें शरीरप्रमाणही जीव है।

आगें केई अन्यमती गुणगुणीमें सर्वथा भेद मानि जीवकै अर ज्ञानकै सर्वथा अर्थान्तरभेद मानै हैं तिनिका मत निषेधै हैं,—

जीवो णाणसहावो जह अग्गी उह्णओ सहावेण ।
अत्थंतरभूदेण हि णाणेण ण सो हवे णाणी ॥ १७८ ॥

जीवः ज्ञानस्वभावः यथा अग्निः उष्णः स्वभावेन ।
अर्थान्तरभूतेन हि ज्ञानेन न सः भवेत् ज्ञानी ॥ १७८ ॥

भाषार्थ—जैसैं अग्नि स्वभावकरि ही उष्ण है तैसें जीव है सो ज्ञानस्वभाव है तातैं अर्थान्तरभूत कहिये आपतैं प्रदेशभेदरूप जुदा ज्ञानकरि ज्ञानी नाहीं है. **भावार्थ**—नैयायिक आदि हैं ते जीवकै अर ज्ञानकै प्रदेशभेद मानि करि कहै हैं जो आत्मातैं ज्ञान भिन्न है सो समवायतैं तथा संसर्गतैं एक भया है तातैं ज्ञानी कहिये है. जैसैं धनतैं धनी कहियेतैसें. सो यह मानना असत्य है.आत्माकै अर ज्ञानकै अग्नि अर उष्णताकै जैसें अभेदभाव है तैसें तादात्म्यभाव है।

आगें भिन्नमाननेमैं दूषण दिखावै हैं,—

जदि जीवादो भिण्णं सव्वपयारेण हवदि तं णाणं ।
गुणगुणिभावो य तदा दूरेण प्पणस्सदे दुह्णं ॥ १७९ ॥

यदि जीवतः भिन्नं सर्वप्रकारेण भवति तत् ज्ञानं ।
गुणगुणिभावः च तदा दूरेण प्रणश्यते तयोः ॥ १७९ ॥

भाषार्थ—जो जीवतैं ज्ञान सर्वथा भिन्न ही मानिये तौ तिनि दोऊनिकै गुणगुणिभाव दूरतैं ही नष्ट होय. **भावार्थ**—यह जीव द्रव्य है यह याका ज्ञान गुण है. ऐसा भाव न ठहरै ।

आगें कोई पूछै जो गुण अर गुणीका भेद विना दोय नाम कैसें कहिये ताका समाधान करै हैं—

जीवस्स वि णाणस्स वि गुणगुणिभावेण कीरए भेओ ।
जं जाणदि तं णाणं एवं भेओ कहं होदि ॥ १८० ॥

जीवस्य अपि ज्ञानस्य अपि गुणगुणिभावेन क्रियते भेदः ।
यत् जानाति तत् ज्ञानं एवं भेदः कथंचित् भवति ॥ १८० ॥

भाषार्थ—जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि भेद कथंचित् कीजिये है. बहुरि जो जाणै सो ही आत्माका ज्ञान है ऐसैं भेद कैसें होय. **भावार्थ**—सर्वथा भेद होय तौ जाणै सो ज्ञान है ऐसा अभेद कैसें कहिये तातैं कथंचित् गुणगुणीभाव करि भेद कहिये है प्रदेशभेद नाहीं ।

आगें चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदिका विकार मानै है ताकूं निषेधै हैं,—

णाणं भूयवियारं जो मण्णदि सो वि भूदगहिदव्वो ।
जीवेण विणा णाणं किं केणवि दीसए कत्थ ॥ १८१ ॥

ज्ञानं भूतविकारं यः मन्यते सः अपि भूतगृहीतव्यः ।
जीवेन विना ज्ञानं किं केनापि दृश्यते कुत्र ॥ १८१ ॥

भाषार्थ—जो चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदि जे पंच भूत तिनिका विकार मानै है सो चार्वाक, भूत कहिये पिशाच ताकरि गृह्या है गहिला है. जातें विना ज्ञानके जीव कहां कोईकरि कहूं देखिये है ? कहूं भी नाहीं देखिये है ।

आगें याकूं दूषण बतावैं हैं,—

सच्चेयणपच्चक्खं जो जीवं णेय मण्णदे मूढो ।
सो जीवं ण मुणंतो जीवाभावं कहं कुणदि ॥ १८२ ॥

सच्चेतनप्रत्यक्षं यः जीवं नैव मन्यते मूढः ।
सः जीवं न जानन् जीवाभावं कथं करोति ॥ १८२ ॥

भाषार्थ—यह जीव सत्‌रूप अर चैतन्यरूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाणकरि प्रसिद्ध है. ताहि चार्वाक नाहीं मानै है सो मूर्ख है. जो जीवकूं नाहीं जाणै है नाहीं मानै है तौ जीवका अभाव कैसें करै है. **भावार्थ**—जो जीवकूं जानै ही नाहीं सो अभाव भी न कहि सकै. अभावका कहनेवाला भी तौ जीव ही है. जातैं सद्भावविना अभाव कह्या न जाय ।

आगें याहीकूं युक्तिकरि जीवका सद्भाव दिखावैं हैं,—

जदि ण य हवेदि जीओ तो को वेदेदि सुक्खदुक्खाणि ।
इंदियविसया सव्वे को वा जाणदि विसेसेण ॥ १८३ ॥

यदि न च भवति जीवः तत् कः वेत्ति सुखदुःखानि ।
इन्द्रियविषयान् सर्वान् कः वा जानाति विशेषेण ॥ १८३ ॥

भाषार्थ—जो जीव नाही होय तो अपने सुखदुःखकूं कौन जानै तथा इन्द्रियनिके स्पर्श आदि विषय हैं तिनि सर्वनिकूं विशेषकरि कौन जानै. **भावार्थ**—चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाण मानै है. सो अपने सुखदुःखकूं तथा इन्द्रियनिकै विषयनिकूं जानै सो प्रत्यक्ष सो जीव विना प्रत्यक्ष प्रमाण कौनकै होय ? तातैं जीवका सद्भाव अवश्य सिद्ध होय है ।

आगें आत्माका सद्भाव जैसें बणै तैसें कहै हैं,—

संकप्पमओ जीवो सुहदुक्खमयं हवेइ संकप्पो ।
तं चिय वेयदि जीवो देहे मिलिदो वि सव्वत्थ ॥ १८४ ॥

सङ्कल्पमयः जीवः सुखदुःखमयः भवति सङ्कल्पः ।
तदेव वेत्ति जीवः देहे मिलितः अपि सर्वत्र ॥ १८४ ॥

भावार्थ—जीव है सो संकल्पमयी है. बहुरि संकल्प है सो दुःखसुखमय है. तिस सुखदुःखमयी संकल्पकूं जाणैं सो जीव है. जो देहविषै सर्वत्र मिलि रह्या है तोऊ जाननेवाला जीव है।

आगें जीव देहसूं मिल्याहूवा सर्व कार्यनिकूं करै है यह कहै हैं ।

देहमिलिदो वि जीवो सव्वकम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
तह्मा पयट्टमाणो एयत्तं बुज्झदे दोह्नं ॥ १८५ ॥

देहमिलितः अपि जीवः सर्वकर्माणि करोति यस्मात् ।
तस्मात् प्रवर्तमानः एकत्वं बुध्यते द्वयोः ॥ १८५ ॥

भावार्थ—जातें जीव है सो देहतें मिल्या हूवा ही सर्व कर्म नोकर्मरूप सर्व कार्यनिकूं करै है तातें तिनि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता संता जो लोक ताकूं देहकै अर जीवकै एकपणा भासै है. **भावार्थ**—लोककूं देह अर जीव न्यारे तौ दीखै नाहीं दोऊ मिलेहुये दीखै है संयोगतें ही कार्यनिकी प्रवृत्ति दीखै है तातें दोऊ-निको एक ही मानै है ।

आगें जीवकूं देहतें भिन्न जाननेकूं लक्षण दिखावै हैं,—

देहमिलिदो वि पिच्छदि देहमिलिदो वि णिसुण्णदे सद्दं ।
देहमिलिदो वि भुंजदि देहमिलिदो वि गच्छेई ॥१८६॥

देहमिलितः अपि पश्यति देहमिलितः अपि निशृणोति शब्दं ।
देहमिलितः अपि भुङ्क्ते देहमिलितः अपि गच्छति ॥ १८६ ॥

भावार्थ—जीव है सो देहसूं मिल्या ही नेत्रनिकरि पदार्थनिकूं देखै है. बहुरि देहसूं मिल्या ही काननिकरि शब्दनिकों सुणैं है. बहुरि देहसूं मिल्या ही मुखतें खाय है जीभतें स्वाद ले है बहुरि देहतें मिल्या ही पगनिकरि गमन करै है. **भावार्थ**—देहमें जीव न होय तो जड़रूप केवल देहहीकै देखना स्वाद लेना सुनना गमन करना ए क्रिया न होय. तातें जानियेहै देहमें न्यारा जीव है. सो ही ए क्रिया करै है ।

आगें ऐसें जीवकूं मिले ही मानता लोक भेदकूं न जानै है,—

राओ हं भिच्चो हं सिट्ठि हं चेव दुव्वलो बलिओ ।
इदि एयत्ताविट्ठो दोह्लं भेयं ण वुज्झेदि ॥ १८७ ॥

राजा अहं भृत्यः अहं श्रेष्ठी अहं चैव दुर्बलः बलिष्ठः ।
इति एकत्वाविष्टः द्वयोः भेदं न बुध्यति ॥ १८७ ॥

भाषार्थ–देहकै अर जीवकै एकपणाकी मानिकरि सहित जो लोक है सो ऐसें मानैंहै जो मैं राजा हूं मैं चाकर हूं मैं श्रेष्ठी हूं मैं दुर्बल हूं मैं दरिद्री हूं निवल हूं बलवान हूं ऐसें मानता संता देह जीव दोऊनिकै भेद नाहीं जानै है ।

आगें जीवकै कर्त्तापणा आदिकूं च्यारि गाथानिकरि कहै हैं,—

जीवो हवेइ कत्ता सव्वं कम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
कालाइलद्धिजुत्तो संसारं कुणदि मोक्खं च ॥ १८८ ॥

जीवः भवति कर्त्ता सर्वाणि कर्माणि कुर्वते यस्मात् ।
कालादिलब्धियुक्तः संसारं करोति मोक्षं च ॥ १८८ ॥

भाषार्थ–जातें यह जीव सर्व जे कर्म नोकर्म तिनिकूं करता संता आपका कर्त्तव्य मानै है तातें कर्त्ता भी है सो आपकै संसारकूं करै है. बहुरि काल आदि लब्धि करियुक्त हूवा संता आपकै मोक्षकूं भी आप ही करै है. **भावार्थ**–कोई जानैगा कि या जीवकै सुखदुःख आदि कार्यनिकूं ईश्वर आदि अन्य करै है सो ऐसें नाहीं है आप ही कर्त्ता है. सर्व कार्यनिकूं आप ही करै है. संसार भी आपही करै है. काल लब्धि आवै तब मोक्ष भी आप ही करै है. सर्वकार्यनिप्रति द्रव्यक्षेत्रकालभाव रूप सामग्री निमित्त है ही ।

जीवो वि हवइ भुत्ता कम्मफलं सो वि भुंजदे जह्मा ।
कम्मविवायं विविहं सो चिय भुंजेदि संसारे १८९ ॥

जीवः अपि भवति भोक्ता कर्मफलं सः अपि भुङ्क्ते यस्मात् ।
कर्म्मविपाकं विविधं सः च एव भुनक्ति संसारे ॥ १८९ ॥

भाषार्थ–जातें जीव है सो कर्मका फल या संसारमें भोगवै है तातें भोक्ता भी यह ही है. बहुरि सो कर्मका विपाक संसारविषै सुखदुःखरूप अनेक प्रकार है तिनकूं भी भोगै है ।

जीवो वि हवइ पावं अइतिव्वकसायपरिणदो णिच्चं ।
जीवो हवेइ पुण्णं उवसमभावेण संजुत्तो ॥ १९० ॥

जीवः अपि भवति पापं अतितीव्रकषायपरिणतः नित्यम् ।
जीवः भवति पुण्यं उपशमभावेन संयुक्तः ॥ १९० ॥

भाषार्थ–यह जीव अति तीव्र कषायकरि संयुक्त होय तब यह ही जीव पापरूप होय है. बहुरि उपशम भाव जो मन्दकषायताकरि संयुक्त होय तब यह ही जीव पुण्यरूप होय है. **भावार्थ**–क्रोधमान माया लोभका अति तीव्रपणातैं तौ पाप परिणाम होय हैं. अर इनिका मंदपणातैं पुण्यपरिणाम होय हैं. तिनि परिणामनिसहित पुण्यजीव पापजीव कहिये है. एक ही जीव दोऊं परिणाम युक्त हुवाकै पुण्यजीव पापजीव कहिये है. सो सिद्धान्तकी अपेक्षा ऐसैं ही हैं. जातैं सम्यक्तसहित जीव होय ताकै तो तीव्रकषायनिकी जड़ कटनेतैं पुण्य जीव कहिये. बहुरि मिथ्यादृष्टि जीवकै भेदज्ञानविना कषायनिकी जड़ कटै नाहीं तातैं बाह्यतैं कदाचित् उपशम परिणाम भी दीखै तौ ताकूं पापजीव ही कहिये ऐसा जानना।

रयणत्तयसंजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसारं तरइ जदो रयणत्तयदिव्वणावाए ॥ १९१ ॥

रत्नत्रयसंयुक्तः जीवः अपि भवति उत्तमं तीर्थं ।
संसारं तरति यतः रत्नत्रयदिव्यनावा ॥ १९१ ॥

भाषार्थ–जातैं यह जीव रत्नत्रयरूप सुंदर नावकरि संसारतैं तिरै है पार होय है. तातैं यह ही जीव रत्नत्रयकरि संयुक्त भया संता उत्तम तीर्थ है. **भावार्थ**–तीर्थ नाम जो तिरै तथा जाकरि तिरिये सो है. सो यह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भये रत्नत्रय, सोई भई नाव, ताकरि तरै है तथा अन्यकूं तरनेकूं निमित्त होय है तातैं यह जीव ही तीर्थ है ।

आगें अन्यप्रकार जीवका भेद कहै हैं,—

जीवा हवंति तिविहा वहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।
परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ॥ १९२ ॥

जीवाः भवन्ति त्रिविधाः बहिरात्मानः तथा च अन्तरात्मानः च ।
परमात्मानः अपि च द्विविधाः अर्हतः तथा च सिद्धाः च ॥ १९२ ॥

भाषार्थ–जीव बहिरात्मा अन्तरात्मा परमात्मा ऐसें तीन प्रकार हैं. बहुरि परमात्मा भी अरहंत तथा सिद्ध ऐसैं दोय प्रकार हैं ।

अब इनिका स्वरूप कहै हैं तहां बहिरात्मा कैसा है सो कहै हैं,—

मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
जीवं देहं एक्कं मण्णंतो होदि वहिरप्पा ॥ १९३ ॥

मिथ्यात्वपरिणतात्मा तीव्रकषायेन सुष्ठुआविष्टः।
जीवं देहं एकं मन्यमानः भवति बहिरात्मा ॥ १९३ ॥

भाषार्थ—जो जीव मिथ्यात्व कर्म्मका उदयरूप परिणम्या होय बहुरि तीव्र कषाय अनन्तानुवन्धीकरि सुष्टु कहिये अतिशयकरि युक्त होय इस निमित्ततैं जीवकूं अर देहकूं एक मानता होय सो जीव बहिरात्मा कहिये. भावार्थ—बाह्य पर द्रव्यकूं आत्मा मानै सो बहिरात्मा है. सो यह मानना मिथ्यात्व अनन्तानुवन्धी कषायके उदयकरि होय है तातैं भेदज्ञानकरि रहित हूवा संता देहकूं आदिदेकरि समस्त परद्रव्यविषै अहंकार ममकारकरि युक्त हूवा संता बहिरात्मा कहावै है।

आगैं अन्तरात्माका स्वरूप तीन गाथानिकरि कहै हैं,—

जे जिणवयणे कुसला भेदं जाणंति जीवदेहाणं।
णिज्जियदुट्ठट्ठमया अंतरअप्पा य ते तिविहा ॥ १९४ ॥

ये जिनवचने कुशलाः भेदं जानन्ति जीवदेहयोः।
निर्जितदुष्टाष्टमदाः अन्तरात्मानः च ते त्रिविधाः ॥ १९४ ॥

भाषार्थ—जे जीव जिनवचनविषै प्रवीण हैं बहुरि जीवकै अर देहकै भेद जाणै हैं. बहुरि जीते हैं आठ मद जिननें ते अंतरात्मा हैं. ते उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार हैं. भावार्थ—जो जीव जिनवानीका भले प्रकार अभ्यासकरि जीव अर देहका स्वरूप भिन्न भिन्न जानैं ते अंतरात्मा हैं. तिनिकै जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य्य ये आठ मदके कारण हैं तिनि-विषै अहंकार ममकार नाहीं उपजै है. जातैं ये परद्रव्यके संयोगजनित हैं तातैं इनिविषै गर्व नाहीं करै है ते तीन प्रकार हैं।

अब इनि तीन प्रकारविषै उत्कृष्टकूं कहै हैं,—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिया णिच्चं।
णिज्जियसयलपमाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥ १९५ ॥

पञ्चमहाव्रतयुक्ताः धर्म्मे शुक्ले अपि संस्थिताः नित्यं।
निर्जितसकलप्रमादाः उत्कृष्टाः अन्तरात्मानः भवन्ति ॥ १९५ ॥

भाषार्थ—जे जीव पांच महाव्रतकरि संयुक्त होंय बहुरि धर्म्मध्यान शुक्ल-

ध्यानविषै नित्य ही तिष्टे होंय बहुरि जीते हैं सकल निद्रा आदि प्रमाद जिनिनें ते उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं ।

अब मध्यम अन्तरात्माकूं कहै हैं,—

सावयगुणेहिं जुत्ता पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति ।
जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥ १९६ ॥

श्रावकगुणैः युक्ताः प्रमत्तविरताः च मध्यमाः भवन्ति ।
जिनवचने अनुरक्ताः उपशमशीलाः महासत्त्वाः ॥ १९६ ॥

भावार्थ—जे जीव श्रावकके व्रतनिकरि संयुक्त होय बहुरि प्रमत्त गुणस्थान वर्त्ती जे मुनि होंय ते मध्यम अन्तरात्मा हैं. कैसै हैं ते जिनवरवचनविषै अनुरक्त हैं लीन हैं आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तन न करैं. बहुरि उपशम भाव कहिये मन्दकषाय तिस रूप हैं स्वभाव जिनिका, बहुरि महापराक्रमी हैं परीषहादिकके सहनेमैं दृढ हैं उपसर्ग आये प्रतिज्ञातैं टलैं नाहीं ऐसे हैं ।

अब जघन्य अन्तरात्माकूं कहै हैं,—

अविरयसम्मद्दिट्ठी होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥ १९७ ॥

अविरतसम्यग्दृष्टयः भवन्ति जघन्याः जिनेन्द्रपदभक्ताः ।
आत्मानं निन्दन्तः गुणग्रहणे सुष्ठुअनुरक्ताः ॥ १९७ ॥

भावार्थ—जे जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हैं अथात् सम्यग्दृष्टि तौ जिनकै पाइये है अर चारित्रमोहके उदयकरि व्रतधारि सकैं नाहीं ऐसे जघन्य अन्तरात्मा हैं. ते कैसे हैं ? जिनेन्द्रके चरननिके भक्त हैं. जिनेन्द्र, तिनकी वाणी, तथा तिनिकै अनुसार निर्ग्रन्थ गुरु तिनिकी भक्तिविषै तत्पर हैं. बहुरि अपने आत्माकूं निरंतर निंदते रहै हैं जातैं चारित्रमोहके उदयतैं व्रत धारे जांय नाहीं, अर तिनकी भावना निरंतर रहै तातैं अपने विभाव परिणामनिकी निन्दा करते ही रहै हैं. बहुरि गुणनिके ग्रहणविषै भले प्रकार अनुरागी हैं. जातैं जिनिमैं सम्यग्दर्शन आदि गुण देखै तिनितैं अत्यन्त अनुरागरूप प्रवर्त्तै हैं. गुणनितैं अपना अर परहित जान्या है, तातैं गुणनितैं अनुराग ही होय है. ऐसैं तीन प्रकार अन्तरात्मा कह्या सो गुणस्थाननिकी अपेक्षातैं जानना. भावार्थ—चौथा गुणस्थानवर्त्ती तौ जघन्य अन्तरात्मा, पांचवा छटा गुणस्थानवर्त्ती मध्यम अन्तरात्मा, अर सातवां गुणस्थानतैं लगाय बारहमां गुणस्थानतांई उत्कृष्ट अन्तरात्मा जानना ।

अब परमात्माका स्वरूप कहै हैं,—

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणियसयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्खसंपत्ता ॥ १९८ ॥

सशरीराः अर्हतः केवलज्ञानेन ज्ञातसकलार्थाः ।
ज्ञानशरीराः सिद्धाः सर्वोत्तमसौख्यसंप्राप्ताः ॥ १९८ ॥

भाषार्थ—जे शरीरसहित ते अरहंत हैं कैसे हैं केवलज्ञानकरि जाने हैं सकलपदार्थ जिनूनें ते परमात्मा हैं. बहुरि शरीरकरि रहित हैं ज्ञान ही है शरीर जिनंके, ते सिद्ध हैं. कैसे हैं ? सर्व उत्तम सुखकूं प्राप्त भये हैं ते शरीररहित परमात्मा हैं. **भावार्थ**—तेरमां चौदहमां गुणस्थानवर्त्ती अरहंत शरीरसहित परमात्मा हैं. अर सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित परमात्मा हैं ।

अब परा शब्दका अर्थकूं कहै हैं,—

णिस्सेसकम्मणासे अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती ।
कम्मजभावखए विय सा वि य पत्ती परा होदि ॥ १९९ ॥

निःशेषकर्मनाशे आत्मस्वभावेन या समुत्पत्तिः ।
कर्मजभावक्षये अपि च सा अपि च प्राप्तिः परा भवति ॥ १९९ ॥

भाषार्थ—जे समस्त कर्मका नाश होतसंतें अपने स्वभावकरि उपजै सो परा कहिये. बहुरि कर्मतें उपजे जे औदयिकआदि भाव तिनिका नाश होतैं उपजैं सो भी परा कहिये. **भावार्थ**—परमात्मा शब्दका अर्थ ऐसा है जो परा कहिये उत्कृष्ट मा कहिये लक्ष्मी जाकै होय ऐसा आत्माकूं परमात्मा कहिये है. सो समस्त कर्मनिका नाशकरि स्वभावरूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे सिद्ध, ते परमात्मा हैं. बहुरि घाति कर्मनिका नाशकरि अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे अरहंत ते भी परमात्मा हैं. बहुरि ते ही औदयिक आदि भावनिका नाश करि भी परमात्मा भये कहिये ।

आगें कोई जीवनिकूं सर्वथा शुद्ध ही कहै हैं तिनके मतकूं निषेधै हैं,—

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकाले वि ।
तो तवचरणविहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥ २०० ॥

यदि पुनः शुद्धस्वभावाः सर्वे जीवाः अनादिकाले अपि ।
तत् तपश्चरणविधानं सर्वेषां निष्फलं भवति ॥ २०० ॥

भाषार्थ–जो सर्व जीव अनादि कालविषै भी शुद्ध स्वभाव हैं तो सर्वहीके तपश्चरणविधान है सो निष्फल होय है।

ता किह गिह्लदि देहं णाणाकम्माणि ता कहं कुणइ।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य णाणारूवा कहं होंति ॥ २०१ ॥

तत् कथं गृह्णन्ति देहं नानाकर्माणि तर्हि कथं कुर्वन्ति।
सुखिताः अपि च दुःखिताः अपि च नानारूपाः कथं भवन्ति ॥ २०१ ॥

भाषार्थ–जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहकूं कैसैं ग्रहण करै है? बहुरि नाना प्रकारके कर्मनिकूं कैसैं करै है? बहुरि कोई सुखी है कोई दुःखी है ऐसैं नानारूप कैसैं होय है? तातैं सर्वथा शुद्ध नाहीं है।

आगें अशुद्धता शुद्धताका कारण कहै हैं,—

सव्वे कम्मणिवद्धा संसरमाणा अणाइकालह्मि।
पच्छा तोडिय बंधं सुद्धा सिद्धा धुवा होंति ॥ २०२ ॥

सर्वे कर्म्मनिबद्धाः संसरमाणाः अनादिकाले।
पश्चात् त्रोटयित्वा बन्धं शुद्धाः सिद्धाः ध्रुवाः भवन्ति ॥ २०२ ॥

भाषार्थ–जीव हैं ते सर्व ही अनादिकालतैं कर्म्मकरि बंधे हुये हैं तातैं संसारविषै भ्रमण करै हैं. पीछैं कर्म्मनिके बंधनिकूं तोड़ि सिद्ध होय हैं, तब शुद्ध हैं अर निश्चल होय हैं।

आगें जिस बंधकरि जीव बंधे हैं तिस बंधका स्वरूप कहै हैं,—

जो अण्णोण्णपवेसो जीव पएसाण कम्मखंधाणं।
सव्व वंधाण वि लओ सो वंधो होदि जीवस्स ॥ २०३ ॥

यः अन्योन्यप्रवेशः जीवप्रदेशानां कर्म्मस्कन्धानाम्।
सर्वबन्धानां अपि लयः सः बन्धः भवति जीवस्य ॥ २०३ ॥

भाषार्थ–जो जीवनिके प्रदेशनिका अर कर्म्मनिके बंधनिका परस्पर प्रवेश होना एक क्षेत्ररूप सम्बन्ध होना सो जीवकै प्रदेशबन्ध है. सो यह ही प्रकृति स्थिति अनुभागरूप जे सर्व बंध तिनिका भी लय कहिये एकरूप होना है।

आगें सर्व द्रव्यनिविषै जीव द्रव्य ही उत्तम परम तत्त्व है ऐसा कहै हैं,–

उत्तमगुणाण धामं सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं।
तच्चाण परमतच्चं जीवं जाणेहि णिच्छयदो ॥ २०४ ॥

उत्तमगुणानां धाम सर्वद्रव्याणां उत्तमं द्रव्यं ।
तत्त्वानां परमतत्त्वं जीवं जानीहि निश्चयतः ॥ २०४ ॥

भाषार्थ–जीव द्रव्य है सो उत्तम गुणनिका धाम है ज्ञान आदि उत्तम गुण याहीमैं हैं. बहुरि सर्व द्रव्यनिमैं यह ही द्रव्य प्रधान है. सर्व द्रव्यनिकूं जीव ही प्रकासै है. बहुरि सर्व तत्त्वनिमैं परम तत्त्व जीव ही है अनन्तज्ञान सुख आदिका भोक्ता यह ही है ऐसैं हे भव्य तू निश्चयतैं जाणि ।

आगें जीवहीकै उत्तम तत्त्वपणा कैसैं है सो कहै हैं,—

अंतरतच्चं जीवो वाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
णाणविहीणं दव्वं हियाहियं णेय जाणादि ॥ २०५ ॥

अन्तरतत्त्वं जीवः बाह्यतत्त्वं भवन्ति शेषाणि ।
ज्ञानविहीनं द्रव्यं हेयाहेयं नैव जानाति ॥ २०५ ॥

भाषार्थ–जीव है सो तो अन्तरतत्त्व है. बहुरि बाकीके सर्व द्रव्य हैं ते बाह्यतत्त्व हैं. ते ज्ञानकरि रहित हैं सो जो ज्ञानकरि रहित हैं सो द्रव्य हेय उपादेय वस्तुकूं कैसैं जानै? **भावार्थ**–जीवतत्त्वविना सर्व शून्य है तातैं सर्वका जाननेवाला तथा हेयउपादेयका जाननेवाला जीव ही परम तत्त्व हैं ।

आगें जीव द्रव्यका स्वरूप कहकरि अब पुद्गल द्रव्यका स्वरूप कहै हैं,–

सव्वो लोयायासो पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो भरिदो ।
सुहमेहिं वायरेहिं य णाणाविहसत्तिजुत्तेहिं ॥ २०६ ॥

सर्वः लोकाकाशः पुद्गलद्रव्यैः सर्वतः भृतः ।
सूक्ष्मैः वादरैः च नानाविधशक्तियुक्तैः ॥ २०६ ॥

भाषार्थ–सर्व लोकाकाश है सो सूक्ष्म वादर जे पुद्गल द्रव्य तिनिकरि सर्व प्रदेशनिविषै भर्‍या है. कैसे हैं पुद्गल द्रव्य? नाना शक्तिकरि सहित हैं. **भावार्थ**–शरीर आदि अनेकप्रकार परिणमन शक्तिकरि युक्त जे सूक्ष्म वादर पुद्गल तिनिकरि सर्व लोकाकाश भर्‍या है ।

जं इंदिएहिं गिज्झं रूवरसगंधफासपरिणामं ।
तं चिय पुग्गलदव्वं अणंतगुणं जीवरासीदो ॥ २०७ ॥

यत् इन्द्रियैः ग्राह्यं रूपरसगन्धस्पर्शपरिणामम् ।
तत् एव पुद्गलद्रव्यं अनन्तगुणं जीवराशितः ॥ २०७ ॥

भाषार्थ–जो रूप रस गन्ध स्पर्श परिणाम स्वरूपकरि इन्द्रियनिके ग्रहण करने योग्य हैं ते सर्व पुद्गल द्रव्य हैं. ते संख्याकरि जीवराशितैं अनन्तगुणे द्रव्य हैं ।

अब पुद्गल द्रव्यके जीवका उपकारीपणाकूं कहै हैं,—

जीवस्स बहुपयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्वं ।
देहं च इंदियाणि य वाणी उस्सासणिस्सासं ॥ २०८ ॥

जीवस्य बहुप्रकारं उपकारं करोति पुद्गलं द्रव्यं ।
देहं च इन्द्रियाणि च वाणी उच्छ्वासनिःश्वासम् ॥ २०८ ॥

भाषार्थ–पुद्गल द्रव्य है सो जीवके बहुत प्रकार उपकार करै है. देह करै है, इन्द्रिय करै है, बहुरि वचन करै है, उस्सास निस्वास करै है. **भावार्थ**–संसारी जीवकै देहादिक पुद्गल द्रव्यकरि रचित है. इनिकरि जीवका जीवतव्य है यह उपकार है ।

अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव संसारं ।
मोह अणाणमयं पि य परिणामं कुणइ जीवस्स ॥ १०९ ॥

अन्यमपि एवमादि उपकारं करोति यावत् संसारं ।
मोहं अज्ञानमयं अपि च परिणामं करोति जीवस्य ॥ २०९ ॥

भाषार्थ–पुद्गल द्रव्य है सो जीवकै पूर्वोक्तकूं आदिकरि अन्य भी उपकार करै है. जेतै या जीवकै संसार है तेतै घणे ही परिणाम करै है. मोहपरिणाम, पर द्रव्यनितैं ममत्व परिणाम, तथा अज्ञानमयी परिणाम, ऐसैं सुख दुःख जीवित मरण आदि अनेक प्रकार करै है. यहां उपकार शब्दका अर्थ किछू परिणाम विशेष करै सो सर्व ही लेणा ।

आगें जीव भी जीवकूं उपकार करै है, ऐसा कहै हैं ।

जीवा वि दु जीवाणं उवयारं कुणइ सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेओ पुण्णं पावं च णियमेण ॥ २१० ॥

जीवाः अपि तु जीवानां उपकारं कुर्वन्ति सर्वप्रत्यक्षं ।
तत्र अपि प्रधानहेतुः पुण्यं पापं च नियमेन ॥ २१० ॥

भाषार्थ–जीव हैं ते भी जीवनिकै परस्पर उपकार करै हैं सो यह सर्वकै प्रत्यक्ष ही है. सिरदार चाकरकै, चाकर सिरदारकै, आचार्य शिष्यकै, शिष्य आचार्यकै, पिता माता पुत्रकै, पुत्र पिता माताकै, मित्र मित्रकै, स्त्री भर्त्तारकै, इत्यादि प्रत्यक्ष दखिये है. सो तहां परस्पर उपकारकैविषैं पुण्यपापकर्म्म नियमकरि प्रधानकारण है ।

आगें पुद्गलकै बड़ी शक्ति है ऐसा कहै हैं,—

का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥ २११ ॥

का अपि अपूर्वा दृश्यते पुद्गलद्रव्यस्य ईदृशी शक्तिः ।
केवलज्ञानस्वभावः विनाशितः याति जीवस्य ॥ २११ ॥

भाषार्थ—पुद्गल द्रव्यकी कोई ऐसी अपूर्व शक्ति देखिये है जो जीवका केवलज्ञानस्वभाव है सो भी जिस शक्तिकरि विनश्या जाय है. **भावार्थ**—अनन्त शक्ति जीवकी है तामें केवलज्ञानशक्ति ऐसी है कि जाकी व्यक्ति (प्रकाश) होय तब सर्व पदार्थनिकूं एकै काल जानै. ऐसी व्यक्तिकूं पुद्गल नष्ट करै है, न होने दे है, सो यह अपूर्व शक्ति है. ऐसें पुद्गलद्रव्यका निरूपण किया ।

अब धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

धम्ममधम्मं दव्वं गमणट्ठाणाण कारणं कमसो ।
जीवाण पुग्गलाणं विण्ण वि लोगप्पमाणाणि ॥ २१२ ॥

धर्म्मं अधर्म्मं द्रव्यं गमनस्थानयोः कारणं क्रमशः ।
जीवानां पुद्गलानां द्वे अपि लोकप्रमाणे ॥ २१२ ॥

भाषार्थ—जीव अर पुद्गल इनि दोऊ द्रव्यनिकूं गमन अवस्थानका सहकारी अनुक्रमतें कारण हैं, ते धर्म अर अधर्म्म द्रव्य हैं. ते दोऊ ही लोकाकाश परिमाणप्रदेशकूं धरै हैं. **भावार्थ**—जीव पुद्गलकूं गमनसहकारी कारण तौ धर्मद्रव्य है. अर स्थितिसहकारी कारण अधर्मद्रव्य है. ए दोऊं लोकाकाशप्रमाण हैं ।

आगें आकाशद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सयलाणं दव्वाणं जं दादुं सक्कदे हि अवगासं ।
तं आयासं दुविहं लोयालोयाण भेयेण ॥ २१३ ॥

सकलानां द्रव्याणां यत् दातुं शक्नोति हि अवकाशं ।
तत् आकाशं द्विविधं लोकालोकयोः भेदेन ॥ २१३ ॥

भाषार्थ—जो समस्त द्रव्यनिकौं अवकाश देनेकूं समर्थ है सो आकाश द्रव्य है. सो लोक अलोकके भेदकरि दोय प्रकार है. **भावार्थ**—जामैं सर्व द्रव्य बसैं ऐसे अवगाहनगुणकूं धरै है सो यह आकाश द्रव्य है. सो जामें पांच द्रव्य वसै हैं सो तौ लोकाकाश है अर जामें अन्य द्रव्य नाहीं सो अलोकाकाश है. ऐसें दोय भेद हैं।

आगें आकाशविषै सर्व द्रव्यनिकूं अवगाहन देनेकी शक्ति है तैसी अवकाश देनेकी शक्ति सर्व ही द्रव्यनिमें है ऐसें कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं अवगाहणसत्ति अत्थि परमत्थं।
जह भसमपाणियाणं जीवपएसाण जाण बहुआणं ॥ २१४ ॥

सर्वेषां द्रव्याणां अवगाहनशक्ति अस्ति परमार्थतः ।
यथा भस्मपानीययोः जीवप्रदेशानां जानीहि बहुकानां ॥ २१४ ॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति है. यह निश्चयतें जाणूं. जैसें भस्मकै अर जलकै अवगाहन शक्ति है तैसें जीवकै असंख्यात प्रदेशनिकै जानूं. भावार्थ—जैसें जलकूं पात्रविषै भरि तामें भस्म डारिये सो समावै. बहुरि तामें मिश्री डारिये सो भी समावै. बहुरि तामें सुई चोपिये सो भी समावै तैसें अवगाहनशक्ति जाननी. इहां कोई पूछै कि सर्व ही द्रव्यनिमें अवगाहन शक्ति है तो आकाशका असाधारण गुण कैसें है? ताका समाधान-जो परस्पर तो अवगाह सर्व ही देहैं तथापि आकाशद्रव्य सर्वतें बडा है. तातें यामें सर्व ही समावै यह असाधारणता है ।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं ।
एक्केकास पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥ २१५ ॥

यदि न भवति सा शक्तिः स्वभावभूता हि सर्वद्रव्याणा ।
एकैकाशप्रदेशे कथं तानि सर्वाणि वर्तन्ते ॥ २१५ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै स्वभावभूत अवगाहनशक्ति न होय तो एक एक आकाश के प्रदेशविषै सर्व द्रव्य कैसें वर्त्तै. भावार्थ—एक आकाश प्रदेशविषै अनन्त पुद्गलके परमाणु द्रव्य तिष्टै हैं. एक जीवका प्रदेश एक धर्मद्रव्यका प्रदेश एक अधर्मद्रव्यका प्रदेश एक कालाणुद्रव्य ऐसें सर्व तिष्टै हैं सो वह आकाशका प्रदेश एक पुद्गलके परमाणुकी बराबर है सो अवगाहनशक्ति न होय तो कैसें तिष्टै? ।

आगें कालद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो ।
एक्केकासपएसे सो वट्टदि एक्किको चेव ॥ २१६ ॥

सर्वेषां द्रव्याणां परिणामं यः करोति सः कालः ।
एकैकाकाशप्रदेशे वर्तते एकैकः च एव ॥ २१६ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकैं परिणाम करै है सो काल द्रव्य है. सो एक एक आकाशके प्रदेशविषै एक एक कालाणुद्रव्य वर्त्तै है. भावार्थ—सर्व द्रव्यनिकै समय समय पर्याय उपजै हैं अर विनसै हैं सो ऐसे परिणमनकूं निमित्त कालद्रव्य है. सो लोकाकाशके एक एक प्रदेश विषै एक एक कालाणु तिष्ठै है. सो यह निश्चयकाल है।

आगें कहै हैं कि परिणमनेकी शक्ति स्वभावभूत सर्व द्रव्यनिमें है अन्य द्रव्य निमित्तमात्र हैं।

णियणियपरिणामाणं णियणियदव्वं पि कारणं होदि।
अण्णं बाहिरदव्वं णिमित्तमत्तं वियाणेह॥ २१७॥

निजनिजपरिणामान् निजनिजद्रव्यं अपि कारणं भवति।
अन्यत् बाह्यद्रव्यं निमित्तमात्रं विजानीत॥ २१७॥

भाषार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणमनिके उपादान कारण हैं. अन्य बाह्य द्रव्य हैं सो अन्यके निमित्तमात्र जाणूं. भावार्थ—जैसें घट आदिकूं माटी उपादान कारण है अर चाक दंडादि निमित्त कारण हैं. तैसें सर्व द्रव्य अपने पर्यायनिकूं उपादान कारण हैं. कालद्रव्य निमित्त कारण है।

आगें कहै हैं कि सर्वही द्रव्यनिकै परस्पर उपकार है सो सहकारीकारणभावकरि है.

सव्वाणं दव्वाणं जो उवयारो हवेइ अण्णोण्णं।
सो चिय कारणभावो हवदि हु सहयारिभावेण॥ २१८॥

सर्वेषां द्रव्याणां यः उपकारः भवति अन्योन्यं।
सः च एव कारणभावः भवति स्फुटं सहकारिभावेन॥ २१८॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै जो परस्पर उपकार है सो सहकारीभावकरि कारणभाव होय है. यह प्रगट है।

आगें द्रव्यनिकै स्वभावभूत नाना शक्ति है ताकौं कौन निषेधिसकै है ऐसें कहै हैं,—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिं संजुदा अत्था।
परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं॥ २१९॥

कालादिलब्धियुक्ताः नानाशक्तिभिः संयुताः अर्थाः।
परिणममानाः हि स्वयं न शक्यते कः अपि वारयितुं॥ २१९॥

भाषार्थ—सर्व ही पदार्थ काल आदि लब्धिकरि सहित भये नाना शक्तिसंयुक्त हैं तैसें ही स्वयं परिणमै हैं तिनकूं परिणमतें कोई निवारनेकूं समर्थ नाहीं.

भावार्थ–सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामरूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्रीकूं पाय आप ही भावरूप परिणमै हैं. तिनकूं कोई निवारि न सकै है।

आगें व्यवहारकालका निरूपण करै हैं,—

जीवाण पुग्गलाणं जे सुहुमा वादरा य पज्जाया।
तीदाणागदभूदा सो ववहारो हवे कालो ॥ २२० ॥

जीवानां पुद्गलानां ये सूक्ष्माः बादराः च पर्यायाः।
अतीतानागतभूताः सः व्यवहारः भवेत् कालः ॥ २२० ॥

भाषार्थ–जीव द्रव्य अर पुद्गल द्रव्यकै सूक्ष्म तथा वादर पर्याय हैं. ते अतीत भये अनागत-आगामी होंयगे, भूत (?) कहिये वर्त्तमान हैं सो ऐसा व्यवहार काल होय है. भावार्थ–जो जीव पुद्गलकै स्थूल सूक्ष्मपर्याय हैं ते अतीतभये तिनिकूं अतीत नाम कह्या. वहुरि जो आगामी होयगे तिनिकूं अनागत नाम कह्या. बहुरि जे वर्त्तै हैं तिनिकूं वर्त्तमान नाम कह्या. इनिकूं जेतीबार लगै है तिसहीकूं व्यवहारकाल नामकरि कहिये है. सो जघन्य तौ पर्यायकी स्थिति एकसमय मात्र है. बहुरि मध्य उत्कृष्ट अनेक प्रकार है. तहां आकाशके एक प्रदेशतैं दूजे प्रदेशपर्यंत पुद्गलका परमाणु मन्दगतिकरि जाय तेता कालकूं समय कहिये. ऐसे जघन्ययुक्ताऽसंख्यात समयकी एक आवली कहिये, संख्यात आवलीके समूहका एक उस्वास कहिये, सात उच्छ्वासका एक स्तोक कहिये, सात स्तोकका एक लव कहिये, साढा अडतीस लवकी एक घटी कहिये, दोय घटीका मुहूर्त्त कहिये, तीस मुहूर्त्तका रातदिन कहिये, पनरै अहोरात्रिका पक्ष कहिये, दोय पक्षका मास कहिये, दोय मासका ऋतु कहिये, तीन ऋतुका अयन कहिये, दोय अयनका वर्ष कहिये, इत्यादि पल्य सागर कल्प आदि व्यवहार काल अनेक प्रकार है।

आगें अतीत अनागत वर्त्तमान पर्यायनिकी संख्या कहै हैं,—

तेसु अतीदा णंता अणंतगुणिदा य भाविपज्जाया।
एक्को वि वट्टमाणो एत्तियमित्तो वि सो कालो ॥ २२१ ॥

तेषु अतीताः अनन्ताः अनन्तगुणिताः च भाविपर्यायाः।
एकः अपि वर्त्तमानः एतावन्मात्रः अपि सः कालः ॥ २२१ ॥

भाषार्थ–तिनि द्रव्यनिके पर्यायनिविषै अतीतपर्याय अनन्त हैं. बहुरि अना-

गत पर्याय तिनितैं अनन्त गुणा हैं वर्त्तमानपर्याय एक ही है. सो जेता पर्याय है, तेता ही सो व्यवहार काल है. ऐसैं द्रव्यनिका निरूपण किया।

अब द्रव्यनिकै कार्यकारणभावका निरूपण करै हैं,—

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।
उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥ २२२ ॥

पूर्वपरिणामयुक्तं कारणभावेन वर्त्तते द्रव्यं ।
उत्तरपरिणामयुतं तत् च एव कार्यं भवेत् नियमात् ॥ २२२ ॥

भावार्थ—पूर्व परिणाम सहित द्रव्य है सो कारणरूप है बहुरि उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य है सो कार्यरूप नियमकरि है।

आगैं वस्तुकै तीनूं कालविषै ही कार्यकारणभावका निश्चय करै हैं,—

कारणकज्जविसेसा तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एकेक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥ २२३ ॥

कारणकार्य्यविशेषाः त्रिषु अपि कालेषु भवन्ति वस्तूनां ।
एकैकस्मिन् च समये पूर्वोत्तरभावं आसाद्य ॥ २२३ ॥

भावार्थ—वस्तुनिकै पूर्व अर उत्तर परिणामकों पायकरि तीनूं ही कालविषैं एक एक समयविषै कारण कार्यकै विशेष होय हैं. भावार्थ—वर्त्तमान समयमैं जो पर्याय है सो पूर्वसमय सहित वस्तुका कार्य है. तैसैं ही सर्व पर्याय जाननी ऐसैं समय समय कार्यकारणभावरूप है ।

आगैं वस्तु है सो अनन्तधर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करै हैं।

संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंतं तत्तो भणिदं जिणिंदेहिं ॥ २२४ ॥

सन्ति अनन्तानन्ताः त्रिषु अपि कालेषु सर्वद्रव्याणि ।
सर्वं अपि अनेकान्तं ततः भणितं जिनेन्द्रैः ॥ २२४ ॥

भावार्थ—सर्व द्रव्य हैं ते तीनूं ही कालमैं अनन्तानंत हैं अनन्त पर्यायनिसहित हैं तातैं जिनेन्द्र देव सर्व ही वस्तु अनेकान्त कहिये अनन्तधर्मस्वरूप कह्या है।

आगैं कहै हैं जो अनेकान्तात्मक वस्तु है सो अर्थक्रियाकारी है,—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेइ णियमेण ।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसए लोए ॥ २२५ ॥

यत् वस्तु अनेकान्तं तत् एव कार्यं करोति नियमेन ।
बहुधर्मयुतः अर्थः कार्यकरः दृश्यते लोके ॥ २२५ ॥

भाषार्थ–जो वस्तु अनेकान्त है अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियमकरि कार्य करै है. लोकविषै बहुतधर्मकरियुक्त पदार्थ है सो ही कार्य करनेवाला देखिये है. **भावार्थ**–लोकविषै नित्य अनित्य एक अनेक भेद इत्यादि अनेक धर्म्मयुक्त वस्तु है सो कार्यकारी दीखै है जैसैं माटीकै घट आदि अनेक कार्य बणै हैं सो सर्वथा मांटी एक रूप तथा नित्य रूप तथा अनेक अनित्य रूप ही होय तौ घट आदि कार्य बणै नाहीं, तैसैं ही सर्व वस्तु जानना ।

आगैं सर्वथा एकान्त वस्तुकै कार्यकारीपणा नाहीं है ऐसैं कहै हैं.—

एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमित्तं पि ।
जं पुणु ण करदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥ २२६ ॥

एकान्तं पुनः द्रव्यं कार्यं न करोति लेशमात्रं अपि ।
तत् पुनः न करोति कार्यं तत् उच्यते कीदृशं द्रव्यं ॥ २२६ ॥

भाषार्थ–बहुरि एकान्त स्वरूप द्रव्य है सो लेशमात्र भी कार्यकूं नाहीं करै है. बहुरि जो कार्य ही न करै सो कैसा द्रव्य है, कि–शून्यरूपसा है. **भावार्थ**–जो अर्थक्रियास्वरूप होय सो ही परमार्थरूप वस्तु कह्या है अर जो अर्थक्रियारूप नाहीं सो आकाशके फूलकी ज्यों शून्यरूप है ।

आगैं सर्वथा नित्य एकान्तविषै अर्थक्रियाकारीपणाका अभाव दिखावै है.—

परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेय ।
णो उप्पज्जदि य सया एवं कज्जं कहं कुणइ ॥ २२७ ॥

परिणामेन विहीनं नित्यं द्रव्यं विनश्यते नैव ।
नो उत्पद्यते च सदा एवं कार्य्यं कथं करोति ॥ २२७ ॥

भाषार्थ–परिणामकरि हीण जो नित्य द्रव्य, सो विनसै नहीं, तब कार्य कैसैं करै ? अर जो उपजै विनशै तो नित्यपणा नाहीं ठहरै. ऐसैं कार्य न करै सो वस्तु नाहीं है ।

आगैं पुनः क्षणस्थायीकै कार्यका अभाव दिखावै है—

पज्जयमित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं ।
अण्णइदव्वविहीणं ण य कज्जं किं पि साहेदि ॥ २२८ ॥

पर्य्यायमात्रं तत्त्वं विनश्वरं क्षणे क्षणे अपि अन्योऽन्यं ।
अन्वयिद्रव्यविहीनं न च कार्य्यं किमपि साधयति ॥ २२८ ॥

भाषार्थ–जो क्षणस्थायी पर्यायमात्र तत्त्व क्षणक्षणमें अन्य अन्य होय ऐसा विनश्वर मानिये तौ अन्वयीद्रव्यकरि रहित हूवा संता कार्य किछू भी नाहीं साधै है. क्षणस्थायी विनश्वरकै काहेका कार्य्य ।

आगें अनेकान्तवस्तुकै कार्यकारणभाव बणै है सो दिखावै हैं,—

णवणवकज्जविसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥ २२९ ॥

नवनवकार्य्यविशेषा त्रिषु अपि कालेषु भवन्ति वस्तूनां ।
एकैकस्मिन् च समये पूर्वोत्तरभावं आसाद्य ॥ २२९ ॥

भाषार्थ–जीवादिक वस्तुनिकै तीनूंही कालविषै एक एक समयविषै पूर्वउत्तरपरिणामका आश्रयकरि नवेनवे कार्यविशेष होय हैं नवे नवे पर्याय उपजै हैं ।

आगें पूर्वोत्तरभावकै कारणकार्य्यभावकूं दृढ करै हैं,—

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।
उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥ २३० ॥

पूर्वपरिणामयुक्तं कारणभावेन वर्त्तते द्रव्यं ।
उत्तरपरिणामयुतं तत् एव कार्य्यं भवेत् नियमात् ॥ २३० ॥

भाषार्थ–पूर्वपरिणामकरियुक्त द्रव्य है सो तौ कारणभावकरि वर्त्तै है बहुरि सो ही द्रव्य उत्तरपरिणामकरि युक्त होय तब कार्य होय है. यह नियमतें जाणूं. **भावार्थ**–जैसें मांटीका पिंड तौ कारण है अर ताका घट बण्या सो कार्य है. तैसें पहले पर्यायका स्वरूप कहि अब जीव पिछले पर्याय सहित भया तब सो ही कार्यरूप भया. ऐसें नियम है. ऐसें वस्तुका स्वरूप कहिये है ।

अब जीव द्रव्यकै भी तैसें ही अनादिनिधन कार्यकारणभाव साधै हैं,—

जीवो अणाइणिहणो परिणयमाणो हु णवणवं भावं ।
सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा ॥ २३१ ॥

जीवः अनादिनिधनः परिणयमानः स्फुटं नवं नवं भावं ।
सामग्रीषु प्रवर्त्तते कार्याणि समाश्रयते पश्चात् ॥ २३१ ॥

भाषार्थ–जीव द्रव्य है सो अनादि निधन है सो नवेनवे पर्यायनिरूप प्रगट परिणमै है. सो पहले द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीविषै वर्त्तै है. पीछैं कार्यनिकूं पर्यायनिकूं प्राप्त होय है. **भावार्थ**–जैसें कोई जीव पहलै शुभ परिणाम-

रूप प्रवर्त्तै पीछैं स्वर्ग पावै तथा पहलैं अशुभ परिणामरूप प्रवर्त्तै पीछैं नरक आदि पर्याय पावै ऐसैं जानना।

आगें जीवद्रव्य अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावविषै तिष्ठ्या ही नवे पर्याय-रूप कार्यकूं करै ऐसैं कहै हैं,—

ससरूवत्थो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि।
खित्ते एकम्मि ठिदो णियदव्वं संठिदो चेव॥ २३२॥

स्वस्वरूपस्थः जीवः कार्य्यं साधयति वर्त्तमानं अपि।
क्षेत्रे एकस्मिन् स्थितः निजद्रव्यं संस्थितः चैव॥ २३२॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो अपने चैतन्यस्वरूपविषै तिष्ठ्या अपने ही क्षेत्र-विषै तिष्ठ्या अपने ही द्रव्यमें तिष्ठता अपने परिणमनरूप समयविषै अपनी पर्याय स्वरूप कार्य्यकूं साधै है. **भावार्थ**—परमार्थतैं विचारिये तब अपने द्रव्य क्षेत्रकालभावस्वरूप होता संता जीव पर्यायस्वरूप कार्यरूप परिणमै है पर द्रव्यक्षेत्रकालभाव हैं सो निमित्तमात्र है।

आगें अन्यस्वरूप होय कार्य करै तौ तामैं दूषण दिखावै हैं।

ससरूवत्थो जीवो अण्णसरूवम्मि गच्छए जदि हि।
अण्णुण्णमेलणादो इक्कसरूवं हवे सव्वं॥ २३३॥

स्वस्वरूपस्थः जीवः अन्यस्वरूपे गच्छेत यदि हि।
अन्योन्यसंश्लेषात् एकस्वरूपं भवेत् सर्वं॥ २३३॥

भाषार्थ—जो जीव अपने स्वरूपविषै तिष्ठता पर स्वरूपविषै जाय तौ पर-स्पर मिलनेतैं सर्व द्रव्य एकस्वरूप होय जाय, तहां बडा दोष आवै. सो एक-स्वरूप कदाचित् होय नाहीं यह प्रगट है।

आगें सर्वथा एकस्वरूप माननेमें दूषण दिखावै है,—

अहवा बंभसरूवं एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि।
चंडालबंभणाणं तो ण विसेसो हवे कोई॥ २३४॥

अथवा ब्रह्मस्वरूपं एकं सर्वं अपि मन्यते यदि हि।
चाण्डालब्राह्मणानां तत न विशेषः भवेत् कश्चित्॥ २३४॥

भाषार्थ—जो सर्वथा एक ही वस्तु मानि ब्रह्मका स्वरूपरूप सर्व मानिये तौ ब्राह्मण अर चाण्डलका किछू भी भेद न ठहरै. **भावार्थ**—एक ब्रह्मस्वरूप सर्व जगत्कूं मानिये तौ नानारूप न ठहरै. बहुरि अविद्याकरि नाना दीखता मानै

तौ अविद्या उत्पन्न कोनतैं भई कहिये? जो ब्रह्मतें भई कहिये तौ ब्रह्मतैं भिन्न-भई कि अभिन्न भई, अथवा सत्‌रूप है कि असत्‌रूप है कि एकरूप कि अनेक रूप है. ऐसैं विचार कीये कहूं ठहरना नाहीं तातैं वस्तुका स्वरूप अनेकान्त ही सिद्ध होय है. सो ही सत्यार्थ है।

आगें अणुमात्र तत्त्वकूं माननेमें दूषण दिखावै हैं,—

अणुपरिमाणं तच्चं अंसविहीणं च मण्णदे जदि हि।
तो संबंधाभावो तत्तो वि ण कज्जसंसिद्धि ॥ २३५॥

अणुपरिमाणं तत्त्वं अंशविहीनं च मन्यते यदि हि।
तत् सम्बन्धाभावः ततः अपि न कार्य्यसंसिद्धिः॥ २३५ ॥

भाषार्थ—जो एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानिये अर अंशकरि रहित अणु-परिमाण तत्त्व मानिये तौ दोय अंशकै तथा पूर्वोत्तर अंशकै सम्बन्धका अभाव तें अणुमात्र वस्तुतें कार्यकी सिद्धि नाहीं होय है. **भावार्थ**—निरंश क्षणिक नि-रन्वयी वस्तुकै अर्थक्रिया होय नाहीं, तातें सांश नित्य अन्वयी वस्तु कथंचित् मानना योग्य है।

आगें द्रव्यकै एकत्वपणा निश्चय करै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं दव्वसरूवेण होदि एयत्तं।
णियणियगुणभेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि ॥२३६॥

सर्वेषां द्रव्याणां द्रव्यस्वरूपेण भवति एकत्वं।
निजनिजगुणभेदेन हि सर्वाणि अपि भवन्ति भिन्नानि ॥ २३६ ॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै द्रव्यस्वरूपकरि तौ एकत्वपणा है. बहुरि अपने अ-पने गुणकै भेदकरि सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं. **भावार्थ**—द्रव्यका लक्षण उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप सत् है सो इस स्वरूपकरि तौ सर्वकै एकपणा है. बहुरि अपने अपने गुण चेतनपणा जड़पणा आदि भेदरूप हैं. तातें गुणके भेदतें सर्व द्रव्य न्यारे न्यारे हैं. तथा एक द्रव्यकै त्रिकालवर्ती अनन्तपर्याय हैं सो सर्व पर्या-यनिविषै द्रव्यस्वरूपकरि तो एकता ही है. जैसें चेतनकै पर्याय सर्व ही चेतन स्वरूप हैं. बहुरि पर्याय अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न भी हैं. भिन्न कालवर्त्ती भी हैं. तातें भिन्न भिन्न भी कहिये. तिनकै प्रदेश भेद भी नाहीं तातें एक ही द्रव्यकै अनेक पर्याय हो है यामैं विरोध नाहीं।

आगें द्रव्यके गुणपर्यायस्वभावपणा दिखावें हैं,—

जो अत्थो पडिसमयं उप्पादव्वयधुवत्तसब्भावो ।
गुणपज्जयपरिणामो सत्तो सो भण्णदे समये ॥ २३७ ॥

यः अर्थः प्रतिसमयं उत्पादव्ययध्रुवत्वसद्भावः ।
गुणपर्य्यायपरिणामः सत् सः भण्यते समये ॥ २३७ ॥

भाषार्थ—जो अर्थ कहिये वस्तु है सो समय समय उत्पाद व्यय ध्रुवपणा के स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्त्व सिद्धान्तविषै कहै हैं. **भावार्थ**—जे जीव आदि वस्तु हैं ते उपजना विनसना अर थिर रहना इन तीनूं भावमयी हैं. अर जो वस्तु गुणपर्याय परिणामस्वरूप है सो ही सत् है. जैसें जीवद्रव्यका चेतनागुण है तिसका स्वभाव विभावरूप परिणमन है. तैसें समय समय परिणमै हैं ते पर्याय हैं. तैसें ही पुद्गलका स्पर्श रस गन्धवर्ण गुण हैं ते स्वभावविभावरूप समय समय परिणमैं हैं ते पर्याय हैं. ऐसें सर्व द्रव्य गुणपर्यायपरिणामस्वरूप प्रगट हैं।

आगें द्रव्यनिके व्यय उत्पाद कहा है सो कहै हैं,—

पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो ।
वत्थुविणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ ॥ २३८ ॥

प्रतिसमयं परिणामः पूर्वः नश्यति जायते अन्यः ।
वस्तुविनाशः प्रथमः उपपादः भण्यते द्वितीयः ॥ २३८ ॥

भाषार्थ—जो वस्तुका परिणाम समयसमयप्रति पहलै तौ विनसै है अर अन्य उपजै है सो पहला परिणामरूप वस्तुका तौ नाश है, व्यय है. अर अन्य दूसरा परिणाम उपज्या ताकूं उत्पाद कहिये. ऐसें व्यय उत्पाद होय हैं।

आगें द्रव्यके ध्रुवपणाका निश्चय कहै हैं,—

णो उप्पज्जदि जीवो दव्वसरूवेण णेय णस्सेदि ।
तं चेव दव्वमित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स ॥ २३९ ॥

नो उत्पद्यते जीवः द्रव्यस्वरूपेण नैव नश्यति ।
तत् च एव द्रव्यमात्रं नित्यत्वं जानीहि जीवस्य ॥ २३९ ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो द्रव्यस्वरूपकरि नाशकूं प्राप्त न होय है अर नाहीं उपजै है सो द्रव्यमात्रकरि जीवके नित्यपणा जाणूं. **भावार्थ**—यह ही

ध्रुवपणा है जो जीव सत्ता अर चेतनताकरि उपजै विनसै नाहीं है. नवा जीव कोई नाहीं उपजै है विनसै भी नाहीं है।

आगें द्रव्यपर्यायका स्वरूप कहै हैं,—

अण्णइरूवं दव्वं विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ।
दव्वं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सतदं ॥ २४० ॥

अन्वयिरूपं द्रव्यं विशेषरूपः भवेत् पर्य्यायः ।
द्रव्यं अपि विशेषेण हि उत्पद्यते नश्यति सततं ॥ २४० ॥

भाषार्थ—जीवादिक वस्तु अन्वयरूपकरि द्रव्य है सो ही विशेषकरि पर्याय है. बहुरि विशेषरूपकरि द्रव्य भी निरन्तर उपजै विनसै है. **भावार्थ**—अन्वयरूप पर्यायनिविषै सामान्यभावकूं द्रव्य कहिये. अर विशेषभाव हैं ते पर्याय हैं. सो विशेषरूपकरि द्रव्य भी उत्पादव्ययस्वरूप कहिये. ऐसा नाहीं कि पर्याय द्रव्यतैं जुदा ही उपजै विनसै है किंतु अभेद विवक्षातैं द्रव्य ही उपजै विनसै है. भेद-विवक्षातैं जुदे भी कहिये।

आगें गुणका स्वरूप कहै हैं,—

सरिसो जो परिणामो अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि।
सो सामण्णसरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१ ॥

सदृश यः परिणामः अनादिनिधनः भवेत् गुणः सः हि ।
सः सामान्यस्वरूपः उत्पद्यते नश्यति नैव ॥ २४१ ॥

भाषार्थ—जो द्रव्यका परिणाम सदृश कहिये पूर्व उत्तर सर्व पर्यायनिविषै समान होय अनादिनिधन होय सो ही गुण है. सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. **भावार्थ**—जैसें जीवद्रव्यका चैतन्य गुण सर्व पर्यायनिमें विद्यमान है अनादिनिधन है सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. विशेषरूपकरि पर्यायनिमें व्यक्तिरूप होय ही है, ऐसा गुण है. तैसें ही अपना अपना साधारण असाधारण गुण सर्व द्रव्यनिमें जानना।

आगें कहै हैं गुणाभास विशेषरूपकरि उपजै विनसै है गुणपर्यायनिका एकपणा है सो ही द्रव्य है,—

सो वि विणस्सदि जायदि विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु।
दव्वगुणपज्जयाणं एयत्तं वत्थु परमत्थं ॥ २४२ ॥

सः अपि विनश्यति जायते विशेषरूपेण सर्वद्रव्येषु ।
द्रव्यगुणपर्य्यायाणां एकत्वं वस्तु परमार्थं ॥ २४२ ॥

भाषार्थ–जो गुण है सो भी द्रव्यनिविषै विशेषरूपकरि उपजै विनसै है ऐसें द्रव्यगुणपर्यायनिका एकत्वपणा है सो ही परमार्थभूत वस्तु है. **भावार्थ**–गुणका स्वरूप ऐसा नाहीं है जो वस्तुतैं न्यारा ही है. नित्यरूप सदा रहै है. गुण गुणीके कथंचित् अभेदपणा है, तातैं जे पर्याय उपजै विनसै हैं ते गुणगुणीके विकार हैं तातैं गुण उपजते विनसते भी कहिये. ऐसा ही नित्यानित्यात्मक वस्तुका स्वरूप है. ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिकी एकता सो ही परमार्थरूप वस्तु है ।

आगें आशंका उपजै है जो द्रव्यनिविषै पर्याय विद्यमान उपजै है कि अविद्यमान उपजै है ? ऐसी आशंकाकूं दूरि करै हैं.—

जदि दव्वे पज्जाया वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति ।
ता उप्पत्ति विहला पडपिहिदे देवदत्तिव्व ॥ २४३ ॥

यदि द्रव्ये पर्य्यायाः अपि विद्यमानाः तिरोहिताः सन्ति ।
तत् उत्पत्तिः विफला पटपिहिते देवदत्ते इव ॥ २४३ ॥

भाषार्थ–जो द्रव्यविषै पर्याय हैं ते भी विद्यमान हैं अर तिरोहित कहिये ढके हैं ऐसा मानिये तौ उत्पत्ति कहना विफल है. जैसें देवदत्त कपड़ासूं ढक्या था ताकूं उघाड्या तब कहै कि यह उपज्या सो ऐसा उपजना कहना तौ परमार्थ नाहीं विफल है. तैसें द्रव्यपर्याय ढकीकूं उघडीकूं उपजनी कहना परमार्थ नाहीं. तातैं अविद्यमानपर्यायकी ही उत्पत्ति कहिये ।

सव्वाण पज्जयाणं अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती ।
कालाईलद्धीए अणाइणिहणम्मि दव्वम्मि ॥ २४४ ॥

सर्वेषां पर्यायाणां अविद्यमानाना भवति उत्पत्तिः ।
कालादिलब्ध्या अनादिनिधने द्रव्ये ॥ २४४ ॥

भाषार्थ–अनादि निधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धिकरि सर्व पर्यायनिकी अविद्यमानकी ही उत्पत्ति है. **भावार्थ**–अनादिनिधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धि करि पर्याय अविद्यमान कहिये अणछती उपजै हैं. ऐसैं नाहीं कि सर्व पर्याय एक ही समय विद्यमान हैं ते ढकते उघड़ते जाय हैं. समय समय क्रमतैं नवे नवे ही उपजै हैं. द्रव्य त्रिकालवर्त्ती सर्व पर्यायनिका समुदाय है. कालभेदकरि क्रमतैं पर्याय होय है ।

आगें द्रव्य पर्यायनिकै कथंचित् भेद कथंचित् अभेद दिखावै हैं,—

दव्वाणपज्जयाणं धम्मविवक्खाइ कीरए भेओ ।
वत्थुसरूवेण पुणो ण हि भेओ सक्कदे काउं ॥ २४५ ॥

द्रव्याणां पर्यायाणां धर्म्मविवक्षा क्रियते भेदः ।
वस्तुस्वरूपेण पुनः न हि भेदः शक्यते कर्त्तुं ॥ २४५ ॥

भाषार्थ—द्रव्यकै अर पर्यायकै धर्मधर्म्मीकी विवक्षाकरि भेद कीजिये है बहुरि वस्तुस्वरूपकरि भेद करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है. **भावार्थ**—द्रव्यपर्यायकै धर्म्म धर्मीकी विवक्षाकरि भेद करिये है. द्रव्य धर्म्मी है पर्याय धर्म्म है बहुरि वस्तुकरि अभेद ही है. केई नैयायिकादिक धर्मधर्म्मीकै सर्वथा भेद मानै है तिनका मत प्रमाणबाधित है ।

आगें द्रव्यपर्यायकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनकूं दूषण दिखावै हैं,—

जदि वत्थुदो विभेदो पज्जयदव्वाण मण्णसे मूढ ।
तो णिरवेक्खा सिद्धि दोह्णं पि य पावदे णियमा ॥ २४६ ॥

यदि वस्तुतः विभेदः पर्यायद्रव्ययोः मन्यसे मूढ ।
ततः निरपेक्षा सिद्धिः द्वयोः अपि च प्राप्नोति नियमात् ॥ २४६ ॥

भाषार्थ—द्रव्य पर्यायकै भेद मानै ताकूं कहै है कि हे मूढ जो तू द्रव्यकै अर पर्य्यायकै वस्तुतें भी भेद मानै है तो द्रव्य अर पर्याय दोऊंकै निरपेक्षासिद्धि नियमकरि प्राप्त होय है. **भावार्थ**—द्रव्यपर्य्याय न्यारे न्यारे वस्तु ठहरै हैं. धर्म धर्मीपणा नाहीं ठहरै है ।

आगें विज्ञानको ही अद्वैत कहै हैं अर बाह्य पदार्थ नाहीं मानै है तिनकूं दूषण बतावै हैं,—

जदि सव्वमेव णाणं णाणारूवेहिं संठिदं एक्कं ।
तो ण वि किंपि वि णेयं णेयेण विणा कहं णाणं॥ २४७ ॥

यदि सर्व एव ज्ञानं नानारूपैः स्थितं एकं ।
तत् न अपि किञ्चिदपि ज्ञेयं ज्ञेयेन विना कथं ज्ञानं ॥ २४७ ॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु एक ज्ञान ही है सो ही नानारूपकरि स्थित है तिष्ठै है. तो ऐसें मानें ज्ञेय किछू भी न ठहर्या. बहुरि ज्ञेय विना ज्ञान कैसें ठहरै. **भावार्थ**—विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती कहै है जो ज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो ही

नानारूप तिष्ठै है. ताकूं कहिये जो ज्ञान मात्र ही है तो ज्ञेय किछू भी नाहीं. अर ज्ञेय नाहीं तब ज्ञान कैसें कहिये? ज्ञेयकूं जाणै सो ज्ञान कहावै. ज्ञेयविना ज्ञान नाहीं.

घडपडजडदव्वाणि हि णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि।
णाणं जाणेदि यदो अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥ २४८ ॥

घटपटजडद्रव्याणि हि ज्ञेयस्वरूपाणि सुप्रसिद्धानि।
ज्ञानं जानाति यतः आत्मतः भिन्नरूपाणि ॥ २४८ ॥

भाषार्थ—घट पट आदि समस्त जडद्रव्य ज्ञेयस्वरूपकरि भलेप्रकार प्रसिद्ध हैं. तिनकूं ज्ञान जाणै है. तातैं ते आत्मातैं ज्ञानतैं भिन्नरूप न्यारे तिष्ठैं हैं। **भावार्थ**—ज्ञेयपदार्थ जडद्रव्य न्यारे न्यारे आत्मातैं भिन्नरूप प्रसिद्ध हैं, तिनिकूं लोप कैसें करिये? जो न मानिये तो ज्ञान भी न ठहरै. जाने विना ज्ञान काहेका?।

जं सव्वलोयसिद्धं देहं गेहादिवाहिरं अत्थं।
जो तंपि णाण मण्णदि ण मुणदि सो णाणणामं पि ॥२४९॥

यत् सर्वलोकसिद्धं देहं गेहादिबाह्यं अर्थं।
यः तदपि ज्ञानं मन्यते न जानाति सः ज्ञाननाम अपि ॥ २४९. ॥

भाषार्थ—जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध है तिनिकूं भी जो ज्ञान ही मानै तो वह वादी ज्ञानका नाम भी जानै नाहीं. **भावार्थ**—बाह्य पदार्थकूं भी ज्ञान ही माननेवाला ज्ञानका स्वरूप नाहीं जाण्या सो तो दूरि ही रहो ज्ञानका नाम भी नाहीं जानै है।

आगें नास्तित्व वादीकै प्रति कहै हैं.—

अच्छीहिं पिच्छमाणो जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं।
जो भणदि णत्थि किंचि वि सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो ॥ २५० ॥

अक्षिभ्यां प्रेक्षमाणः जीवाजीवादि बहुविधं अर्थम्।
यः भणति नास्ति किञ्चिदपि सः जुष्टानां महाजुष्टः २५० ॥

भाषार्थ—जो नास्तिक वादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके अर्थनिकूं प्रत्यक्ष नेत्रनिकरि देखता संता भी कहै जो कछू भी नाहीं है सो असत्यवादीनिमें महा असत्यवादी है. **भावार्थ**—दीखती वस्तुकूं भी नाहीं बतावै सो महाझूठा है।

जं सव्वं पि य संतं तासो वि असंतउं कहं होदि।
णत्थित्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥ २५१ ॥

यत् सर्वं अपि च सतः (?) तस्य अपि असत्त्वं कथं भवति ।
नास्ति इति किञ्चित् ततः (?) अथवा शून्यं कथं जानाति ॥ २५१ ॥

भाषार्थ–जो सर्व वस्तु सत्रूप है विद्यमान है सो वस्तु असत्यरूप अविद्यमान कैसें होय अथवा किछू भी नाहीं है ऐसा तो शून्य है ऐसा भी कैसें जानैं. **भावार्थ**–छती वस्तु अणछती कैसें होय तथा किछू भी नाहीं है तो ऐसी कहनेवाला जाननेवाला भी नाहीं ठहर्या. तब शून्य है ऐसा कौन जाणें ।

आगें इस ही गाथाका पाठान्तर है सो इस प्रकार है,—

जदि सव्वं पि असंतं तासो वि य संतउं कहं भणदि ।
णत्थित्ति किं पि तच्चं अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥ २५१ ॥

यदि सर्वं अपि असत् तर्हि सः अपि सत् कथं भणति ।
नास्ति इति किमपि तत्त्वं अथवा शून्यं कथं जानाति ॥ २५१ ॥

भाषार्थ–जो सर्व ही वस्तु असत् है तो वह ऐसें कहनेवाला नास्तिक बादी भी असत्रूप ठहर्या तब किछु भी तत्त्व नाही है ऐसें कैसें कहै है. अथवा कहैं भी नाही सो शून्य है ऐसें कैसें जानै है. **भावार्थ**–आप छता है और कहै कि कछू भी नाहीं सो यह कहना तो बडा अज्ञान है. तथा शून्यतत्त्व कहना तो प्रलापही है कहनेवाला ही नाही तब कहै कौन ? सो नास्तित्ववादी प्रलापी है ।

किं बहुणा उत्तेण य जित्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था ॥ २५२ ॥

किं बहुना उक्तेन च यावन्मात्राणि सन्ति नामानि ।
तावन्मात्राः अर्थाः सन्ति हि नियमेन परमार्थाः ॥ २५२ ॥

भाषार्थ–बहुत कहनेकरि कहा जेता नाम हैं तेता ही नियमकरि पदार्थ परमार्थ रूप हैं. **भावार्थ**–जेते नाम हैं तेता सत्यार्थ पदार्थ हैं. बहुत कहनेकरि पूरी पड़ो. ऐसें पदार्थका स्वरूप कह्या ।

अब तिनि पदार्थनिका जाननेवाला ज्ञान है ताका स्वरूप कहै हैं,—

णाणाधम्मेहिं जुदं अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो ।
जं जाणेदि सजोगं तं णाणं भण्णए समये ॥ २५३ ॥

नानाधर्म्मैः युतं आत्मानं तथा परं अपि निश्चयतः ।
यत् जानाति स्वयोग्यं तत ज्ञानं भण्यते समये ॥ २५३ ॥

भाषार्थ–जो नाना धर्म्मनि सहित आत्मा तथा पर द्रव्यनिकूं अपने योग्यकूं

जाणै सो निश्चयतैं सिद्धान्तविषै ज्ञान कहिये. भावार्थ–जो आपकूं तथा परकूं अपने आवरणके क्षयोपशम तथा क्षयकै अनुसार जानने योग्य पदार्थकूं जानैं सो ज्ञान है. यह सामान्य ज्ञानका स्वरूप कह्या ।

अब सर्वप्रत्यक्ष जो केवलज्ञान ताका स्वरूप कहै हैं,—

जं सव्वं पि पयासदि दव्वपज्जायसंजुदं लोयं ।
तह य अलोयं सव्वं तं णाणं सव्वपच्चक्खं ॥ २५४ ॥

यत् सर्वं अपि प्रकाशयति द्रव्यपर्यायसंयुतं लोकं ।
तथा च अलोकं सर्वं तत् ज्ञानं सर्वप्रत्यक्षं ॥ २५४ ॥

भावार्थ–जो ज्ञान द्रव्यपर्याय संयुक्त लोककूं तथा अलोककूं सर्वकूं प्रकाशकै जाणै सो सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है।

आगें ज्ञानकूं सर्वगत कहै हैं,—

सव्वं जाणदि जह्मा सव्वगयं तं पि वुच्चदे तह्मा ।
ण य पुण विसरदि णाणं जीवं चइऊण अण्णत्थ ॥ २५५ ॥

सर्वं जानाति यस्मात् सर्वगतं तदपि उच्यते तस्मात् ।
न च पुनः विसरति ज्ञानं जीवं त्यक्त्वा अन्यत्र ॥ २५५ ॥

भावार्थ–जातें ज्ञान सर्व लोकालोककूं जाणै है तातें ज्ञानकूं सर्व गत भी कहिये है. बहुरि ज्ञान है सो जीवकूं छोडिकरि अन्य जे ज्ञेय पदार्थ तिनिविषै न जाय है. भावार्थ–ज्ञान सर्व लोकालोककूं जानै है. यातें सर्वगत तथा सर्वव्यापक कहिये है परंतु जीवद्रव्यका गुण है तातें जीवकूं छोडि अन्य पदार्थमें जाय नाहीं है।

आगें ज्ञान जीवके प्रदेशनिविषै तिष्ठता ही सर्वकूं जानै है ऐसें कहै हैं,—

णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाणदेसम्मि ।
णियणियदेसठियाणं ववहारो णाणणेयाणं ॥ २५६ ॥

ज्ञानं न याति ज्ञेयं ज्ञेयं अपि न याति ज्ञानदेशे ।
निजनिजदेशस्थितानां व्यवहारः ज्ञानज्ञेयानां ॥ २५६ ॥

भावार्थ–ज्ञान है सो ज्ञेयविषै नाहीं जाय है. बहुरि ज्ञेय भी ज्ञानके प्रदेशनि विषै नाहीं आवै है. अपने अपने प्रदेशनिविषै तिष्ठै है तौऊ ज्ञानकै अर ज्ञेयकै ज्ञेयज्ञापक व्यवहार है. भावार्थ–जैसें दर्पण अपने ठिकाणै है. घटादिक वस्तु अपने ठिकाणै है. तौऊ दर्पणकी स्वच्छता ऐसी है मानूं दर्पणविषै घट आय ही बैठै है. ऐसैं ही ज्ञानज्ञेयका व्यवहार जानना ।

आगें मनःपर्य्यय अवधिज्ञान अर मति श्रुतिज्ञानका सामर्थ्य कहै हैं,—

मणपज्जयविण्णाणं ओहीणाणं च देसपच्चक्खं।
मइसुयणाणं कमसो विसदपरोक्खं परोक्खं च ॥ २५७ ॥

मनःपर्य्ययविज्ञानं अवधिज्ञानं च देशप्रत्यक्षं।
मतिश्रुतज्ञानं क्रमशः विशदपरोक्षं परोक्षं च ॥ २५७ ॥

भाषार्थ—मनःपर्य्ययज्ञान बहुरि अवधिज्ञान ए दोऊ तौ देशप्रत्यक्ष हैं. बहुरि मतिज्ञान है सो विशद कहिये प्रत्यक्ष भी है परोक्ष भी है. अर श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है. भावार्थ—मनःपर्यय अवधिज्ञान तो एकदेशप्रत्यक्ष हैं जातैं जेता अपना विषय है तेता विशद स्पष्ट जानै है. सर्वकूं न जानै, तातैं एकदेश कहिये. बहुरि मतिज्ञान है सो इन्द्रियमनकरि उपजै है तातैं व्यवहारकरि इन्द्रियनिके संबन्धतैं विशद भी कहिये. ऐसें प्रत्यक्ष भी है परमार्थतैं परोक्ष ही है. बहुरि श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है जातैं यह विशद स्पष्ट जानै नाहीं।

आगें इन्द्रियज्ञान योग्य विषयकूं जानै है ऐसें कहै हैं,—

इंदियजं मदिणाणं जुग्गं जाणेदि पुग्गलं दव्वं।
माणसणाणं च पुणो सुयविसयं अक्खविसयं च ॥ २५८ ॥

इन्द्रियजं मतिज्ञानं योग्यं जानाति पुद्गलं द्रव्यं।
मानसज्ञानं च पुनः श्रुतविषयं अक्षविषयं च ॥ २५८ ॥

भाषार्थ—इन्द्रियनितैं उपज्या जो मतिज्ञान सो अपने योग्य विषय जो पुद्गल द्रव्य ताकूं जाणै है. जिस इन्द्रियका जैसा विषय है तैसें ही जाणै है. बहुरि मनसम्बन्धी ज्ञान है सो श्रुतविषय कहिये शास्त्रका वचन सुणै ताके अर्थकूं जानै है. बहुरि इन्द्रियकरि जानिये ताकूं भी जानै है।

आगें इन्द्रियज्ञानके उपयोगकी प्रवृत्ति अनुक्रमतैं है ऐसें कहै हैं,—

पंचेंदियणाणाणं मज्झे एगं च होदि उवजुत्तं।
मणणाणे उवजुत्ते इंदियणाणं ण जाएदि ॥ २५९ ॥

पञ्चेन्द्रियज्ञानानां मध्ये एकं च भवति उपयुक्तं।
मनोज्ञाने उपयुक्ते इन्द्रियज्ञानं न जायते ॥ २५९ ॥

भाषार्थ—पांचूं ही इन्द्रियनिकरि ज्ञान हो है सो तिनिमेंसूं एक इन्द्रियद्वार करि ज्ञान उपयुक्त होय है. पांचूं ही एककाल उपयुक्त होय नाहीं. बहुरि मन

ज्ञानकरि उपयुक्त होय तब इन्द्रियज्ञान नाहीं उपजै है. भावार्थ-इन्द्रिय मन सम्बन्धी जो ज्ञान है सो तिनिकी प्रवृत्ति युगपत् नाहीं. एककाल एक ही ज्ञेयसूं उपयुक्त होय है. जब यह जीव घटकूं जानै तिस काल पटकूं नाहीं जानै, ऐसैं क्रमरूप ज्ञान है।

आगें इन्द्रियमनसम्बन्धी ज्ञानकी क्रमतैं प्रवृत्ति कही तहां आशंका उपजै है जो इन्द्रियनिका ज्ञान एककाल है कि नाहीं ? ताकी आशंका दूरि करनेकूं कहै हैं,—

एके काले एगं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।
णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चंति ॥ २६० ॥

एकस्मिन् काले एकं ज्ञानं जीवस्य भवति उपयुक्तं ।
नानाज्ञानानि पुनः लब्धिस्वभावेन उच्यन्ते ॥ २६० ॥

भाषार्थ-जीवकै एक कालमें एकही ज्ञान उपयुक्त कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि लब्धिस्वभावकरि एक काल नाना ज्ञान कहे हैं. भावार्थ-भाव इन्द्रिय दोय प्रकारकी कही है. लब्धिरूप अर उपयोगरूप. तहां ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं आत्माकै जाननेकी शक्ति होय सो लब्धि कहिये सो तो पांच इन्द्रिय अर मन इनकै द्वारैं जाननेकी शक्ति एक कालही तिष्टै है. बहुरि तिनिकी व्यक्तिरूप उपयोगकी प्रवृत्ति है, सो ज्ञेयसूं उपयुक्त होय है तब एक काल एकहीसूं होय है ऐसी ही क्षयोपशमकी योग्यता है।

आगें वस्तुकै अनेकात्मपणा है तौऊ अपेक्षातैं एकात्मपणा भी है ऐसैं दिखावै हैं,—

जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।
सुयणाणेण णयेहिं य णिरविक्खं दीसए णेव ॥ २६१ ॥

यत् वस्तु अनेकान्तं एकान्तं तदपि भवति सविपेक्षं ।
श्रुतज्ञानेन नयैः च निरपेक्षं दृश्यते नैव ॥ २६१ ॥

भाषार्थ-जो वस्तु अनेकान्त है सो अपेक्षासहित एकान्त भी है तहां श्रुतज्ञान जो प्रमाण ताकरि साधिये तौ अनेकान्त ही है. बहुरि श्रुतज्ञान प्रमाणके अंश जे नय तिनिकरि साधिये तब एकान्त भी है. सो अपेक्षारहित नाहीं है. जातैं निरपेक्षा नय मिथ्या है. निरपेक्षातैं वस्तुका रूप नाहीं देखिये है. भावार्थ-प्रमाण तौ वस्तुके सर्व धर्मकूं एक काल साधै है अर नय हैं ते एक एक धर्महीकूं ग्रहण करै हैं तातैं एकनयकै दूसरी नयकी सापेक्षा होय तौ वस्तु सधै

अर अपेक्षारहित नय वस्तुकूं साधै नाहीं, तातैं अपेक्षातैं वस्तु अनेकान्तां भी है ऐसैं जानना ही सम्यग्ज्ञान है।

आगैं श्रुतज्ञान परोक्षपणै सर्वकूं प्रकाशै है यह कहै हैं,—

सव्वं पि अणेयंतं परोक्खरूवेण जं पयासेदि।
तं सुयणाणं भण्णदि संसयपहुदीहिं परिचित्तं॥ २६२॥

सर्वं अपि अनेकान्तं परोक्षरूपेण यत् प्रकाशयति।
तत् श्रुतज्ञानं भण्यते संशयप्रभृतिभिः परित्यक्तं॥ २६२॥

भाषार्थ—जो ज्ञान सर्व वस्तुकूं अनेकान्त परोक्षरूपकरि प्रकाशै जाणै कहै सो श्रुतज्ञान है. सो कैसा है संशयविपर्ययअनध्यवसायकरि रहित है. ऐसा सिद्धान्तमैं कहै हैं. **भावार्थ**—जो सर्व वस्तुकूं परोक्षरूपकरि अनेकान्त प्रकाशै सो श्रुतज्ञान है. शास्त्रके वचन सुननेतैं अर्थकूं जानै सो परोक्ष ही जानै अर शास्त्रमैं सर्व ही वस्तुका अनेकान्तात्मक स्वरूप कह्या हैं सो सर्व ही वस्तुकूं जानै. बहुरि गुरुनिके उपदेशपूर्वक जानै तब संशयादिक भी न रहै।

आगैं श्रुतज्ञानके विकल्प जे भेद ते नय हैं तिनिका स्वरूप कहै हैं,—

लोयाणं ववहारं धम्मविवक्खाइ जो पसाहेदि।
सुयणाणस्स वियप्पो सो वि णओ लिंगसंभूदो॥ २६३॥

लोकानां व्यवहारं धर्मविवक्षया यः प्रसादयति।
श्रुतज्ञानस्य विकल्पः सः अपि नयः लिङ्गसम्भूतः॥ २६३॥

भाषार्थ—जो लोकनिका व्यवहारकूं वस्तुका एक धर्मकी विवक्षाकरि साधै सो नय है सो कैसा है श्रुतज्ञानका विकल्प कहिये भेद है बहुरि लिंगकरि उपज्या है. **भावार्थ**—वस्तुका एक धर्मकी विवक्षा ले लोकव्यवहारकूं साधै सो श्रुतज्ञानका अंश नय है. सो साध्य जो धर्म ताकूं हेतुकरि साधै है. जैसैं वस्तुका सत् धर्मकूं ग्रहणकरि याकूं हेतुकरि साधै जो अपने द्रव्य क्षेत्र कालभावतैं वस्तु सत्‌रूप है ऐसैं नय हेतुतैं उपजै है।

आगैं एक धर्मकूं नय कैसैं ग्रहण करै है सो कहै हैं,—

णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं॥ २६४॥

१ 'कीरई भेओ' ऐसा भी पाठ है.

नानाधर्मयुतं अपि च एकं धर्म्मं अपि उच्यते अर्थः ।
तस्यैकविवक्षातः नास्ति विवक्षा स्फुटं शेषाणां ॥ २६४ ॥

भाषार्थ—नाना धर्मकरि युक्त पदार्थ है तौऊ एक धर्मरूप पदार्थकूं कहै जातैं एक धर्मकी जहां विवक्षा करै तहां तिसही धर्मकूं कहै अवशेष सर्व धर्मकी विवक्षा नाहीं करै है. **भावार्थ**—जैसैं जीव वस्तुविषै अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व चेतनत्व अमूर्त्तत्व आदि अनेक धर्म हैं तिनिमैं एक धर्मकी विवक्षाकरि कहै जो जीव चेतनत्वरूप ही है इत्यादि, तहां अन्य धर्मकी विवक्षा नाहीं करै तहां ऐसा न जानना जो अन्यधर्मनिका अभाव है किंतु प्रयोजनके आश्रय एक धर्मकूं मुख्यकरि कहै है अन्यकी विवक्षा नाहीं है।

आगें वस्तुका धर्मकूं अर तिसके वाचक शब्दकूं अर तिसके ज्ञानकूं नय कहै हैं,—

सो चिय इक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धम्मस्स ।
तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि वि णयविसेसा य ॥ २६५ ॥

सः एव एकः धर्म्मः वाचकशब्दः अपि तस्य धर्मस्य ।
तत् जानाति तत् ज्ञानं ते त्रीणि अपि नयविशेषाः च ॥ २६५ ॥

भाषार्थ—जो वस्तुका एक धर्म बहुरि तिस धर्मका वाचक शब्द बहुरि तिस धर्मकूं जाननेवाला ज्ञान ए तीनूं ही नयके विशेष हैं. **भावार्थ**—वस्तुका ग्राहक ज्ञान अर ताका वाचक शब्द अर वस्तु इनकूं जैसैं प्रमाणस्वरूप कहिये तैसैं ही नय कहिये।

आगें पूछै हैं कि वस्तुका एक धर्म ही ग्रहण करै ऐसा जो एक नय ताकूं मिथ्यात्व कैसैं कह्या है ताका उत्तर कहै हैं,—

ते साविक्खा सुणया णिरविक्खा ते वि दुण्णया होंति।
सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण ॥ २६६ ॥

ते सापेक्षाः सुनयाः निरपेक्षाः ते अपि दुर्नयाः भवन्ति ।
सकलव्यवहारसिद्धिः सुनयात् भवति नियमेन ॥ २६६ ॥

भाषार्थ—ते पहले कहे जे तीन प्रकार नय ते परस्पर अपेक्षासहित होय तब तौ सुनय हैं. बहुरि ते ही जब अपेक्षारहित सर्वथा एक एक ग्रहण कीजै तब दुर्नय हैं. बहुरि सुनयनितैं सर्व व्यवहार वस्तुके स्वरूपकी सिद्धि होय है. **भावार्थ** नय हैं ते सर्व ही सापेक्ष तौ सुनय हैं. निरपेक्ष कुनय हैं. तहां सापेक्षतैं सर्व वस्तु

व्यवहारकी सिद्धि है, सम्यग्ज्ञानस्वरूप है. अर कुनयनितैं सर्व लोकव्यवहारका लोप होय है, मिथ्याज्ञानरूप है।

आगें परोक्ष ज्ञानमें अनुमान प्रमाणभी है ताका उदाहरणपूर्वक स्वरूप कहै हैं,-

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं ।
तं अणुमाणं भण्णदि तं पि णयं बहुविहं जाण ॥ २६७ ॥

यत् जानाति जीवः इन्द्रियव्यापारकायचेष्टाभिः ।
तत् अनुमानं भणति तमपि नयं बहुविधं जानीहि ॥ २६७ ॥

भाषार्थ-जो इन्द्रियनिके व्यापार अर कायकी चेष्टानिकरि शरीरमें जीवकूं जाणिये सो अनुमान प्रमाण कहिये है सो यह अनुमान ज्ञान भी नय है सो अनेक प्रकार है. **भावार्थ**-पहलैं श्रुतज्ञानके विकल्प नय कहे थे, इहां अनुमानका स्वरूप कह्या जो शरीरमें तिष्ठता जीव प्रत्यक्ष ग्रहणमें नाहीं आवै यातैं इन्द्रियनिका व्यापार स्पर्शना स्वादलेना बोलना सूंघना चोषना सुनना देखना आदि चेष्टा गमन आदिक चिह्ननितैं जानिये कि शरीरमें जीव है सो यह अनुमान है जातैं साधनतैं साध्यका ज्ञान होय सो अनुमान कहिये. सो यह भी नय ही है. परोक्ष प्रमाणके भेदनिमें कह्या है सो परमार्थकरि नय ही है. सो स्वार्थ परमार्थके भेदतैं तथा हेतु चिह्ननिके भेदतैं अनेकप्रकार कह्या है।

आगें नयके भेदनिकूं कहै हैं,—

सो संगहेण इक्को दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।
तेसिं च विसेसादो णइगमपहुदी हवे णाणं ॥ २६८ ॥

सः सङ्ग्रहेण एकः द्विविधः अपि च द्रव्यपर्यायाभ्यां ।
तयोः विशेषात् नैगमप्रभृतिः भवेत् ज्ञानं ॥ २६८ ॥

भाषार्थ-सो नय संग्रहकरि कहिये सामान्यकरि तौ एक है. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदकरि दोय प्रकार है. बहुरि विशेषकरि तिनि दोऊनिके विशेषतैं गमनकूं आदि देकरि है सो नय है ते ज्ञान ही है।

आगें द्रव्यनयका स्वरूप कहै हैं,—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।
णाणाजुत्तिबलादो दव्वत्थो सो णओ होदि ॥ २६९ ॥

यः साधयति सामान्यं अविनाभूतं विशेषरूपैः ।
नानायुक्तिबलात् द्रव्यार्थः सः नयः भवति ॥ २६९ ॥

भाषार्थ–जो नय वस्तुकूं विशेषरूपनितैं अविनाभूत सामान्य स्वरूपकूं नाना प्रकार युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है. भावार्थ–वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो विशेषविना सामान्य नाहीं ऐसे सामान्यकूं युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है ।

आगें पर्य्यायार्थिक नयकूं कहै हैं,—

जो साहेदि विसेसे बहुविहसामण्ण संजुदे सव्वे ।
साहणलिंगवसादो पज्जयविसयो णयो होदि ॥ २७० ॥

यः साधयति विशेषान् बहुविधसामान्यसंयुतान् सर्वान् ।
साधनलिङ्गवशात् पर्यायविषयः नयः भवति ॥ २७० ॥

भाषार्थ–जो नय अनेक प्रकार सामान्यकरि सहित सर्व विशेष तिनिके साधनका जो लिंग ताके वशतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. भावार्थ–सामान्य सहित विशेषनिकूं हेतुतैं साधै सो पर्यायार्थि नय है. जैसें सत् सामान्य करि सहित चेतन अचेतनपणा विशेष है, बहुरि चित् सामान्यकरि संसारी सिद्ध जीवपणा विशेष है, बहुरि संसारीपणा सामान्यकरिसहित त्रस थावर जीवपणाविशेष है इत्यादि. बहुरि अचेतन सामान्यकरिकै सहित पुद्गल आदि पांच द्रव्यविशेष हैं. बहुरिपुद्गलसामान्यकरि सहित अणुस्कन्ध घटपटआदि विशेष हैं इत्यादि पर्यायार्थिक नय हेतुतैं साधै है ।

आगें द्रव्यार्थिक नयका भेदनिकूं कहै हैं तहां प्रथमही नैगम नयकूं कहै हैं,–

जो साहेदि अदीदं वियप्परूवं भविस्समत्थं च ।
संपडिकालाविट्ठं सो हु णयो णेगमो णेयो ॥ २७१ ॥

यः साधयति अतीतं विकल्परूपं भविष्यं अर्थं च ।
सम्प्रतिकालाविष्टं सः स्फुटं नयः नैगमः ज्ञेयः ॥ २७१ ॥

भाषार्थ–जो नय अतीत तथा भविष्यत तथा वर्त्तमानकूं विकल्परूपकरि संकल्पमात्र साधै सो नैगम नय है. भावार्थ–द्रव्य है सो तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप है ताकूं अपना विषयकरि अतीतकाल पर्यायकूं भी वर्त्तमानवत् संकल्पमैं ले आगामी पर्यायकूं भी वर्त्तमानवत् संकल्पमें ले वर्त्तमानमें निष्पन्नकूं तथा अनिष्पन्नकूं निष्पन्नरूप संकल्पमैं ले ऐसे ज्ञानकूं तथा वचनकूं नैगम नय कहिये है. याके भेद अनेक हैं. सर्वनयके विषयकूं मुख्य गौणकरि अपना संकल्परूप विषय करै है. इहां उदाहरण ऐसा जैसें इस मनुष्य नामा जीव द्रव्यके

संसार पर्याय है अर सिद्धपर्याय है यह मनुष्य पर्याय है ऐसैं कहै तहां संसार अतीत अनागत वर्त्तमान तीन काल सम्बन्धी भी है, सिद्धपणा अनागत ही है, मनुष्यपणा वर्त्तमानही है परन्तु इस नयके वचनकरि अभिप्रायमैं विद्यमान संकल्पकरि परोक्ष अनुभवमें ले कहैकि या द्रव्यमैं मेरे ज्ञानमैं अबार यह पर्याय भासै है ऐसे संकल्पकूं नैगम नयका विषय कहिये. इनिमैंसूं मुख्यगौण कोईकूं कहै।

आगें संग्रह नयकूं कहै हैं,—

जो संगहेदि सव्वं देसं वा विविहदव्वपज्जायं।
अणुगमलिंगविसिट्ठं सो वि णयो संगहो होदि॥ २७२॥

यः संगृह्णाति सर्वं देशं वा विविधद्रव्यपर्यायं।
अनुगमलिङ्गविशिष्टं सः अपि नयः संग्रहः भवति॥ २७२॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुकूं तथा देश कहिये एक वस्तुके भेदकूं अनेक प्रकार द्रव्यपर्यायसहित अन्वय लिंगकरि विशिष्ट संग्रह करै, एकस्वरूप कहै, सो संग्रह नय है. **भावार्थ**—सर्व वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण सत्‌करि द्रव्य पर्यायनिसूं अन्वयरूप एक सत्‌मात्र है ऐसैं कहै, तथा सामान्य सत्‌स्वरूप द्रव्य मात्र है, तथा विशेष सत्‌रूप पर्याय मात्र है तथा जीव वस्तु चित् सामान्यकरि एक है तथा सिद्धत्व सामान्यकरि सर्व सिद्ध एक है तथा संसारित्व सामान्यकरि सर्व संसारी जीव एक है इत्यादि तथा अजीव सामान्यकरि पुद्गलादि पांच द्रव्य एक अजीव द्रव्य है तथा पुद्गलत्व सामान्यकरि अणु स्कन्ध घटपटादि एक द्रव्य है इत्यादि संग्रहरूप कहै सो संग्रह नय है।

आगें व्यवहार नयकूं कहै हैं,—

जो संगहेण गहिदं विसेसरहिदं पि भेददे सददं।
परमाणूपज्जंतं ववहारणओ भवे सो वि॥ २७३॥

यत् संग्रहेण गृहीतं विशेषरहितं अपि भेदयति सततं।
परमाणुपर्य्यन्तं व्यवहारनयः भवेत् सः अपि॥ २७३॥

भाषार्थ—जो नय संग्रह नयकरि विशेषरहित वस्तुकूं ग्रहण कीया था, ताकूं परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदै सो व्यवहार नय है. **भावार्थ**—संग्रह नय सर्व सत् सर्वकूं कह्या तहां व्यवहार भेद करै सो सत्‌द्रव्यपर्याय है. बहुरि संग्रह द्रव्य सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार नय भेद करै. द्रव्य जीव अजीव दोय भेदरूप है बहुरि संग्रह जीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार भेद करै जीव संसारी सिद्ध

दोय भेदरूप है इत्यादि. बहुरि पर्यायसामान्यकूं संग्रहण करै तहां व्यवहार भेद करै पर्याय अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय भेदरूप है तैसैं ही संग्रह अजीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहारनय भेद करि अजीव पुद्गलादि पंच द्रव्य भेदरूप है, बहुरि संग्रह पुद्गल सामान्यकूं ग्रहण करै तहां व्यवहारनय अणु स्कन्ध घट पट आदि भेदरूप कहै. ऐसैं जाकूं संग्रह ग्रहै तामैं भेद करता जाय तहां फेरि भेद न होय सकै तहां तांई संग्रह व्यवहारका विषय है. ऐसैं तीन द्रव्यार्थिक नयके भेद कहे।

अब पर्यायार्थिकके भेद कहै हैं तहां प्रथमही ऋजुसूत्र नयकूं कहै हैं,—

जो वट्टमाणकाले अत्थपज्जायपरिणदं अत्थं ।
संतं साहदि सव्वं तं वि णयं रिजुणयं जाण ॥ २७४ ॥

यः वर्त्तमानकाले अर्थपर्य्यायपरिणतं अर्थं ।
सन्तं साधयति सर्वं तद्वयोः नयः ऋजुनयः जानीहि ॥ २७४ ॥

भाषार्थ—जो नय वर्त्तमान कालविषै अर्थ पर्यायरूप परिणया जो अर्थ ताहि सर्वकूं सत्रूप साधै सो ऋजुसूत्र नय है. **भावार्थ**—वस्तु समय समय परिणमै है सो एक समय वर्त्तमान पर्यायकूं अर्थपर्याय कहिये है. सो या ऋजुसूत्र नयका विषय है. तिस मात्र ही वस्तुकूं कहै है. बहुरि घड़ी मुहूर्त्त आदि कालकूं भी व्यवहारमैं वर्त्तमान कहिये है सो तिस वर्त्तमान कालस्थायी पर्यायकूं भी साधै तातैं स्थूल ऋजुसूत्र संज्ञा है. ऐसैं तीन तौ पूर्वोक्त द्रव्यार्थिक अर एक ऋजुसूत्र ए च्यारि नय तौ अर्थनय कहिये हैं ।

आगैं तीन शब्दनय हैं तिनिकूं कहै हैं तहां प्रथमही शब्दनयकूं कहै हैं.—

सव्वेसिं वत्थूणं संखालिंगादि बहुपयारेहिं ।
जो साहदि णाणत्तं सद्दणयं तं वियाणेह ॥ २७५ ॥

सर्वेषां वस्तूनां संख्यालिङ्गादिबहुप्रकारैः ।
यः साधयति ज्ञानत्वं शब्दनयं तं विजानीहि ॥ २७५ ॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुनिकै संख्या लिंग आदि बहुत प्रकार करि नानापणाकूं साधै सो शब्द नय जाणूं. **भावार्थ**—संख्या एक वचन द्विवचन बहु वचन, लिङ्ग स्त्री पुरुष नपुंसकका वचन, आदि शब्दमैं काल कारक पुरुष उपसर्ग लेणें. सो इनिकरि व्याकरणके प्रयोग पदार्थकूं भेदरूपकरि कहै सो शब्द नय है. जैसैं पुष्य तारका नक्षत्र एक ज्योतिषीके विमानकै तीनूं लिंग कहै तहां व्यवहारमैं विरोध दीखै जातैं सो ही पुरुष सो ही स्त्री नपुंसक कैसैं होय! तथापि शब्द नयका यह ही विषय है जो जैसा शब्द कहै तैसा ही अर्थकूं भेदरूप मानना ।

आगें समभिरूढ नयकूं कहै हैं,--

जो एगेगं अत्थं परिणदिभेएण साहए णाणं ।
मुक्खत्थं वा भासदि अहिरूढं तं णयं जाण ॥ २७६ ॥

यः एकैकं अर्थं परिणतिभेदेन साधयति ज्ञानं ।
मुख्यार्थं वा भाषयति अभिरूढं तत् नयं जानीहि ॥ २७६ ॥

भाषार्थ--जो नय वस्तुकूं परिणामके भेदकरि एक एक न्यारा न्यारा भेदरूप साधै अथवा तिनिमैं मुख्य अर्थ ग्रहणकरि साधै सो समभिरूढ नय जाणूं. भावार्थ--शब्द नय वस्तुके पर्यायनामकरि भेद नाहीं करै अर यह समभिरूढ नय है सो एक वस्तुके पर्याय नाम हैं तिनिके भेदरूप न्यारे न्यारे पदार्थ ग्रहण करै तहां जिसकूं मुख्यकरि पकड़ै तिसकूं सदा तैसा ही कहै. जैसैं गऊ शब्दके बहुत अर्थ थे तथा गऊ पदार्थके बहुत नाम हैं. तिनिकूं यह नय न्यारे न्यारे पदार्थ मानै हैं. तिनिमैंसूं मुख्यकरि गऊ पकड्या ताकूं चालतां बैठतां सोवतां गऊ ही कहवो करै. ऐसा समभिरूढ नय है ।

आगें एवंभूत नयकूं कहै हैं.--

जेण सहावेण जदा परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।
तप्परिणामं साहदि जो वि णओ सो वि परमत्थो ॥ २७७ ॥

येन स्वभावेन यदा परिणतरूपे तन्मयत्वात् ।
तत्परिणामं साधयति यः अपि नयः सः अपि परमार्थः ॥ २७७ ॥

भाषार्थ--वस्तु जिस काल जिस स्वभावकरि परिणमनरूप होय तिस काल तिस परिणामतैं तन्मय होय है. तातैं तिस ही परिणामरूप साधै, कहै सो नय एवंभूत है. यह नय परमार्थरूप है. भावार्थ--वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यता करि नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमैं ताकूं तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकूं निश्चयनय भी कहिये है. जैसैं गऊकूं चालै जिस काल गऊ कहै. अन्य काल कछु न कहै ।

आगें नयनिके कथनकूं संकोचै हैं,--

एवं विविहणएहिं जो वत्थु ववहरेदि लोयम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च ॥ २७८ ॥

एवं विविधनयैः यः वस्तु व्यवहरति लोके ।
दर्शनज्ञानचारित्रं सः साधयति स्वर्गमोक्षौ च ॥ २७८ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकूं व्यवहाररूप कहै है, साधै है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकूं साधै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षकूं साधै है. भावार्थ–प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ सधै है. जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकूं यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है. तिसकै सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है।

आगें कहै हैं जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले हैं,–

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि॥२७९॥

विरलाः निश्रृण्वन्ति तत्त्वं विरलाः जानन्ति तत्त्वतः तत्त्वं।
विरलाः भावयन्ति तत्त्वं विरलानां धारणा भवति॥ २७९॥

भाषार्थ–जगत्विषै तत्त्वकूं विरले पुरुष सुणै हैं. बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकूं यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये बारबार अभ्यास करै हैं. बहुरि अभ्यास कीये भी तत्त्वकी धारणा विरलेनिकै होय है. भावार्थ–तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना जानना भावना धारणा उत्तरोत्तर दुर्लभ है इस पांचमां कालमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं अर धारणेवाले भी दुर्लभ हैं।

आगें कहै हैं जो कहे तत्त्वकूं सुनिकरि निश्चल भावतें भावै सो तत्त्वकूं जाणै,—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्लदे जो हि।
तं चिय भावेइ सया सो वि य तच्चं वियाणेई॥२८०॥

तत्त्वं कथ्यमानं निश्चलभावेन गृह्णाति यः हि।
तत् एव भावयति सदा सः अपि च तत्त्वं विजानाति॥ २८०॥

भाषार्थ–जो पुरुष गुरुनिकरि कह्या जो तत्त्वका स्वरूप ताकूं निश्चल भाव करि ग्रहण करै है, बहुरि तिसकूं अन्य भावना छोडि निरंतर भावै है, सो पुरुष तत्त्वकूं जाणै है।

आगें कहै हैं तत्त्वकी भावना नाहीं करै है, सो स्त्री आदिकै वश कौन नाही है? सर्व लोक है,—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं।
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं संतत्तो॥२८१॥

कः न वशः स्त्रीजने कस्य न मदनेन खण्डितं मानं ।
कः इन्द्रियैः न जितः कः न कषायैः संतप्तः ॥ २८१ ॥

भाषार्थ—या लोकविषै स्त्रीजनकै वस कौन नाहीं है? बहुरि कामकरि जाका मन खण्डन न भया ऐसा कौन है ? बहुरि इन्द्रियनिकरि न जीत्या ऐसा कौन है ? बहुरि कषायनिकरि तपायमान नाहीं ऐसा कौन है ? भावार्थ—विषय कषायनिके वशमैं सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करनेवाले विरले हैं।

आगें कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो है सो स्त्रीआदिके वश नाहीं होय है,—

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण ।
जो ण य गिह्णदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं ॥ २८२ ॥

सः न वशः स्त्रीजने सः न जितः इन्द्रियैः मोहेन ।
यः न च गृह्णाति ग्रन्थं अभ्यन्तरबाह्यं सर्वम् ॥ २८२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य आभ्यन्तर सर्व परिग्रहकूं नाहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनके वश नाहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इन्द्रियनिकरि जीत्या न होय है. बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म तिसकरि जीत्या न होय है. भावार्थ—संसारका बन्धन परिग्रह है. सो सर्व परिग्रहकूं छोडै सो ही स्त्री इन्द्रिय कषायादिककै वशीभूत नाहीं होय है. सर्व-त्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै, तब निजस्वरूपमैं ही लीन होय है।

आगें लोकानुप्रेक्षाका चिंतवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,—

एवं लोयसहावं जो झायदि उवसमेक्कसब्भावो ।
सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥ २८३ ॥

एवं लोकस्वभावं यः ध्यायति उपशमैकसद्भावः ।
सः क्षपयित्वा कर्मपुञ्जं तस्य एव शिखामणिः भवति ॥ २८३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकूं उपशमकरि एक स्वभावरूप हुवा संता ध्यावै है, चिंतवन करै है, सो पुरुष क्षेपे हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानै ऐसा तिस लोकहीका शिखामणि होय है. भावार्थ—ऐसैं साम्यभाव करि लोकानुप्रेक्षाका चिंतवन करै सो पुरुष कर्मका नाशकरि लोकके शिखर जाय तिष्ठै है. तहां अनन्त अनौपम्य बाधारहित स्वाधीन ज्ञानानन्दस्वरूप सुखकूं भोगवै है। इहां लोक भावनाका कथन विस्तारकरि करनेका आशय

ऐसा है जो अन्यमती लोकका स्वरूप तथा जीवका स्वरूप तथा हिताहितका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा असत्यार्थ प्रमाणविरुद्ध कहै हैं सो कोई जीव तौ सुनिकरि विपरीत श्रद्धा करै हैं, केई संशयरूप होय हैं, केई अनध्यवसायरूप होय हैं, तिनिकै विपरीत श्रद्धातैं चित्त थिरताकूं न पावै है. अर चित्त थिर निश्चित हुवा विना यथार्थ ध्यानकी सिद्धि नाहीं. ध्यान विना कर्मनिका नाश होय नाहीं, तातैं विपरीत श्रद्धान दूरि होनेके अर्थ यथार्थ लोकका तथा जीवादि पदार्थनिका स्वरूप जाननैके अर्थ विस्तारकरि कथन किया है, ताकूं जानि जीवादिक स्वरूप पहिचानि अपने स्वरूपविषै निश्चल चित्त ठानि कर्म्म कलंक भानि भव्य जीव मोक्षकूं प्राप्त होहु. ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है ।

कुंडलिया.

लोकाकार विचारिकैं, सिद्धस्वरूपचितारि ।
रागविरोध विडारिकैं, आतमरूपसंवारि ॥
आतमरूपसंवारि मोक्षपुर वसो सदा ही ।
आधिव्याधिजरमरन आदि दुख ह्वै न कदा ही ॥
श्रीगुरु शिक्षा धारि टारि अभिमान कुशोका ।
मनथिरकारन यह विचारि निजरूप सुलोका ॥ १० ॥

इति लोकानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १० ॥

अथ बोधदुर्लभानुप्रेक्षा लिख्यते.

जीवो अणंतकालं वसइ णिगोएसु आइपरिहीणो[1] ।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि ॥ २८४ ॥

जीवः अनन्तकालं वसति निगोदेषु आदिपरिहीनः ।
ततः निःसृत्य पृथ्वीकायादिकः भवति ॥ २८४ ॥

भावार्थ—ये जीव अनादि कालतैं लेकरि संसारविषै अनन्त काल तौ निगोदविषै वसै है. बहुरि तहांतैं नीसरिकरि पृथ्वीकायादिक पर्यायकूं धारै है. अनादितैं अनन्तकालपर्यन्त नित्य निगोदमें जीवका वास है. तहां एक शरीरमैं अनन्तानन्त जीवनिका आहार स्वासोच्छ्वास जीवन मरन समान है. स्वासके अठारहतैं

१ 'आउ परिहीणो' ऐसा भी पाठ है तहा अर्थ ऐसा जो आयुकरि रहित अर्थात् श्वासके अठारहवें भाग है आयु जिसकी ।

भाग आयु है तहांतैं नीसरि कदाचित् पृथवी अप तेज वायुकाय पर्याय पावै है सो यह पावना दुर्लभ है।

आगें कहै हैं यातैं नीसरि त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है,—

तत्थ वि असंखकालं वायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं ।
चिंतामणिव्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण ॥ २८५ ॥

तत्र अपि असंख्यकालं बादरसूक्ष्मेसु करोति परिवर्त्तनम् ।
चिंतामणिवत् दुर्लभं त्रसत्वं लभते कष्टेन ॥ २८५ ॥

भाषार्थ—तहां पृथिवीकाय आदिविषै सूक्ष्म तथा बादरनिविषै असंख्यात काल भ्रमण करै है. तहांतैं नीसरि त्रसपणा पावना बहुत कष्टकर दुर्लभ है. जैसैं चिंतामणिरत्नका पावना दुर्लभ होय तैसैं भावार्थ—पृथिवीआदि थावरकायतैं नीसरि चिन्तामणि रत्नकी ज्यौं त्रस पर्याय पावना दुर्लभ है।

आगें कहै हैं त्रसपणा भी पावै तहां पंचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है,—

वियलिंदिएसु जायदि तत्थ वि अत्थेइ पुव्वकोडीओ ।
तत्तो णीसरिऊणं कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥ २८६ ॥

विकलेन्द्रियेषु जायते तत्र अपि आस्ते पूर्व्वकोटयः ।
तेभ्यः निःसृत्य कथमपि पञ्चेन्द्रियः भवति ॥ २८६ ॥

भाषार्थ—थावरतैं नीसरि त्रस होय तहां भी विकलत्रय वेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियपणा पावै तहां कोटिपूर्व तिष्ठै तहांतैं भी नीसरि करि पंचेन्द्रियपणा पावना महा कष्टकर दुर्लभ है. भावार्थ—विकलत्रयतैं पंचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है जो विकलत्रयतैं फेरि थावर कायमैं जाय उपजै तौ फेरि बहुत काल भुगतै. तातैं पंचेन्द्रियपणा पावना अतिशय दुर्लभ है।

सो वि मणेण विहीणो ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।
अह मणसहिओ होदि हु तह वि तिरक्खो हवे रुद्दो ॥ २८७ ॥

सः अपि मनसा विहीनः न च आत्मानं परं अपि जानाति ।
अथ मनःसहितः भवति स्फुटं तथा अपि तिर्यक् भवेत् रौद्रः ॥ २८७ ॥

भाषार्थ—विकलत्रयतैं नीसरि पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैंनी मनरहित होय है. आप अर परका भेद जाणै नाहीं. बहुरि कदाचित् मनसहित सैंनी भी होय तौ तिर्यञ्च होय है. रौद्र क्रूर परिणामी विलाव घूघू सर्प सिंह मच्छ आदि होय

है. भावार्थ—कदाचित् पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैंनी होय सैंनीपणा दुर्लभ है बहुरि सैंनी भी होय तौ क्रूर तिर्यञ्च होय ताकै परिणाम निरंतर पापरूप ही रहैहैं।

आगें ऐसैं क्रूर परिणामीनिका नरकपात होय है ऐसैं कहै हैं,—

सो तिव्वअसुहलेसो नरये निवडेइ दुक्खदे भीमे ।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि सारीरं माणसं पउरं ॥ २८८ ॥

सः तीव्राशुभलेश्यः नरके निपतति दुःखदे भीमे ।
तत्र अपि दुःखं भुङ्क्ते शारीरं मानसं प्रचुरं ॥ २८८ ॥

भाषार्थ—क्रूर तिर्यंच होय सो तीव्र अशुभ परिणामकरि अशुभ लेश्या सहित मरि नरकमैं पड़ै है. कैसा है नरक दुःखदायक है भयानक है तहां शरीरसम्बन्धी तथा मनसम्बन्धी प्रचुर दुःख भोगवै है ।

आगें कहै हैं तिस नरकतैं नीसरि तिर्यंच होय दुःख सहै है,—

तत्तो णीसरिऊणं पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं ।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं ॥ २८९ ॥

ततः निःसृत्य पुनरपि तिर्यक्षु जायते पापं ।
तत्र अपि दुःखं अनन्तं विसहते जीवः अनेकविधं ॥ २८९ ॥

भाषार्थ—तिस नरकतैं नीसरि फेरि भी तिर्यंच गतिविषैं उपजै है तहां भी पापरूप जैसैं होय तैसैं यह जीव अनेक प्रकारका दुःख अनन्त विशेषकरि सहै है ।

आगें कहै हैं कि मनुष्यपणा पावना दुर्लभ है सो भी मिथ्याती होय पाप उपजावै है,—

रयणं चउप्पहेपिव मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय ।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥ २९० ॥

रत्नं चतुष्पथे इव मनुजत्वं सुष्ठुदुर्लभं लब्ध्वा ।
म्लेच्छः भवेत् जीवः तत्र अपि पापं समर्जयति ॥ २९० ॥

भाषार्थ—तिर्यंचतैं नीसरि मनुष्यगति पावणा अति दुर्लभ है. जैसैं चौपथमें रत्न पड्या होय सो बडा भाग्यतैं हाथ लागै तैसैं दुर्लभ है. बहुरि ऐसा दुर्लभ मनुष्यपणा पायकरि भी मिथ्यादृष्टी होय पाप उपजावै है. भावार्थ—मनुष्य भी होय अर म्लेच्छखंड आदि तथा मिथ्यादृष्टीनिकी संगतिविषैं उपजि पाप ही उपजावै है ।

आगें कहै हैं मनुष्य भी होय अर आर्य खंडविषै भी उपजै तौऊ उत्तम कुलआदिका पावणा अति दुर्लभ है,—

अह लहइ अज्जवंतं तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं।
उत्तम कुले वि पत्ते धणहीणो जायदे जीवो ॥ २९१ ॥

अथ लभते आर्य्यवत्त्वं तत्र न अपि प्राप्नोति उत्तमं गोत्रं।
उत्तमकुले अपि प्राप्ते धनहीनः जायते जीवः ॥ २९१ ॥

भावार्थ—मनुष्य पर्याय पाय आर्यखंडविषै भी जन्म पावै तौ ऊंच कुल पावना दुर्लभ है बहुरि कदाचित् ऊंच कुल विषै भी जन्म पावै तौ धनहीन दरिद्री होय तासूं कछू सुकृत बणै नाहीं पापहीमें लीन रहै।

अह धणसहिओ होदि हु इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा।
अह इंदिय संपुण्णो तह वि सरोओ हवे देहो ॥ २९२ ॥

अथ धनसहितः भवति स्फुटं इन्द्रियपरिपूर्णता ततः दुर्लभा।
अथ इन्द्रियसम्पूर्णः तथापि सरोगः भवेत देहः ॥ २९२ ॥

भावार्थ—बहुरि जो धनसहितपणा भी पावै तौ इन्द्रियनिकी परिपूर्णता पावना अति दुर्लभ है. बहुरि कदाचित् इन्द्रियनिकी संपूर्णता भी पावै तौ देहरोग सहित पावै नीरोग होना दुर्लभ है।

अह णीरोओ होदि हु तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं।
अह चिरकालं जीवदि तो सीलं णेव पावेई ॥ २९३ ॥

अथ नीरोगः भवति स्फुटं तथापि न प्राप्नोति जीवितं सुचिरं।
अथ चिरकालं जीवति तत शीलं नैव प्राप्नोति ॥ २९३ ॥

भावार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तौ जीवित कहिये आयु दीर्घ न पावै यह पावना दुर्लभ है अथवा जो कदाचित् आयु भी चिरकाल कहिये. दीर्घ पावै तौ शील कहिये उत्तम प्रकृति भद्र परिणाम न पावै जातैं सुष्ठु स्वभाव पावना दुर्लभ है।

अह होदि सीलजुत्तो तह वि ण पावेइ साहुसंसग्गं।
अह तं पि कह वि पावइ सम्मत्तं तह वि अइदुलहं ॥ २९४ ॥

अथ भवति शीलयुक्तः तथापि न प्राप्नोति साधुसंसर्गम्।
अथ तमपि कथं अपि प्राप्नोति सम्यक्त्वं तथा अपि अतिदुर्लभम् ॥२९४॥

भावार्थ—बहुरि सुष्ठु स्वभाव भी कदाचित् पावै तौ साधु पुरुषका संसर्ग संगति नहीं पावै है. बहुरि सो भी कदाचित् पावै तौ सम्यक्त्व पावना श्रद्धान होना अति दुर्लभ है।

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिह्णदे जीवो।
अह कह वि तं पि गिण्हदि तो पालेदुं ण सक्केदि ॥ २९५ ॥

सम्यक्त्वे अपि च लब्धे चारित्रं नैव गृह्णाति जीवः।
अथ कथमपि तत् अपि गृह्णाति तत् पालयितुं न शक्नोति ॥ २९५ ॥

भावार्थ—बहुरि सम्यक्त भी कदाचित् पावै तौ यह जीव चारित्र नाहीं ग्रहण करै है. बहुरि कदाचित् चारित्र भी ग्रहण करै तौ तिसकूं निर्दोष न पालि सकै है।

रयणत्तये वि लद्धे तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो।
तो दुग्गईसु गच्छदि पणट्ठरयणत्तओ होऊ ॥ २९६ ॥

रत्नत्रये अपि लब्धे तीव्रकषायं करोति यदि जीवः।
तत् दुर्गतिषु गच्छति प्रणष्टरत्नत्रयः भूत्वा ॥ २९६ ॥

भावार्थ—जो यह जीव कदाचित् रत्नत्रय भी पावै अर तीव्र कषाय करै तौ नाशकूं प्राप्त भया है रत्नत्रय जाका ऐसा होयकरि दुर्गतिकूं गमन करै है।

बहुरि ऐसा मनुष्यपणा ऐसा दुर्लभ है जातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति होय ऐसा कहै हैं,—

रयणुव्व जलहिपडियं मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं।
एवं सुणिच्चइत्ता मिच्छकसायेय वज्जेह ॥ २९७ ॥

रत्नं इव जलधिपतितं मनुजत्वं तत् अपि भवति अति दुर्लभम्।
एवं सुनिश्चयित्वा मिथ्यात्वकषायान् त्यजत ॥ २९७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्यपणा जैसैं रत्न समुद्रमें पड्या फेरि पावणा दुर्लभ होय तैसैं पावना दुर्लभ है ऐसैं निश्चयकरि अर हे भव्य जीवो थे मिथ्या अर कषायनिकूं छोड़ौ ऐसा उपदेश श्रीगुरुनिका है।

आगें कहै हैं जो कदाचित् ऐसा मनुष्यपणा पाय शुभपरिणामनितैं देवपणा पावै तौ तहां चारित्र नाहीं पावै है,—

अहवा देवो होदि हु तत्थ वि पावेइ कह वि सम्मत्तं।
सो तवचरणं ण लहदि देसजमं सील लेसं पि ॥ २९८ ॥

अथवा देवः भवति स्फुटं तत्र अपि प्राप्नोति कथमपि सम्यक्त्वं।
तत् तपश्चरणं न लभते देशयमं शीललेशं अपि ॥ २९८ ॥

भाषार्थ–अथवा मनुष्यपणातैं कदाचित् शुभपरिणामतैं देव भी होय अर कदाचित् तहां सम्यक्त्व भी पावै तौ तहां तपश्चरण चारित्र न पावै है. देशव्रत श्रावकव्रत तथा शीलव्रत कहिये ब्रह्मचर्य अथवा सप्तशीलका लेश भी न पावै है।

आगें कहै हैं कि इस मनुष्यगतिविषै ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है,—

मणुअगईए वि तओ मणुअगईए महव्वयं सयलं।
मणुअगईए झाणं मणुअगईए वि णिव्वाणं॥ २९९॥

मनुजगतौ अपि तपः मनुजगतौ महाव्रतं सकलं।
मनुजगतौ ध्यानं मनुजगतौ अपि निर्वाणम्॥ २९९॥

भाषार्थ–हे भव्य जीव हो इस मनुष्यगतिविषै ही तपका आचरण होय है बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही समस्त महाव्रत होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही धर्मशुक्लध्यान होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही निर्वाण कहिये मोक्षकी प्राप्ति होय है।

इय दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु।
ते लहिय दिव्वरयणं भूइणिमित्तं पजालंति॥ ३००॥

इति दुर्लभं मनुजत्वं लब्ध्वा ये रमन्ते विषयेषु।
ते लब्ध्वा दिव्यरत्नं भूतिनिमित्तं प्रज्वालयन्ति॥ ३००॥

भाषार्थ–ऐसा यह मनुष्यपणा पायकरि जे इन्द्रिय विषयनिविषै रमै हैं ते दिव्य अमोलिक रत्नकूं पाय भस्मके अर्थ दग्ध करै हैं. भावार्थ–अति कठिन पावने योग्य यह मनुष्य पर्याय अमोलिक रत्नतुल्य है. ताकूं विषयनिविषै रमिकरि वृथा खोवना योग्य नाहीं।

आगें कहै हैं जो या मनुष्यपणामें रत्नत्रयकूं पाय वडा आदर करो,

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण णाणं तहा चरित्तं च।
मुणिऊण य संसारे महायरं कुणह तिण्हं पि॥ ३०१॥

इति सर्वदुर्लभदुर्लभं दर्शनं ज्ञानं तथा चारित्रं च।
ज्ञात्वा च संसारे महादरं कुरुत त्रयाणां अपि॥ ३०१॥

भाषार्थ–ए सर्व दुर्लभतैं भी दुर्लभ जाणि बहुरि दर्शन ज्ञान तथा चारित्र संसारविषै दुर्लभसों दुर्लभ जाणि अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनिविषै हे भव्य जीव हो! बड़ा आदर करौ. भावार्थ–निगोदतैं नीसरि पूर्वै कहे तिस अनुक्रमतैं दु-

१–२ अत्र अपिशब्दो निश्चयार्थः।

र्लभसूं दुर्लभ जाणूं, बहुरि तहां भी सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति अति दुर्लभ जाणूं. तिसकूं पायकरि भव्य जीवनिकूं महान् आदर करना योग्य है।

छप्पय.

वसि निगोदचिर निकसि खेद सहि धरनि तरुनि बहु।
पवनवोद जल अगि निगोद लहि जरन मरन सहु॥
लट गिंडोल उटकण मकोड़ तन भमर भमणकर।
जलविलोलपशु तन सुकोल नभचर सर उरपर॥
फिरि नरकपात अति कष्टसहि, कष्टकष्ट नरतन महत।
तहँ पाय रत्नत्रय चिगत जे,ते दुर्लभ अवसर लहत॥११॥

इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ११॥

अथ धर्म्मानुप्रेक्षा प्रारभ्यते·

आगें धर्मानुप्रेक्षाका निरूपण करें हैं तहां धर्मका मूल सर्वज्ञ देव है ताकूं प्रगट करें हैं,—

जो जाणदि पच्चक्खं तियालगुणपज्जएहिं संजुत्तं।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देओ॥ ३०२॥

यः जानाति प्रत्यक्षं त्रिकालगुणपर्यायैः संयुक्तं।
लोकालोकं सकलं सः सर्वज्ञः भवेत् देवः॥ ३०२॥

भाषार्थ—जो समस्त लोक अर अलोक तीनकालगोचर समस्त गुणपर्यायनिकरि संयुक्त प्रत्यक्ष जाणै सो सर्वज्ञ देव है. **भावार्थ**—या लोकविषै जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं. तिनितैं अनन्तानन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं. एक एक आकाश, धर्म, अधर्म द्रव्य है. असंख्यात कालाणु द्रव्य हैं. लोकके परैं अनन्तप्रदेशी आकाश द्रव्य अलोक है. तिनि सर्व द्रव्यनिके अतीत काल अनन्त समयरूप आगामी काल तिनितैं अनन्त गुणा समयरूप तिस कालके समयसमयवर्त्ती एक द्रव्यके अनन्त अनन्त पर्याय हैं. तिनि सर्व द्रव्यपर्यायनिकूं युगपत् एक समयविषै प्रत्यक्ष स्पष्ट न्यारे न्यारे जैसें हैं तैसें जानें ऐसा जाके ज्ञान है सो सर्वज्ञ है. सो ही देव है अन्यकूं देव कहिये सो कहने मात्र है। इहां कहनेका तात्पर्य ऐसा जो धर्मका स्वरूप कहियेगा सो धर्मका स्वरूप यथार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं अतीन्द्रिय है. जाका फल स्वर्ग मोक्ष है, सो भी अतीन्द्रिय है. छद्मस्थकै इन्द्रिय

ज्ञान है. परोक्ष है सो याके गोचर नाहीं सो जो सर्व पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप भी प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप सर्वज्ञके वचनहीतैं प्रमाण है. अन्य छद्मस्थका कह्या प्रमाण नाहीं. सो सर्वज्ञके वचनकी परंपरातैं छद्मस्थ कहै सो प्रमाण है तातैं धर्मका स्वरूप कहनेकूं आदिविषै सर्वज्ञका स्थापन कीया।

आगें जे सर्वज्ञकूं न मानै हैं तिनिकूं कहै हैं,—

जदि ण हवदि सव्वण्हू ता को जाणदि अदिंदियं अत्थं ।
इंदियणाणं ण मुणदि थूलं पि असेस पज्जायं ॥ ३०३ ॥

यदि न भवति सर्वज्ञः तत् कः जानाति अतीन्द्रियं अर्थं ।
इन्द्रियज्ञानं न जानाति स्थूलं अपि अशेषपर्यायम् ॥ ३०३ ॥

भाषार्थ—हे सर्वज्ञका अभाववादी जो सर्वज्ञ न होय तौ अतीन्द्रियपदार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं ऐसे पदार्थकूं कौन जानै? इन्द्रियज्ञान तौ स्थूलपदार्थ इन्द्रियनितैं सम्बन्धरूप वर्तमान होय ताकूं जानै है ताके भी समस्तपर्याय हैं तिनिकूं नाही जानै है. भावार्थ—सर्वज्ञका अभाव मीमांसक अर नास्तिक कहै हैं ताकूं निषेध्या है जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थकूं कौन जानै? जातैं धर्म अर अधर्मका फल अतीन्द्रिय है ताकूं सर्वज्ञविना कोऊ जानैं तातैं धर्म अर अधर्मका फलकूं चाहता जो पुरुष है सो सर्वज्ञकूं मानि करि ताके वचनतैं धर्मका स्वरूप निश्चय करि अंगीकार करौ।

तेणुवइट्ठो धम्मो संगासत्ताण तह असंगाणं ।
पढमो वारहभेओ दसभेओ भासिओ विदिओ ॥ ३०४ ॥

तेन उपदिष्टः धर्म्मः सङ्गाशक्तानां तथा असङ्गानां ।
प्रथमः द्वादशभेदः दशभेदः भाषितः द्वितीयः ॥ ३०४ ॥

भाषार्थ—तिस सर्वज्ञकरि उपदेस्या धर्म है सो दोय प्रकार है. एक तौ संगासक्त कहिये गृहस्थका अर एक असंग कहिये मुनिका. तहां पहला गृहस्थका धर्म तौ बारह भेदरूप है. बहुरि दूजा मुनिका धर्म दश भेदरूप है।

आगें गृहस्थके धर्मके बारह भेदनिके नाम दोय गाथामैं कहै हैं,—

सम्मद्दंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं ।
वयधारी सामइओ पव्ववई पासु आहारी ॥ ३०५ ॥
राईभोयणविरओ मेहुणसारंभसंगचत्तो य ।
कज्जाणुमोयविरओ उद्दिट्ठाहारविरओ य ॥ ३०६ ॥

सम्यग्दर्शनशुद्धः रहितः मद्यादिस्थूलदोषैः ।
व्रतधारी सामयिकः पर्व्वव्रती प्राशुकाहारी ॥ ३०५ ॥

रात्रिभोजनविरतः मैथुनसारम्भसङ्गत्यक्तः च ।
कार्यानुमोदविरतः उद्दिष्टाहारविरतः च ॥ ३०६ ॥

भाषार्थ–सम्यग्दर्शन है शुद्ध जाकै ऐसा १, मद्य आदि स्थूल दोषनितैं रहित दर्शन प्रतिमाका धारी २, पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ऐसैं बार व्रतनिसहित व्रतधारी ३, तथा सामायिकव्रती ४, पर्वव्रती ५, प्राशुकाहारी ६, रात्रि-भोजनत्यागी ७, मैथुनत्यागी ८, आरंभत्यागी ९, परिग्रहत्यागी १०, कार्यानुमोद-विरत ११ अर उद्दिष्टाहारविरत १२, इसप्रकार श्रावकधर्मके १२ भेद हैं. भावार्थ–पहला भेद तौ पच्चीसमलदोषरहित शुद्धअविरतसम्यग्दृष्टी है. बहुरि ग्यारह भेद प्रतिमानके व्रतनिकरि सहित होय सो व्रती श्रावक है ।

आगैं इनि बारहनिका स्वरूप प्रभृतिका व्याख्यान करै हैं. तहां प्रथम ही अविरत सम्यग्दृष्टीका कहै हैं. तहां भी पहले सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यताका निरूपण करै हैं,—

चउगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥३०७॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी सुविशुद्धः जाग्रत्पर्याप्तः ।
संसारतटे निकटः ज्ञानी प्राप्नोति सम्यक्त्वं ॥ ३०७ ॥

भाषार्थ–ऐसा जीव सम्यक्त्वकूं पावै है. प्रथम ही भव्य जीव होय जातैं अभ-व्यकै सम्यक्त्व होय नाहीं. बहुरि च्यारूं ही गतिविषै सम्यक्त्व उपजै है तहां भी मन सहित सैनीकै उपजै है. असैनीकै उपजै नाहीं. तहां भी विशुद्ध परिणामी होय, शुभ लेश्या सहित होय, अशुभ लेश्यामैं भी शुभ लेश्यासमान कषायनिके स्थानक होय तिनिकूं विशुद्ध उपचारकरि कहिये संक्लेश परिणामनिविषै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि जागताकै होय. सूताकै नाहीं होय. बहुरि पर्याप्तपूर्णकै होय, अपर्याप्त अवस्थामैं उपजै नाहीं. बहुरि संसारका तट जाकै निकट आया होय निकट भव्य होय, अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल पहलैं सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि ज्ञानी होय साकार उपयोगवान होय निराकार दर्शनोपयोगमैं सम्यक्त्व उपजै नाहीं. ऐसैं जीवकै सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होय है ।

आगैं सम्यक्त्व तीन प्रकार है. तिनिमैं उपशम सम्यक्त्व अर क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै हैं,—

सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुसस्स ॥ ३०८ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां उपशमतः भवति उपशमं सम्यक्त्वं ।
क्षयतः च भवति क्षायिकं केवलिमूले मनुषस्य ॥ ३०८ ॥

भाषार्थ–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व, अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनि सात मोहकर्मकी प्रकृतिनिके उपशम होतैं उपशम सम्यक्त्व होय है. अर इनि सातों मोहकर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेतैं क्षायिक सम्यक्त्व उपजै है. सो यह क्षायिक सम्यक्त्व केवली कहिये केवलज्ञानी तथा श्रुतकेवलीकै निकट कर्म्मभूमिके मनुष्यकै ही उपजै है. **भावार्थ**–इहां ऐसा जानना जो क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ तौ केवली श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यकै ही होय है. अर निष्ठापन अन्यगतिमैं भी होय है ।

आगैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसं होय सो कहै हैं,—

अणउदयादो छण्हं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।
सम्मत्तकम्मउदए खयउवसमियं हवे सम्मं ॥ ३०९ ॥

अनुदयात् षण्णां स्वजातिरूपेण उदयमानानाम् ।
सम्यक्त्वकर्मोदये क्षायोपशमिकं भवेत् सम्यक्त्वं ॥ ३०९ ॥

भाषार्थ–पूर्वोक्त सात प्रकृति तिनिमैंसूं छह प्रकृतिनिका उदय न होय तथा सजाति कहिये समान जातीय प्रकृतिरूपकरि उदयरूप होय बहुरि सम्यक् कर्म प्रकृतिका उदय होतैं क्षायोपशमिक होय. **भावार्थ**–मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका तौ उदयका अभाव होय अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होय अर अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभका उदयका अभाव होय तथा विसंयोजनकरि अप्रत्याख्यानावरण आदिक रूपकरि उदयमान होय तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपजै है. इनि तीनूं ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका विशेष कथन गोमट्टसार लब्धिसारतैं जानना ।

आगैं औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अर अनन्तानुबंधीका विसंयोजन अर देशव्रत इनिका पावना अर छूटि जाना उत्कृष्टकरि कहै हैं,—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्किट्ठं ॥ ३१० ॥

गृह्णाति मुञ्चति जीवः द्वे सम्यक्त्वे असंख्यवारान् ।
प्रथमकषायविनाशं देशव्रतं करोति उत्कृष्टं ॥ ३१० ॥

भाषार्थ–यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ए दोय तौ सम्यक्त्व अर अनन्तानुबन्धीका विनाश विसंयोजन अप्रत्याख्यानादिरूप परिणमावना अर देशव्रत इनि च्यारिनिकूं असंख्यातबार ग्रहण करै है अर छोडै है. यह उत्कृष्टकरि कह्या है. **भावार्थ**–पल्यका असंख्यातवां भाग परिमाण जो असंख्यात तेतीबार उत्कृष्टपणै ग्रहण करै अर छोडै पीछैं मुक्ति प्राप्त होय ।

आगैं ऐसैं सप्त प्रकृतिके उपशम क्षय क्षयोपशमतैं उपज्या सम्यक्त्व कैसैं जाणिये ऐसा तत्त्वार्थ श्रद्धानकूं नव गाथानिकरि कहै हैं,—

जो तच्च मणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ ३११ ॥
जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।
सुदणाणेण णयेहिं य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥ ३१२ ॥

यः तत्त्वं अनेकान्तं नियमात् श्रद्दधाति सप्तभङ्गैः ।
लोकानां प्रश्नवशतः व्यवहारप्रवर्त्तनार्थं च ॥ ३११ ॥
यः आदरेण मन्यते जीवाजीवादि नवविधं अर्थं ।
श्रुतज्ञानेन नयैः च सः सद्दृष्टिः भवेत् शुद्धः ॥ ३१२ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष सप्तभंगनिकरि अनेकान्त तत्त्वनिका नियमतैं श्रद्धान करै, जातैं लोकनिका प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधतैं वचनके सात ही भंग होय हैं तातैं व्यवहारके प्रवर्त्तनेके अर्थ भी सातभंगनिका वचनकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि जो जीव अजीव आदि नवप्रकार पदार्थकूं श्रुतज्ञान प्रमाणकरि तथा तिसके भेद जे नय तिनिकरि अपना आदर यत्न उद्यमकरि मानै श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है. **भावार्थ**–वस्तुका स्वरूप अनेकान्त है. जामैं अनेक अंत कहिये धर्म होय सो अनेकान्त कहिये. ते धर्म अस्तित्व नास्तित्व एकत्व अनेकत्व नित्यत्व अनित्यत्व भेदत्व अभेदत्व अपेक्षात्व अनपेक्षात्व दैवसाध्यत्व पौरुषसाध्यत्व हेतुसाध्यत्व आगमसाध्यत्व अन्तरंगत्व बहिरंगत्व इत्यादि तौ सामान्य हैं. बहुरि द्रव्यत्व पर्यायत्व जीवत्व अजीवत्व स्पर्शत्व रसत्व गन्धत्व वर्णत्व शब्दत्व शुद्धत्व अशुद्धत्व मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व संसारित्व सिद्धत्व अवगाहत्व गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व वर्त्तनाहेतुत्व इत्यादि विशेष धर्म हैं. सो तिनिके प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधरूप वचनके सात भंग होय हैं. तिनिकै 'स्यात्' ऐसा पद लगावणा.

स्यात् नाम कथंचित् कोईप्रकार ऐसा अर्थमैं है. तिसकरि वस्तुकूं अनेकान्त साधणा. तहां वस्तु स्यात् अस्तित्वरूप है, ऐसैं कोईप्रकार अपने द्रव्यक्षेत्र कालभावकरि अस्तित्वरूप कहिये है. बहुरि स्यात् नास्तित्वरूप है, ऐसैं पर वस्तुके द्रव्यक्षेत्रकालभावकरि नास्तित्वरूप कहिये है. बहुरि वस्तु स्यात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है, ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म पाइये हैं अर वचनकरि क्रमतैं कहे जाय हैं. बहुरि स्यात् अवक्तव्य है. ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म एक काल पाइये है तथापि एक काल वचनकरि कहे न जाय हैं तातैं कोई प्रकार अवक्तव्य है. बहुरि अस्तित्वकरि कह्या जाय है दोऊ एक काल है, तातैं कह्या न जाय ऐसैं वक्तव्य भी है अर अवक्तव्य भी है तातैं स्यात् अस्तित्व अवक्तव्य है. ऐसैं ही नास्तित्व अवक्तव्य कहना. बहुरि दोऊं धर्म क्रमकरि कह्या जाय युगपत् कह्या न जाय तातैं स्यात् अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य कहना. ऐसैं सात ही भंग कोई प्रकार संभवै है. ऐसैं ही एकत्व अनेकत्व आदि सामान्य धर्मनिपरि सात भंग विधिनिषेधतैं लगावणा. जैसैं जैसैं जहां अपेक्षा सम्भवै सो लगावणी. बहुरि तैसैं ही विशेषत्व धर्म जीवत्व अजीवत्व आदिमें लगावणा जैसैं जीव नामा वस्तु है सो स्यात् जीवत्व स्यात् अजीवत्व इत्यादि लगावणा. तहां अपेक्षा ऐसैं जो अपना जीवत्व धर्म आपमें है तातैं जीवत्व है. पर अजीवका अजीवत्व धर्म यामें नाहीं तौऊ अपने अन्य धर्मकूं मुख्य करि कहिये ताकी अपेक्षा अजीवत्व है इत्यादि लगावणा. तथा जीव अनन्त हैं ताकी अपेक्षा अपना जीवत्व आपमैं परका जीवत्व यामैं नाहीं है. तातैं ताकी अपेक्षा अजीवत्व है ऐसैं भी सधै है. इत्यादि अनादि निधन अनन्त जीव अजीव वस्तु हैं.तिनिविषै अपने अपने द्रव्यत्व पर्यायत्व अनन्त धर्म हैं तिनि सहित सप्त भंगतैं साधना. तथा तिनिके स्थूल पर्याय हैं ते भी चिरकालस्थायी अनेक धर्मरूप होय हैं. जैसैं जीव संसारी सिद्ध. बहुरि संसारीमैं त्रस थावर, तिनिमैं मनुष्य तिर्यंच इत्यादि. बहुरि पुद्गलमैं अणु स्कन्ध तथा घट पट आदि, सो इनिके भी कथंचित् वस्तुपणा सम्भवै है.सो भी तैसैं ही सप्त भंगतैं साधणा. बहुरि तैसैं ही जीव पुद्गलके संयोगतैं भये आस्रव बंध संवर निर्जरा पुण्य पाप मोक्ष आदि भाव तिनिमैं भी बहुत धर्मपणाकी अपेक्षा तथा परस्पर विधिनिषेधतैं अनेक धर्मरूप कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो सप्तभंगतैं साधणा. जैसैं एक पुरुषमैं पिता पुत्र मामा भाणजा काका भतीजापणा आदि धर्म संभवै है. सो अपनी अपनी अपेक्षातैं विधिनिषेधकरि सात भंगतैं साधणा. ऐसा नियमकरि जानना जो वस्तुमात्र अनेक धर्म स्वरूप है सो सर्वकूं अनेकान्त जाणि श्रद्धान करै, बहुरि तैसैं ही लोककेविषै व्यवहार प्रवर्त्तावै सो सम्यग्दृष्टी है. बहुरि

जीव अजीव आस्रव बंध पुण्य पाप संवर निर्जरा मोक्ष ये नव पदार्थ हैं तिनिकूं तैसैं ही सप्तभंगतें साधने. ताका साधन श्रुतज्ञान प्रमाण है. अर ताके भेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तिनिके भी भेद नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत नय हैं. बहुरि तिनिके भी उत्तरोत्तर भेद जेते वचनके प्रकार हैं तेते हैं, तिनिकूं प्रमाणसप्तभंगी अर नयसप्तभंगीके विधानकरि साधिये है. तिनिका कथन पहले लोकभावनामैं कीया है. बहुरि तिसका विशेष कथन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना. ऐसें प्रमाण नयनिकरि जीवादि पदार्थनिकूं जानिकरि श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि इहां यह विशेष और जानना जो नय हैं ते वस्तुके एक एक धर्मके ग्राहक हैं ते अपने अपने विषयरूप धर्मकूं ग्रहण करनेविषै सामान हैं तौऊ पुरुष अपने प्रयोजनके वशतें तिनिकूं मुख्य गौणकरि कहै हैं. जैसें जीव नामा वस्तु है तामें अनेक धर्म हैं. तौऊ चेतनपणा आदि प्राणधारणपणा अजीवनितें असाधारण देखि तिनि अजीवनितें न्यारा दिखावनेके प्रयोजनके वशतें मुख्यकरि वस्तुका जीव नाम धर्‍या. ऐसें ही मुख्य गौण करनेका सर्व धर्मके प्रयोजनके वशतें जानना. इहां इस ही आशयतें अध्यात्म कथनीविषै मुख्यकूं तौ निश्चय कह्या है. अर गौणकूं व्यवहार कह्या है. तहां अभेद धर्म तौ प्रधानकरि निश्चयका विषय कह्या. अर भेद नयकूं गौणकरि व्यवहार कह्या सो द्रव्य तौ अभेद है. तातें निश्चयका आश्रय द्रव्य है. बहुरि पर्याय भेद रूप है. तातें व्यवहारका आश्रय पर्याय है तहां प्रयोजन ऐसा जो भेदरूप वस्तुकूं सर्व लोक जानै है. तातें जो जानै सो ही प्रसिद्ध है. याहीतें लोक पर्यायबुद्धि है. जीवकै नरनारक आदिपर्याय है. तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि पर्याय है. तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादिक पर्याय है. तिनि पर्यायनिहीकूं लोक जीव जानै है. तातें इनि पर्यायनिविषै अभेदरूप अनादि अनन्त एकभाव जो चेतना धर्म ताकूं ग्रहणकरि निश्चय नयका विषय कहिकरि जीव द्रव्यका ज्ञान कराया. पर्यायाश्रित जो भेद नय ताकूं गौण कीया. तथा अभेद दृष्टिमें यह दीखै नाहीं तातें अभेद नयका दृढ श्रद्धा करावनेकूं कह्या जो पर्याय नय है सो व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है. सो भेद बुद्धिका एकान्त निराकरण करनेके अर्थ यह कहना जानना. ऐसा नाहीं कि यह भेद है, सो असत्यार्थ कह्या. जो वस्तुका स्वरूप ही नाहीं है जो ऐसें सर्वथा मानै तो अनेकान्तमें समझ्या नाहीं सर्वथा एकान्त श्रद्धानतें मिथ्यादृष्टी होय है. जहां अध्यात्म शास्त्रनिविषै निश्चय व्यवहार नय कहे हैं तहां भी तिनि दोऊनिका परस्पर विधिनिषेधतें सप्तभंगकरि वस्तु साधणा. एककूं सर्वथा सत्यार्थ मानै अर एककूं सर्वथा अस-

त्यार्थ मानै तौ मिथ्या श्रद्धान होय है. तातैं तहां भी कथंचित् जानना. बहुरि अन्य वस्तु अन्यविषै आरोपणकरि प्रयोजन साधिये है तहां उपचार नय कहिये है सो यह भी व्यवहारविषै ही गर्भित है ऐसैं कह्या है. जो जहां प्रयोजन निमित्त होय तहां उपचार प्रवर्तै है. घृतका घट कहिये तहां माटीका घड़ाके आश्रय घृत भर्या होय तहां व्यवहारी जननिकूं आधार आधेय भाव दीखै है ताकूं प्रधानकरि कहिये है. जो घृतका घड़ा है ऐसैं ही कहै लोक समझै. अर घृतका घड़ा मगावैं तब तिसकूं ले आवै, तातैं उपचारविषै भी प्रयोजन संभवै है. ऐसैं ही अभेद नयकूं मुख्य करै तहां अभेद दृष्टिमैं भेद दीखै नाहीं तब तिसमैं ही भेद कहै सो असत्यार्थ है तहां भी उपचार सिद्धि होय है यह मुख्य गौणका भेदकूं सम्यग्दृष्टी जानै है. मिथ्यादृष्टी अनेकान्त वस्तुकूं जानै नाहीं. अर सर्वथा एक धर्म ऊपरि दृष्टि पड़ै तब तिसहीकूं सर्वथा वस्तु मानि अन्य धर्मकूं कै तौ सर्वथा गौणकरि असत्यार्थ मानै, कै सर्वथा अन्य धर्मका अभाव ही मानै. तथा मिथ्यात्व दृढ होय है सो यह मिथ्यात्वनामा कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं यथार्थ श्रद्धान होय है तातैं तिस प्रकृतिका कार्य है सो भी मिथ्यात्व ही कहिये है. अर तिस प्रकृतिका अभाव भये तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होय है सो यह अनेकान्त वस्तुविषै प्रमाण नयकरि सात भंगकरि साध्या हूवा सम्यक्त्वका कार्य है. तातैं याकूं भी सम्यक्त्व ही कहिये. ऐसैं जानना. जिनमतकी कथनी अनेक प्रकार है सो अनेकान्तरूप समझना. अर याका फल अज्ञानका नाश होकर उपादेयकी बुद्धि अर वीतरागताकी प्राप्ति है. सो इस कथनीका मर्म पावना बड़े भाग्यतैं होय है. इस पंचम कालमें अबार इस कथनीके गुरुका निमित्त सुलभ नाहीं है तातैं शास्त्र समझनेका निरन्तर उद्यम राखि समझना योग्य है. जातैं याके आश्रय मुख्यपणै सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है. यद्यपि जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन तथा प्रभावना अंगका देखना इत्यादि सम्यक्त्वकी प्राप्तिकूं कारण है तथापि शास्त्रका श्रवण करना, पढना, भावना करना, धारणा, हेतुयुक्तिकरि स्वमत परमतका भेद जानि नयविवक्षाकूं समझना वस्तुका अनेकान्तस्वरूप निश्चय करना मुख्य कारण है. तातैं भव्य जीवनिकूं इसका उपाय निरन्तर राखणा योग्य है।

आगें कहै हैं जो सम्यग्दृष्टी भये अनन्तानुबंधी कषायका अभाव होय है ताके परिणाम कैसे होय हैं,—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु ।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं ॥ ३१३ ॥

यः न च करोति गर्वं पुत्रकलत्रादिसर्वार्थेषु ।
उपशमभावान् भावयति आत्मानं मन्यते तृणमात्रं ॥ ३१३ ॥

भावार्थ–जो सम्यग्दृष्टी होय है सो पुत्र कलत्र आदि सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यनिके भावनिविषै गर्व नाहीं करै है. परद्रव्यतैं आपकै बड़ापणा मानै तौ सम्यक्त्व काहेका. बहुरि उपशम भावनिकूं भावै है अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी तीव्र रागद्वेष परिणामके अभावतैं उपशम भावनिकी भावना निरन्तर राखै है बहुरि अपने आत्माकूं तृणसमान हीण मानै है जातैं अपना स्वरूप तौ अनन्त ज्ञानादिरूप है. सो जेतैं तिसकी प्राप्ति न होय तेतैं आपकूं तृणबराबरि मानै है. काहूविषै गर्व नाहीं करै है ।

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥ ३१४ ॥

विषयासक्तः अपि सदा सर्वारम्भेषु वर्त्तमानः अपि ।
मोहविलासः एषः इति सर्वं मन्यते हेयं ॥ ३१४ ॥

भावार्थ–अविरत सम्यग्दृष्टी यद्यपि इन्द्रिय विषयनिविषैं आसक्त है बहुरि त्रस थावर जीवके घात जामें होय ऐसे सर्व आरम्भविषैं वर्त्तमान है. अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायनिके तीव्र उदयनितैं विरक्त न हूवा है तौऊ ऐसा जाणै है कि यह मोहकर्मका उदयका विलास है. मेरे स्वभावमें नाहीं है उपाधि है रोगवत् है त्यजने योग्य है. वर्त्तमान कषायनिकी पीड़ा न सही जाय है तातैं असमर्थ हूवा विषयनिका सेवना तथा बहु आरंभमैं प्रवर्त्तना हो है ऐसा मानै है।

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मियअणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥ ३१५ ॥

उत्तमगुणग्रहणरतः उत्तमसाधूनां विनयसंयुक्तः ।
साधर्म्मिकानुरागी स सद्दृष्टिः भवेत् परमः ॥ ३१५ ॥

भावार्थ–बहुरि कैसा है सम्यग्दृष्टी उत्तम गुण जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदिक तिनिविषै तौ अनुरागी होय, बहुरि तिनि गुणनिके धारक जे उत्तम साधु तिनिका विनयकरि संयुक्त होय, बहुरि आप समान जे सम्यग्दृष्टी साधर्मी तिनिविषै अनुरागी होय, वात्सल्यगुणसहित होय, सो उत्तम सम्यग्दृष्टी होय है. ए तीनूं भाव न होय तौ जानिये याकै सम्यक्त्वका यथार्थपणा नाहीं ।

देहमिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं ।
जीवमिलियं पि देहं कंचुअसरिसं वियाणेई ॥३१६॥

देहमिलितं अपि जीवं निजज्ञानगुणेन जानाति यः भिन्नं ।
जीवमिलितं अपि देहं कञ्चुकसदृशं विजानाति ॥ ३१६ ॥

भाषार्थ—यह जीव देहतैं मिलि रह्या है तौऊ अपना ज्ञानगुण जाणै है. तातैं आपकूं देहतैं भिन्न ही जाणै है. बहुरि देह जीवतैं मिलि रह्या है तौऊ ताकूं कंचुक कहिये कपड़ेका जामासारिखा जाणै है जैसैं देहतैं जामा भिन्न है तैसैं जीवतैं देह भिन्न है. ऐसैं जाणै है ।

णिज्जियदोसं देवं सव्वजिवाणं दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ॥ ३१७ ॥

निर्जितदोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मम् ।
वर्जितग्रन्थं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं सद्दृष्टिः ॥ ३१७ ॥

भाषार्थ—जो जीव दोषवर्जित तौ देव मानै बहुरि सर्व जीवनिकी दयाकूं श्रेष्ठ धर्म मानै. बहुरि निर्ग्रन्थ गुरुकूं गुरु मानै सो प्रगटपणैं सम्यग्दृष्टी है. **भावार्थ**—सर्वज्ञ वीतराग अठारह दोषनिकरि रहित देवकूं मानै, अन्य दोषसहित देव हैं तिनिकूं संसारी जाणै, ते मोक्षमार्गी नाहीं, ऐसा जानि वंदै पूजै नाहीं. तथा अहिंसारूप धर्म जानै, जे यज्ञादि देवतानिकै अर्थ पशुघातकरि चढावै ताकूं धर्म मानै हैं. तिनकूं पाप ही जानि आप तिसविषै नाहीं प्रवर्त्तै. बहुरि जे ग्रन्थसहित अनेक भेष अन्यमतीनके हैं तथा काल दोषतैं जैनमतमैं भी भेष भये हैं तिनि सर्वनिकूं भेषी पाषंडी जानै, वंदै पूजै नाहीं. सर्व परिग्रहतैं रहित होय तिनिहीकूं गुरु मानि वन्दै पूजै, जातैं देव गुरु धर्मके आश्रय ही मिथ्या सम्यक् उपदेश प्रवर्त्तै है. सो कुदेव कुधर्म कुगुरुका वन्दना पूजना तौ दूर ही रहो तिनिके संसर्गहीतैं श्रद्धान बिगड़ै है. तातैं सम्यग्दृष्टी तिनिकी संगति भी न करै. स्वामी समन्तभद्र आचार्य रत्नकरंड श्रावकाचारमैं ऐसैं कह्या है, जो सम्यग्दृष्टी है सो कुदेव कुत्सित आगम अर कुलिंगी भेषी तिनिकूं भयतैं तथा किछू आशातैं तथा लोभतैं भी प्रणाम तथा तिनिका विनय न करै(१) इनिका संसर्गतैं श्रद्धा बिगड़ै है. धर्मकी प्राप्ति तौ दूरि ही रहो. ऐसा जानना ।

आगैं मिथ्यादृष्टी कैसा होय सो कहै हैं,—

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥ ३१८ ॥

(१) भयाशा स्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥

दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादिसंयुतं धर्म्मं ।
ग्रन्थाशक्तं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं कुदृष्टिः ॥ ३१८ ॥

भाषार्थ—जो जीव दोषनिसहित देवनिकूं तौ देव मानै, बहुरि जीव हिंसादिसहितकूं धर्म मानै, बहुरि परिग्रहकेविषै आशक्तकूं गुरु मानै, सो प्रगटपणै मिथ्यादृष्टी है. **भावार्थ**—भाव मिथ्यादृष्टी तौ अदृष्ट छिप्या मिथ्याती है. बहुरि जो कुदेव राग द्वेष मोह आदि अठारह दोषनिकरि सहितकूं देव मानिकरि पूजै बन्दै हैं. अर हिंसा जीवघात आदिकरि धर्म मानै हैं बहुरि परिग्रहकेविषै आसक्त ऐसे भेषीनिकूं गुरु मानै हैं ते प्रगट प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टी हैं. ।

आगें कोई कहै कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी दे हैं. उपकार करै हैं तिनिकूं पूजने वन्दने कि नाही ताकूं कहै हैं,—

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं ।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥ ३१९ ॥

न च कोऽपि ददाति लक्ष्मीं न कः अपि जीवस्य करोति उपकारं ।
उपकारं अपकारं कर्म्म अपि शुभाशुभं करोति ॥ ३१९ ॥

भाषार्थ—या जीवकूं कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नाहीं देवै है बहुरि कोई अन्य उपकार भी नाहीं करै है. जीवके पूर्वसंचित शुभ अशुभ कर्म हैं ते ही उपकार तथा अपकार करै हैं. **भावार्थ**—कई ऐसें मानै हैं जो व्यंतर आदि देव हमकूं लक्ष्मी दे हैं हमारा उपकार करै हैं सो तिनिकूं हम पूजै वन्दै हैं. सो यह मिथ्याबुद्धि है. प्रथम तौ अवार कालमें प्रत्यक्ष कोई व्यंतर आदि आप देता देख्या नाहीं. उपकार करता दीखै नाहीं जो ऐसें होय तो पूजनेवाले दरिद्री रोगी दुःखी काहेकूं रहैं. तातैं वृथा कल्पना करै है. बहुरि परोक्ष भी ऐसा नियमरूप सम्बन्ध दीखै नाहीं जो पूजै तिनिकै अवश्य उपकारादिक होयही. तातैं यह मोही जीव वृथा ही विकल्प उपजावै है. जो पूर्वकर्म शुभाशुभ संचित हैं सो ही या प्राणीकै सुख दुःख धन दरिद्र जीवन मरनकूं करै है ।

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥ ३२० ॥

भक्त्या पूज्यमानः व्यन्तरदेवः अपि ददाति यदि लक्ष्मीं ।
तत् किं धर्म्मः क्रियते एवं चिन्तयति सद्दृष्टिः ॥ ३२० ॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी ऐसें विचारै जो व्यंतर देव ही भक्तिकरि पूज्या हुवा

लक्ष्मी दे है तौ धर्म काहेकूं कीजिये. भावार्थ—कार्य तौ लक्ष्मीतें है सो व्यंतर देव ही पूजेतें लक्ष्मी दे तौ धर्म काहेकूं सेवना ? बहुरि मोक्षमार्गके प्रकरणमैं संसारकी लक्ष्मीका अधिकार भी नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी तौ मोक्षमार्गी है. संसारकी लक्ष्मीकूं हेय जानै है ताकी बांछा ही न करै है. जो पुण्यका उदयतैं मिलै तौ मिलौ, न मिलै तौ मति मिलौ, मोक्षहीके साधनेकी भावना करै है. तातैं संसारीक देवादिककूं काहेकूं पूजै वन्दै ? कदाचित् नाहीं पूजै वन्दै ।

आगैं सम्यग्दृष्टीकै विचार होय सो कहै हैं,—

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥ ३२१ ॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥ ३२२ ॥

यत् यस्य यस्मिन् देशे येन विधानेन यस्मिन् काले ।
ज्ञातं जिनेन नियतं जन्म वा अथवा मरणं वा ॥ ३२१ ॥
तत् तस्य तस्मिन् देशे तेन विधानेन तस्मिन् काले ।
कः शक्नोति चालयितुं इन्द्रः वा अथ जिनेन्द्रः वा ॥ ३२२ ॥

भावार्थ—जो जिस जीवकै जिस देशविषैं जिस कालविषैं जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दरिद्र आदि सर्वज्ञ देवनैं जाण्या है जो ऐसैं ही नियमकरि होयगा, सो ही तिस प्राणीकै तिस ही देशमैं तिस ही कालमैं तिस ही विधानकरि नियमतैं होय है. ताकूं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है. भावार्थ—सर्वज्ञ देव सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अवस्था जाणै है. सो जो सर्वज्ञके ज्ञानमैं प्रतिभास्या है सो नियमकरि होय है तामैं अधिक हीन किछू होता नाहीं ऐसैं सम्यग्दृष्टी विचारै है ।

आगैं ऐसैं तौ सम्यग्दृष्टी है अर यामैं संशय करै सो मिथ्यादृष्टी है ऐसैं कहै हैं,—

एवं जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥ ३२३ ॥

एवं यः निश्चयतः जानाति द्रव्याणि सर्वपर्यायान् ।
सः सद्दृष्टिः शुद्धः यः शङ्कते सः स्फुटं कुदृष्टिः ॥ ३२३ ॥

भावार्थ—या प्रकार निश्चयतैं सर्व द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनिकूं, बहुरि इनि द्रव्यनिकी सर्व पर्यायनिकूं सर्वज्ञके आगमके अनुसार

जाणै है श्रद्धान करै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि ऐसैं श्रद्धान न करै शंका संदेह करै है सो सर्वज्ञके आगमतैं प्रतिकूल है प्रगटपणैं मिथ्यादृष्टी है।

आगें कहै हैं जो विशेष तत्त्वकूं नाहीं जानै है अर जिनवचनविषै आज्ञा मात्र श्रद्धान करै है सो भी श्रद्धावान कहिये है,—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं ।
जं जिणवरेहिं भणियं तं सव्वमहं समिच्छामि ॥ ३२४ ॥

यः न अपि जानाति तत्त्वं सः जिनवचने करोति श्रद्धानं ।
यत् जिनवरैः भणितं तत् सर्वं अहं समिच्छामि ॥ ३२४ ॥

भावार्थ—जो जीव अपने ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपशम विना तथा विशिष्ट गुरुके संयोगविना तत्त्वार्थकूं नाहीं जान सकै है सो जीव जिनवचनविषै ऐसैं श्रद्धान करै है जो जिनेश्वर देवनै जो तत्त्व कह्या है, सो सर्व ही मैं भले प्रकार इष्ट करूं हूं ऐसे भी श्रद्धावान् होय है. भावार्थ—जो जिनेश्वरके वचनकी श्रद्धा करै है. जो सर्वज्ञ देवने कह्या है सो सर्व मेरे इष्ट है. ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है।

आगें सम्यक्त्वका माहात्म्य तीन गाथाकरि कहै हैं,—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥ ३२५ ॥

रत्नानां महारत्नं सर्व्वयोगानां उत्तमं योगं ।
ऋद्धीनां महर्द्धिः सम्यक्त्वं सर्वसिद्धिकरं ॥ ३२५ ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व है सो रत्ननिविषैं तौ महारत्न है बहुरि सर्व योग कहिये वस्तुकी सिद्धि करनेके उपाय, मंत्र, ध्यान आदिक तिनिमें उत्तम योग है जातें सम्यक्त्वतें मोक्ष सधै है. बहुरि अणिमादिक ऋद्धि हैं तिनिमें बडी ऋद्धि है. बहुत कहा कहिये सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है।

सम्मत्तगुणप्पहाणो देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ॥३२६॥

सम्यक्त्वगुणप्रधानः देवेन्द्रनरेन्द्रवन्दितः भवति ।
त्यक्तव्रतः अपि च प्राप्नोति स्वर्गसुखं उत्तमं विविधं ॥ ३२६ ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व गुणकरि सहित जो पुरुष प्रधान है सो देवनिके इन्द्रनिकरि तथा मनुष्यनिके इन्द्र चक्रवर्त्यादिकरि वन्दनीय हो है. बहुरि व्रतरहित

होय तौऊ उत्तम नाना प्रकारके स्वर्गके सुख पावै हैं. भावार्थ—जामैं सम्यक्त्व गुण होय सो प्रधान पुरुष है देवेन्द्रादिककरि पूज्य होय है. बहुरि सम्यक्त्वमैं देवहीकी आयु बांधै है तातैं व्रतरहितकै भी स्वर्गहीका जाना मुख्य कह्या है. बहुरि सम्यक्त्वगुणप्रधानका ऐसा भी अर्थ होय है जो सम्यक्त्व पच्चीस मल दोषनितैं रहित होय अपने निःशङ्कित आदि गुणनिकरि सहित होय तथा संवेगादि गुणनिकरि सहित होय ऐसैं सम्यक्त्वके गुणनिकरि प्रधान पुरुष होय सो देवेन्द्रादिकरि पूज्य होय है अर स्वर्गकूं प्राप्त होय है।

सम्माइट्ठी जीवो दुग्गइहेदुं ण वंधदे कम्मं।
जं बहुभवेसु वद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि॥ ३२७॥

सम्यग्दृष्टिर्जीवः दुर्गतिहेतुं न बध्नाति कर्म।
यत् बहुभवेषु बद्धं दुष्कर्म तत् अपि नाशयति॥ ३२७॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव है सो दुर्गतिका कारण जो अशुभ कर्म ताकूं नाहीं बांधै है. बहुरि जो पापकर्म पूर्वै बहुत भवनिविषै बांध्या है तिसका भी नाश करै है. भावार्थ—सम्यग्दृष्टी मरणकरि द्वितीयादिक नरक जाय नाहीं. ज्योतिष व्यंतर भवनवासी देव होय नाहीं. स्त्री उपजै नाहीं. पांच थावर विकलत्रय असैनी निगोद म्लेच्छ कुभोगभूमि इनिविषै उपजै नाहीं. जातैं याकै अनन्तानुबंधीके उदयके अभावतैं दुर्गतिके कारण कषायनिके स्थानकरूप परिणाम नाहीं है. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो तीन काल तीन लोकविषै सम्यक्त्व समान कल्याणरूप अन्य पदार्थ नाहीं है. बहुरि मिथ्यात्व समान शत्रु नाहीं है. तातैं श्रीगुरुनिका यह उपदेश है जो अपना सर्वस्व उद्यम उपाय यत्नकरि मिथ्यात्वका नाशकरि सम्यक्त्व अंगीकार करना. ऐसैं गृहस्थधर्मके बारह भेदनिमैं पहला भेद सम्यक्त्व सहितपणा है ताका निरूपण कीया।

आगैं ग्यारह भेद प्रतिमाके हैं तिनिका स्वरूप कहै हैं तहां प्रथम ही दार्शनिक नामा श्रावककूं कहै हैं,—

बहुतससमण्णिदं जं मज्जं मंसादिणिंदिदं दव्वं।
जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि॥ ३२८॥

बहुत्रससमन्वितं यत् मद्यमांसादिनिन्दितं द्रव्यं।
यः न च सेवते नियमात् सः दर्शनश्रावकः भवति॥ ३२८॥

भाषार्थ—बहुत त्रस जीवनिके घातकरि तथा तिनिकरि सहित जो मदिरा तथा

अति निन्दनीक जो मांस आदि द्रव्य तिनिकूं जो नियमतैं न सेवै भक्षण न करै सो दार्शनिक श्रावक है. भावार्थ–मदिरा अर मांस अर आदि शब्दतैं मधु अर पंच उदंबर फल ए वस्तु बहुत त्रस जीवनिके घातकरि सहित हैं तातैं दार्शनिक श्रावक है सो तिनिकूं भक्षण न करै मद्य तौ मनकूं मोहै है तब धर्मकूं भूलै है. बहुरि मांस त्रस घातविना होय ही नाहीं. मधुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है त्रस घातका ठिकाणा ही है. बहुरि पीपल बड़ पीलू फलनिमें प्रत्यक्ष त्रस जीव उड़ते देखिये हैं अन्य ग्रंथनिमें कह्या है जो ए श्रावकके आठ मूल गुण हैं अर इनिकूं त्रस हिंसाके उपलक्षण कहे हैं तातैं जिनि वस्तुनिमें त्रसहिंसा बहुत होय ते श्रावककै अभक्ष हैं. तातैं भक्षणैं योग्य नाहीं. तथा मात विसन अन्याय प्रवृत्तिका मूल है तिनिका भी त्याग इहां कह्या है. जूवा मांस मद वेश्या सिकार चोरी परस्त्री ए सात व्यसन कहे हैं. सो व्यसन नाम आपदा वा कष्टका है सो इनिके सेवनहारेकू आपदा आवै है राज पंचनिका दंडयोग्य होय है तथा तिनिका सेवन भी आपदा वा कष्टरूप है श्रावक ऐसे अन्याय कार्य करै नाहीं. इहां दर्शन नाम सम्यक्त्वका है तथा धर्मकी मूर्त्ति सर्वके देखनेमें आवै ताका भी नाम दर्शन है. सो सम्यग्दृष्टी होय जिनमतकूं सेवै अर अभक्ष अन्याय अंगीकार करै तौ सम्यक्त्वकूं तथा जिनमतकूं लजावै मलिन करै तातैं इनिकूं नियमकरि छोडे ही दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक होय है।

दिढचित्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो ।
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ॥ ३२९ ॥

दृढचित्तः यः करोति एवं अपि व्रतं निदानपरिहीनः ।
वैराग्यभावितमनाः सः अपि च दर्शनगुणः भवति ॥ ३२९. ॥

भाषार्थ–ऐसे व्रतकूं दृढचित्त हूवा संता निदान कहिये इह लोक परलोकनिके भोगनिकी वांछा ताकरि रहित हूवा संता वैराग्यकरि भावित (आला) है चित्त जाका, ऐसा हूवा संता जो सम्यग्दृष्टी पुरुष करै है सो दर्शनीक श्रावक कहिये है. भावार्थ–पहली गाथामें श्रावक कह्या ताके ए तीन विशेषण और जानने. प्रथम तौ दृढचित्त होय परीषह आदि कष्ट आवै तो व्रतकी प्रतिज्ञातैं चिगै नाहीं, बहुरि निदानकरि रहित होय अर इस लोकसम्बन्धी जस सुख संपत्ति वा परलोकसम्बन्धी शुभगतिकी वांछा रहित वैराग्य, भावनाकरि चित्त जाका आला कहिये सींच्या होय, अभक्ष अन्यायकूं अत्यन्त अनर्थ जाणि त्याग करै ऐसा नाहीं जो शास्त्रमें त्यागने योग्य कहे तातैं छोडने, परिणाममें राग

मिटै नाहीं त्यागके अनेक आशय होय हैं सो याकै अन्य आशय नाहीं केवल तीव्र कषायके निमित्त महापाप जानि त्यागै है इनिकूं त्यागे ही आगामी प्रतिमाके उपदेशयोग्य होय है. व्रती निःशल्य कह्या है सो शल्यरहित त्याग होय है ऐसें दर्शनप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप कह्या ।

आगें दूजी व्रतप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

पंचाणुव्वयधारी गुणवयसिक्खावएहिं संजुत्तो ।
दिढचित्तो समजुत्तो णाणी वयसावओ होदि ॥ ३३० ॥

पञ्चाणुव्रतधारी गुणव्रतशिक्षाव्रतैः संयुक्तः ।
दृढचित्तः समयुक्तः ज्ञानी व्रतश्रावकः भवति ॥ ३३० ॥

भाषार्थ-जो पंच अणुव्रतका धारी होय बहुरि गुणव्रत तीन अर शिक्षाव्रत च्यारि इनिकरि संयुक्त होय बहुरि दृढचित्त होय बहुरि समभावकरि युक्त होय बहुरि ज्ञानवान होय सो व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक है. **भावार्थ**-इहां अणु शब्द अल्पका वाचक है जो पंच पापमें स्थूल पाप हैं तिनिका त्याग है. तातैं अणुव्रत संज्ञा है. बहुरि गुणव्रत अर शिक्षाव्रत तिनि अणुव्रतनिकी रक्षा करनहार हैं तातैं अणुव्रती तिनिकूं भी धारै है. याकै प्रतिज्ञा व्रतकी है सो दृढ चित्त है कष्ट उपसर्ग परीषह आये सिथल न होय है. बहुरि अप्रत्याख्यानावरण कषायके अभावतैं ये व्रत होय हैं; अर प्रत्याख्यानावरण कषायके मंद उदयतैं होय हैं. तातैं उपशमभाव सहितपणा विशेषण कीया है. यद्यपि दर्शनप्रतिमाधारीके भी अप्रत्याख्यानावरणका अभाव तो भया है. परन्तु प्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र स्थानकनिके उदयतैं अतीचार रहित पंच अणुव्रत होय नाहीं तातैं अणुव्रतसंज्ञा नाहीं आवै है अर स्थूल अपेक्षा अणुव्रत ताकै भी त्रसका भक्षणका त्यागतैं अणुत्व है व्यसननिमैं चोरीका त्याग है सो असत्य भी यामैं गर्भित है परस्त्रीका त्याग है वैराग्य भावना है तातैं परिग्रहके भी मूर्छाके स्थानक टते हैं परिमाण भी करै है परन्तु निरतिचार नाहीं होय. तातैं व्रतप्रतिमा नाम पावै है. बहुरि ज्ञानी विशेषण है सो युक्त ही है सम्यग्दृष्टी होय करि व्रतका रूप जाणि गुरुनिकी दीई प्रतिज्ञा लै है सो ज्ञानी ही होय है, ऐसें जानना ।

आगें पंच अणुव्रतमें पहला अणुव्रत कहै हैं,—

जो वावरेइ सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो ।
णिंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभे ॥ ३३१ ॥

तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहिं णेवकारयदि ।
कुव्वंतं पि ण इच्छदि पढमवयं जायदे तस्स ॥ ३३२ ॥

यः व्यावृणोति सदयः आत्मना समं परं अपि मन्यमानः ।
निन्दनगर्हणयुक्तः परिहरमाणः महारम्भान् ॥ ३३१ ॥
त्रसघातं यः न करोति मनोवचनकायैः नैव कारयति ।
कुर्वन्तं अपि न इच्छति प्रथमव्रतं जायते तस्य ॥ ३३२ ॥

भावार्थ–जो श्रावक त्रस जीव वेन्द्रिय तेन्द्रिय चौन्द्रिय पंचेन्द्रियका घात मन वचन कायकरि आप करै नाहीं परके पास करावै नाहीं अर परकूं करताकूं इष्ट (भला)न मानैं ताकै प्रथम अहिंसा नामा अणुव्रत होय है. सो कैसा है श्रावक ? दयासहित तौ व्यापार कार्यमें प्रवर्त्तै है अर सर्व प्राणीकूं आप समान मानता है. बहुरि व्यापारादि कार्यनिमें हिंसा होय है ताकी अपने मनविषै अपनी निंदा करै है. अर गुरुनि पास अपना पापकूं कहै है सो गर्हाकरि युक्त है. जो पाप लगै है ताका गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित लेहै. बहुरि जिनिमें त्रस हिंसा बहुत होती होय ऐसे बडे व्यापार आदिके कार्य महा आरंभ तिनिकूं छोडता संता प्रवर्त्तै है. भावार्थ–त्रस घात आप करै नाहीं. पर पासि करावै नाहीं करतेकूं भला जानै नाहीं. पर जीवकूं आप समान जानै तब परघात करै नाहीं. बहुरि बडे आरंभ जिनिमें त्रस घात बहुत होय ते छोडै अर अल्प आरंभमें त्रस घात होय तिसमें आपकी निन्दा गर्हा करै आलोचन प्रतिक्रमणादि प्रायश्चित्त करै. बहुरि इनिके अतीचार अन्य ग्रन्थनिमें कहे हैं तिनिकूं टालै. इहां गाथामें अन्य जीवकूं आप समान जानना कह्या है तामें अतीचार टलना भी आय गया. परके वध बन्धन अतिभारारोपण अन्नपाननिरोधमें दुःख होय है सो आप समान परकूं जानै तब काहेकूं करै ।

आगें दूसरा अणुव्रतकूं कहै हैं,—

हिंसावयणं ण वयदि कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि ।
णिठ्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झवयणं पि ॥ ३३३ ॥
हिदमिदवयणं भासदि संतोसकरं तु सव्वजीवाणं ।
धम्मपयासणवयणं अणुव्वई हवदि सो विदिओ ॥ ३३४

हिंसावचनं न वदति कर्कशवचनं अपि यः न भाषते ।
निष्ठुरवचनं अपि तथा न भाषते गुह्यवचनं अपि ॥ ३३३ ॥

हितमितवचनं भाषते सन्तोषकरं तु सर्वजीवानां ।
धर्म्मप्रकाशनवचनं अणुव्रती भवति सः द्वितीयः ॥ ३३४ ॥

भाषार्थ–जो हिंसाका वचन न कहै बहुरि कर्कश वचन न कहै बहुरि निष्ठुर वचन न कहै बहुरि परका गुह्य वचन न कहै. तौ कैसा वचन कहै परके हितरूप तथा प्रमाणरूप वचन कहै. बहुरि सर्व जीवनिकै सन्तोषका करनहारा वचन कहै. बहुरि धर्मका प्रकाशनहारा वचन कहै सो पुरुष दूसरा अणुव्रतका धारी होय है. **भावार्थ**–असत्य वचन अनेक प्रकार हैं. तहां सर्वथा त्याग तौ सकल चारित्री मुनिकै होय है अर अणुव्रतमें स्थूलका ही त्याग है. सो जिस वचनतैं परजीवका घात होय ऐसा तौ हिंसाका वचन न कहै. बहुरि जो वचन परकूं कडवा लागै सुणतें ही क्रोधादिक उपजै ऐसा कर्कश वचन न कहै. बहुरि परकै उद्वेग उपजि आवै, भय उपजि आवे, शोक उपजि आवै कलह उपजि आवै ऐसा निष्ठुरवचन न कहै. बहुरि परके गोप्य मर्मका प्रकाश करनेवाला वचन न कहै. उपलक्षणतें और भी ऐसे जामें परका बुरा होय सो वचन न कहै. बहुरि कहै तौ हितमित वचन कहै सर्व जीवनिकै संतोष उपजै ऐसा कहै. बहुरि धर्मका जातें प्रकाश होय ऐसा कहै. बहुरि याके अतीचार अन्य ग्रंथनिमें कहे हैं जो मिथ्या उपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया न्यासापहार साकारमन्त्रभेद सो गाथामें विशेषण कीये तिनितैं सर्व गर्भित भये. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो जातें परजीवका बुरा होय जाय अपने उपरि आपदा आवै तथा वृथा प्रलाप वचनतें अपने प्रमाद बढ़ै ऐसा स्थूल असत्य वचन अणुव्रती कहै नाहीं. परपासि कहावै नाहीं. कहनेवालेकूं भला न जानै ताकै दूसरा अणुव्रत होय है ।

आगें तीसरा अणुव्रतकूं कहै हैं,—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिह्णेदि ।
वीसरियं पि ण गिह्णदि लाभे थूये हि तूसेदि ॥ ३३५॥
जो परदव्वं ण हरइ मायालोहेण कोहमाणेण ।
दिढचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ ॥ ३३६ ॥

यः बहुमूल्यं वस्तु अल्पमूल्येन नैव गृह्णाति ।
विस्मृतं अपि न गृह्णाति लाभे स्तोके हि तुष्यति ॥ ३३५ ॥
यः परद्रव्यं न हरति मायालोभेन क्रोधमानेन ।
दृढचित्तः शुद्धमतिः अणुव्रती सः भवेत् तृतीयः ॥ ३३६ ॥

भावार्थ–जो श्रावक बहु मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि न ले, बहुरि कपटकरि लोभकरि क्रोधकरि मानकरि परका द्रव्य न ले. सो तीसरा अणुव्रत धारी श्रावक होय है. सो कैसा है ? दृढ है चित्त जाका, कारण पाय प्रतिज्ञा विगाड़ै नाहीं बहुरि शुद्ध है उज्वल है बुद्धिजाकी. भावार्थ–सातव्यसनके त्यागमें चोरीका त्याग तौ किया ही है तामें इहां यह विशेष जो बहु मोलकी वस्तु अल्प मोलमें लेनेमें भी झगड़ा उपजै है न जाणिये है कौन कारणतैं पैला अल्पमें दे है बहुरि परकी भूली वस्तु तथा मार्गमें पड़ी वस्तु भी न ले, यह न जाणै तौ पैला न जाणै ताका डर कहा? बहुरि व्यापारमें थोड़े ही लाभ वा नफाकरि सन्तोष करै, बहुत लालच लोभतैं अनर्थ उपजै है. बहुरि कपट प्रपंचकरि काहूका धन ले नहीं. कोईनें आपके पास धस्या होय तौ ताकूं न देनेंके भाव राखै नाहीं. बहुरि लोभकरि तथा क्रोधकरि परका धन खोसि न ले तथा मानतैं खोसि न ले तथा मानकरि कहै हम बडे जोरावर हैं लीया तौ लीया. ऐसें परका धन ले नहीं. ऐसें ही परकूं लिवावै नाहीं. ऐसें लेतेकूं भला जाणै नाहीं. बहुरि अन्य ग्रन्थनिमें याके पांच अतीचार कहे हैं. चोरकूं चोरीके अर्थ प्रेरणा करणा. तिसका ल्याया धन लेना, राज्यतैं विरुद्ध होय सो कार्य करना, व्योपारके तोल बाट हीनाधिक राखणे, अल्पमोलकी वस्तुकूं बहु मोलकी दिखाय ताका व्योहार करना. ए पांच अतीचार हैं सो गाथामें विशेषण कीये तिनिमें आय गये. ऐसें निरतिचार स्तेयत्यागव्रतकूं पालै सो तीसरा अणुव्रतका धारी श्रावक होय है ।

आगें ब्रह्मचर्य्यव्रतका व्याख्यान करै हैं,—

असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
रूवं लावण्णं पि य मणमोहणकारणं मुणइ ॥ ३३७ ॥
जो मण्णदि परमहिलं जणणीवहणीसुआइसारित्थं ।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो ॥ ३३८ ॥

अशुचिमयं दुर्गन्धं महिलादेहं विरक्तमान यः ।
रूपं लावण्यं अपि च मनोमोहनकारणं मन्यते ॥ ३३७ ॥
यः मन्यते परमहिलां जननी भगिनीसुतादिसदृशां ।
मनसा वचनेन कायेन अपि ब्रह्मव्रती सः भवेत् स्थूलः ॥ ३३८ ॥

भावार्थ–जो श्रावक स्त्रीकी देहकूं अशुचिमयी दुर्गंध जाणतो संतो तथा ताका रूप लावण्य ताकूं भी मनकेविषै मोह उपजावनेकूं कारण जाणै है यातैं

१ 'विरज्जमाणो' विरक्तिगच्छन् ऐसा भी पाठ है ।

विरक्त हुवा संता प्रवर्त्तै है बहुरि जो परस्त्रीकूं बडी माताकूं सारिखी, बराबरि-कीकूं बहणसारिखी, छोटीकूं बेटीसारिखी, मनवचनकायकरि जो जाणै है सो स्थूल ब्रह्मचर्यका धारक श्रावक है. परस्त्रीका तौ मनवचनकायकृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै अर स्वस्त्रीकेविषै संतोष करै. तीव्रकामके विनोद क्रीड़ारूप न प्रवर्त्तै. जातैं स्त्रीके शरीरकूं अपवित्र दुर्गंध जाणि वैराग्य भावनारूप भाव राखै. अर कामकी तीव्र वेदना इस स्त्रीके निमित्ततैं होय है ताकै रूपलावण्य आदि चेष्टाकूं मनके मोहनेकूं ज्ञानके भुलावनेकूं कामके उपजावनेकूं कारण जाणि विरक्त रहै सो चतुर्थ अणुव्रतका धारी होय है. बहुरि याके अतीचार परविवाह करणा, परकी परणी विनापरणी स्त्रीका संसर्ग, कामकी क्रीड़ा, कामका तीव्र अभिप्राय, ए कह्या है. ते स्त्रीका देहतैं विरक्त रहना इस विशेषणमैं आय गये. परस्त्रीका त्याग तौ पहली प्रतिमामैं सात व्यसनके त्यागमैं आय गया, इहां अति तीव्र कामकी वासनाका भी त्याग है. तातैं अतीचार रहित व्रत पलै है. अपनी स्त्रीकेविषै भी तीव्रपणा नाहीं होय है. ऐसैं ब्रह्मचर्य व्रतका कथन कीया।

अब परिग्रहपरिमाण पांचमा अणुव्रतका कथन करै हैं,—

जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो।
णिहणदि तिह्णा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं॥ ३३९॥
जो परिमाणं कुव्वदि धणधाणसुवण्णखित्तमाईणं।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स॥ ३४०॥

यः लोभं निहत्य सन्तोषरसायनेन सन्तुष्टः।
निहन्ति तृष्णाः दुष्टाः मन्यमानः विनश्वरं सर्वं॥ ३३९॥
यः परिमाणं करोति धन्यधान्यसुवर्णक्षेत्रादीनां।
उपयोगं ज्ञात्वा अणुव्रतं पञ्चमं तस्य॥ ३४०॥

भावार्थ—जो पुरुष लोभ कषायकूं हीनकरि संतोषरूप रसायणकरि संतुष्ट हुवा संता सर्व धन धान्यादि परिग्रहकूं विनाशीक मानता संता दुष्ट तृष्णाकूं अतिशयकरि हणै है. बहुरि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रहका अपना उपयोग सामर्थ्य जाणि कार्यविशेष जाणि तिसके अनुसार परिमाण करै है ताकै पांचमा अणुव्रत होय है. अंतरंगका परिग्रह तौ लोभ तृष्णा है ताकूं क्षीण करै अर बाह्यका परिग्रहका परिमाण करै अर दृढचित्तकरि प्रतिज्ञाभंग न करै सो अतिचाररहित पंचम अणुव्रती होय है. ऐसैं पांच अणुव्रत निरतिचार पालै सो व्रत प्रतिमाधारी श्रावक है ऐसैं पांच अणुव्रतका व्याख्यान कीया।

अब इनि व्रतनिकी रक्षा करनेवाले सात शील हैं तिनिका व्याख्यान करैं हैं तिनिमैं पहलैं तीन गुणव्रत हैं तामैं पहला गुणव्रतकूं कहै हैं,—

जह लोहणासणट्ठं संगपमाणं हवेइ जीवस्स।
सव्वं दिसिसु पमाणं तह लोहं णासए णियमा ॥३४१॥
जं परिमाणं कीरदि दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं।
उवओगं जाणित्ता गुणव्वयं जाण तं पढमं ॥ ३४२ ॥

यथा लोभनाशनार्थं सङ्गप्रमाणं भवेत् जीवस्य।
सर्वासु दिक्षु प्रमाणं तथा लोभं नाशयेत् नियमात् ॥ ३४१ ॥
यत् परिमाणं क्रियते दिशानां सर्वासां सुप्रसिद्धानां।
उपयोगं ज्ञात्वा गुणव्रतं जानीहि तत् प्रथमं ॥ ३४२ ॥

भावार्थ—जैसें लोभके नाश करनेके अर्थ जीवके परिग्रहका परिमाण होय है तैसें सर्व दिशानिविषै परिमाण कीया हूवा भी नियमतैं लोभका नाश करै है. तातैं जे सर्व ही जे पूर्व आदि प्रसिद्ध दश दिशा तिनिका अपना उपयोग प्रयोजन कार्य जाणिकरि परिमाण करै है सो पहला गुणव्रत है. पहलैं पांच अणुव्रत कहे तिनिका ए गुणव्रत उपकारी है. इहां गुण शब्द उपकार वाचक लेणा सो लोभके नाश करनेकूं जैसें परिग्रहका परिमाण करै तैसें ही लोभके नाश करनेकूं भी दिशाका परिमाण करै. जहां ताईं परिमाण कीया ताके परैं जो द्रव्य आदिकी प्राप्ति होती होय तौऊ तहां जाय नाहीं. ऐसें लोभ घट्या. बहुरि हिंसाका पापभी परिमाण परैं न जानेतैं तहां सम्बन्धी न लागै, तब तिस सम्बन्धी महाव्रत तुल्य भया।

अब दूसरा गुणव्रत अनर्थदंड विरतिकूं कहै हैं,—

कज्जं किंपि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो।
सो खलु हवे अणत्थो पंचपयारो वि सो विविहो ॥ ३४३ ॥

कार्यं किमपि न साधयति नित्यं पापं करोति यः अर्थः।
सः खलु भवेत् अनर्थः पञ्चप्रकारः अपि सः विविधः ॥ ३४३ ॥

भावार्थ—जो कार्य प्रयोजन तौ अपना किछू साधै नाहीं अर केवल पापहीकूं उपजावै ऐसा कार्य होय ताकूं अनर्थ कहिये. सो पांच प्रकार है तथा अनेक प्रकार भी है. **भावार्थ**—निःप्रयोजन पाप लगावै सो अनर्थदंड है सो पांच प्रकार

करि कहै हैं. अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसाप्रदान, दुःश्रुतिश्रवणादि बहुरि अनेक प्रकार भी है।

अब प्रथम भेदकूं कहै हैं,—

परदोसाणं गहणं परलच्छीणं समीहणं जं च।
परइत्थीआलोओ परकलहालोयणं पढमं ॥ ३४४ ॥

परदोषाणां ग्रहणं परलक्ष्मीनां समीहनं यत च।
परस्त्री आलोकः परकलहालोकनं प्रथमं ॥ ३४४ ॥

भाषार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करना परकी लक्ष्मी धन सम्पदाकी बांछा करना परकी स्त्रीकूं रागसहित देखना परकी कलहकूं देखना इत्यादिकार्यनिकूं करै सो पहला अनर्थदंड है. **भावार्थ**—परके दोषनिका ग्रहण करनेमें अपने भाव तौ विगड़ैं अर प्रयोजन अपना किछू सिद्ध नाहीं, परका बुरा होय आपकै दुष्टपना ठहरै. बहुरि परकी सम्पदा देखि आप ताकी इच्छा करै तौ आपकै किछू आय जाय नाहीं यामें भी निःप्रयोजन भाव विगड़ै है. बहुरि परकी स्त्रीकूं रागसहित देखनेमें भी आप त्यागी होयकरि निःप्रयोजन भाव काहेकूं विगाड़ै? बहुरि परकी कलहके देखनेमें भी किछू अपना कार्य सधता नहीं. उलटा आपमें भी किछू आफति आय पड़ै है. ऐसें इनिकूं आदि देकरि जिन कार्यनिविषै अपने भाव विगड़ैं तहां अपध्यान नामा पहला अनर्थदंड होय है सो अणुव्रतभंगका कारण है याके छोडे व्रत दृढ रहै हैं।

अब दूजा पापोपदेश नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,—

जो उवएसो दिज्जइ किसिपसुपालणवणिज्जपमुहेसु।
पुरिसित्थीसंजोए अणत्थदंडो हवे विदिओ ॥ ३४५ ॥

यः उपदेशः दीयते कृषिपशुपालनवाणिज्यप्रमुखेषु।
पुरुषस्त्रीसंयोगे अनर्थदण्डः भवेत द्वितीयः ॥ ३४५ ॥

भाषार्थ—जो खेती करना पशुका पालना वाणिज्यकरना इत्यादि पापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्रीका संजोग जैसें होय तैसैं करना इत्यादि कार्यनिका परकूं उपदेश देना इनिका विधान बतावना जामैं किछू अपना प्रयोजन सधै नाहीं केवल पाप ही उपजै सो दूजा पापोपदेश नाम अनर्थदंड है. परकूं पापके उपदेशमैं अपने केवल पाप ही बंधै है. तातैं व्रतभंग होय है तातैं याकूं छोडे उनकी रक्षा है व्रतपरि गुण करै है उपकार करै है तातैं याका नाम गुणव्रत है।

आगें तीसरा प्रमादचरित नाम अनर्थदंडका भेदकूं कहै हैं,—

विहलो जो वावारो पुढवीतोयाण अग्गिपवणाण ।
तह वि वणप्फदिछेओ अणत्थदंडो हवे तिदिओ ॥ ३४६ ॥

विफलः यः व्यापारः पृथ्वीतोयानां अग्निपवनानां ।
तथा अपि वनस्पतिच्छेदः अनर्थदण्डः भवेत् तृतीयः ॥ ३४६ ॥

भाषार्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन इनिके विफल निःप्रयोजन व्यापारमें प्रवृत्ति करना तथा निःप्रयोजन वनस्पति हरतिकायका छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरितनामा अनर्थ दण्ड है. **भावार्थ**—जो प्रमादके वशि होकर पृथिवी जल अग्नि पवन हरितकायकी निःप्रयोजन विराधना करै तहां त्रस थावरनिका घात ही होय अपना कार्य किछू सधै नाहीं तातें याके करनेमें व्रत भंग है. छोडे व्रतकी रक्षा होय है ।

आगें चौथा हिंसादान नामा अनर्थ दंडकूं कहै हैं,

मज्जारपहुदिधरणं आयुधलोहादिविक्कणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं अणत्थदंडो हवे तुरिओ ॥ ३४७ ॥

मार्जारप्रभृतिधरणं आयुधलोहादिविक्रयः यत् च ।
लाक्षाखलादिग्रहणं अनर्थदण्डः भवेत् तुर्यः ॥ ३४७ ॥

भाषार्थ—जो विलाव आदि जो हिंसक जीवांका पालना बहुरि लोहका तथा लोह आदिके आयुधनिका व्योपार करना, देना लेना बहुरि लाख खला आदि शब्दतें विष वस्तु आदिका देना लेना विणज करना यह चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंड है. **भावार्थ**—हिंसक जीवनिका पालन तौ निःप्रयोजन अर पाप प्रसिद्ध ही है. बहुरि बहुत हिंसाके कारण शस्त्र लोह लाख आदिका विणज करणा देना लेना भी करनेमें फल अल्प है. पाप बहुत है । तातें अनर्थदंड ही है यामें प्रवर्त्ते व्रतभंग होय है छोडे व्रतकी रक्षा है ।

आगें दुःश्रुतिनामा पांचमा अनर्थदंडकूं कहै हैं,—

जं सवणं सत्थाणं भंडणवसियरणकामसत्थाणं ।
परदोसाणं च तहा अणत्थदंडो हवे चरमो ॥ ३४८ ॥

यत् श्रवणं शस्त्राणां भण्डणवशीकरणकामशास्त्राणां ।
परदोषाणां च तथा अनर्थदण्डः भवेत् चरमः ॥ ३४८ ॥

भाषार्थ—जो सर्वथा एकान्ती तिनिके भाषे शास्त्र शस्त्रसारिखे दीखैं ऐसें

कुशास्त्र तथा भांडक्रिया हास्य कौतूहलके कथनके शास्त्र तथा वशीकरण मन्त्र-प्रयोगके शास्त्र तथा स्त्रीनिके चेष्टाके वर्णनरूप कामशास्त्र तिनिका सुनना तथा उपलक्षणतें वांचणा सीखना सुनावना भी जानना. बहुरि परके दोषनिकी कथा करना सुनना यह दुःश्रुतिश्रवण नाम अंतका पांचवां अनर्थदंड है. **भावार्थ**-खोटे शास्त्र सुनने वाचने सुनावने रचनेमें किछू प्रयोजन सिद्धि नाहीं. केवल पाप ही होय है अर आजीविका निमित्त भी इनिका व्योहार करणा श्रावककूं योग्य नाहीं. व्योपार आदिकी योग्य आजीविका ही श्रेष्ठ है. जामैं व्रतभंग होय सो काहेकूं करै? व्रतकी रक्षा ही करनी।

आगें इस अनर्थदंडके कथनकूं संकोचै हैं,—

एवं पंचपयारं अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं।
जो परिहरेइ णाणी गुणव्वदी सो हवे विदिओ॥ ३४९॥

एवं पञ्चप्रकारं अनर्थदण्डं दुःखावहं नित्यं।
यः परिहरति ज्ञानी गुणव्रती सः भवेत् द्वितीयः॥ ३४९.॥

भाषार्थ-जो ज्ञानी श्रावक इस प्रकार अनर्थदंडकूं दुःखकरि निरंतर उपजावनहारा जाणि छोडै है सो दूसरा गुणव्रतका धारी श्रावक होय है. **भावार्थ**-यह अनर्थदंडका त्यागनामा गुणव्रत अणुव्रतनिका बड़ा उपकारी है तातें श्रावकनिकूं अवश्य पालना योग्य है।

आगें भोगोपभोगनामा तीसरा गुणव्रतकूं कहै हैं,—

जाणित्ता संपत्ती भोयणतंबोलवत्थमाईणं।
जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स॥ ३५०॥

ज्ञात्वा सम्पत्तीः भोजनताम्बूलवस्त्रादीनां।
यत् परिमाणं करोति भोगोपभोगं व्रतं तस्य॥ ३५०॥

भाषार्थ-जो अपणी सम्पदा सामर्थ्य जाणि अर भोजन तांबूल वस्त्र आदिका परिमाण मर्याद करै तिस श्रावककै भोगोपभोग नाम गुणव्रत होय है. **भावार्थ**-भोग तौ भोजन तांबूल आदि एकबार भोगमैं आवै सो कहिये. बहुरि उपभोग वस्त्र गहणा आदि फेरि फेरि भोगमैं आवै सो कहिये. तिनिका परिमाण यमरूप भी होय है अर नित्य नियमरूप भी होय है सो यथाशक्ति अपनी सामग्रीकूं विचारि यमरूप करि ले तथा नियमरूप भी कहै हैं तिनितैं नित्य काम जाणै तिस अनुसार नियम करै. यह अणुव्रतका बड़ा उपगारी है।

आगें भोगोपभोगकी छती वस्तुकूं छोडै है ताकी प्रशंसा करै है,—

जो परिहरेइ संतं तस्स वयं थुव्वदे सुरिंदेहिं ।
जो मणुलड्डुव भक्खदि तस्स वयं अप्पसिद्धियरं ॥ ३५१ ॥

यः परिहरति संतं तस्य व्रतं स्तूयते सुरेन्द्रैः ।
यः मनोमोदकवत बुभुक्षति तस्य व्रतं अल्पसिद्धिकरं ॥ ३५१ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष छती वस्तुकूं छोडै है ताके व्रतकूं सुरेन्द्र भी सराहै है प्रशंसा करै है बहुरि अणछतीका छोडणा तौ ऐसा है जैसें लाडू तौ होय नाहीं अर संकल्पमात्रमनमें लाडुकी कल्पनाकरि लाडु खाय तैसा है. सो अणछती वस्तु तौ संकल्पमात्र छोडी ताकै यह छोडना व्रत तौ है परन्तु अल्पसिद्धि करनेवाला है. ताका फल थोड़ा है. इहां कोई पूछै भोगोपभोग परिमाणकूं तीसरा गुणव्रत कह्या सो तत्त्वार्थसूत्रविषै तौ तीसरा गुणव्रत देशव्रत कह्या है भोगोपभोग परिमाणकूं तीसरा शिक्षाव्रत कह्या है सो यह कैसें? ताका समाधान जो यह आचार्यनिकी विवक्षाका विचित्रपणा है. स्वामी समंतभद्र आचार्यने भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें इहां कह्या तैसें ही कह्या है सो यामें विरोध नाहीं. इहां तौ अणुव्रतकी उपकारी अपेक्षा लई है अर तहां सचित्त आदि भोग छोडनेकी अपेक्षा मुनिव्रतकी शिक्षा देनेकी अपेक्षा लई है किछु विरोध है नाहीं. ऐसें तीन गुणव्रतका व्याख्यान कीया ।

आगें च्यारि शिक्षाव्रतका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही सामायिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

सामाइयस्स करणे खेत्तं कालं च आसणं विलओ ।
मणवयणकायसुद्धी णायव्वा हुंति सत्तेव ॥ ३५२ ॥

सामायिकस्य करणे क्षेत्रं कालं च आसनं विलयः ।
मनोवचनकायशुद्धिः ज्ञातव्याः भवन्ति सप्त एव ॥ ३५२ ॥

भाषार्थ—पहलै तौ सामायिकके करणेविषै क्षेत्र काल आसन बहुरि लय बहुरि मनवचनकायकी शुद्धता ए सात सामग्री जानने योग्य है. तहां क्षेत्रकूं कहै हैं ।

जत्थ ण कलयलसद्दं बहुजनसंघट्टणं ण जत्थ त्थि ।
जत्थ ण दंसादीया एस पसत्थो हवे देसो ॥ ३५३ ॥

यत्र न कलकलशब्दः बहुजनसङ्घट्टनं न यत्र अस्ति ।
यत्र न दंशादिकाः एषः प्रशस्तः भवेत देशः ॥ ३५३ ॥

ऐसें

भाषार्थ-जहां कलकलाट शब्द नाहीं होय. बहुरि जहां बहुत लोकनिका संघट्ट आवना जावना न होय. बहुरि जहां डांस मच्छर कीड़ी पीपल्या इत्यादि शरीरकूं बाधा करनहारे जीव न होंय, ऐसा क्षेत्र सामायिक करनेकूं योग्य है. भावार्थ-जहां चित्तकूं कोऊ क्षोभ उपजनेके कारण न होंहि तहां सामायिक करना।

अब सामयिकके कालकूं कहे हैं,—

पुव्वह्णे मज्झह्णे अवरह्णे तिहि वि णालियाछक्को ।
सामाइयस्स कालो सविणयणिस्सेसणिद्दिट्ठो ॥ ३५४ ॥

पूर्वाह्णे मध्याह्ने अपराह्णे त्रिषु अपि नालिकाषट्कम् ।
सामायिकस्य कालः सविनयनिःस्वेशनिर्दिष्टः ॥ ३५४ ॥

भाषार्थ-पूर्वाह्ण कहिये प्रभातकाल मध्याह्न कहिये बीचिका दिन अपराह्ण कहिये पाछिला दिन इनि तीनूं कालविषै छह छह घड़ीका काल सामायिकका है. सो यह विनय सहित निःस्व कहिये परिग्रह रहित मुनि तिनिके ईश जो गणधर देव तिनिनें कह्या है. भावार्थ-प्रभात तीन घड़ीका तड़कासूं लगाय तीन घड़ी दिन चढ्यां ताई ऐसें छह घड़ी पूर्वाह्णकाल. दोय पहर पहलां तीन घड़ीतें लगाय पीछें तीन घड़ी ऐसें छह घड़ी मध्याह्नकाल. तीन घड़ी दिनसूं लगाय तीन घड़ी राति ताई ऐसें छह घड़ी अपराह्णकाल. यह सामायिकका उत्कृष्ट काल है. बहुरि दोय घड़ीका भी कह्या है ऐसें तीनूं कालकी छह घड़ी होय है।

अब आसन तथा लय अर मन वचन कायकी शुद्धताकूं कहे हैं,—

बंधित्ता पज्जंकं अहवा उड्ढेण उब्भओ ठिच्चा ।
कालपमाणं किच्चा इंदियवावारवज्जिओ होऊ ॥ ३५५ ॥
जिणवयणेयग्गमणो संपुडकाओ य अंजलिं किच्चा ।
ससरूवे संलीणो वंदणअत्थं वि चिंतित्तो ॥ ३५६ ॥
किच्चा देसपमाणं सव्वं सावज्जवज्जिदो होऊ ।
जो कुव्वदि सामइयं सो मुणिसरिसो हवे सावो ॥ ३५७ ॥

बन्धित्वा पर्य्यङ्कं अथवा ऊर्द्धेन ऊर्द्ध्वः स्थित्वा ।
कालप्रमाणं कृत्वा इन्द्रियव्यापारवर्जितः भूत्वा ॥ ३५५ ॥
जिनवचनैकाग्रमनाः संपुटकायः च अञ्जलिं कृत्वा ।
स्वस्वरूपे संलीनः वन्दनार्थं अपि चिन्तयन् ॥ ३५६ ॥

कृत्वा देशप्रमाणं सर्वसावद्यवर्जितः भूत्वा।
यः करोति सामायिकं सः मुनिसदृशः भवेत् श्रावकः ॥ ३५७ ॥

भावार्थ–जो पर्यंक आसन बांधिकरि अथवा ऊभा खड़ा आसनतैं तिष्ठिकरि, कालका प्रमाणकरि, इन्द्रियनिके व्यापार विषयनिविषै नाहीं होनेके अर्थ जिनवचनकेविषै एकाग्र मनकरि, कायकूं संकोचकरि, हस्तकी अंजलि जोडिकरि, बहुरि अपना स्वरूपविषै लीन हूवा संता अथवा सामायिकका वंदनाका पाठके अर्थकूं चिंतवता संता प्रवर्त्तै, बहुरि क्षेत्रका परिमाणकरि सर्व सावद्ययोग जो गृह व्यापार आदि पापयोग ताके त्यागकरि पापयोगतैं रहित होय सामायिक करै सो श्रावक तिसकाल मुनि सारिखा है. **भावार्थ**–यह शिक्षाव्रत है तहां यह अर्थ सूचै है जो सामायिक है सो सर्व रागद्वेषसूं रहित होय सर्व बाह्यके पापयोग क्रियासूं रहित होय अपने आत्मस्वरूपकेविषै लीन हूवा मुनि प्रवर्त्तै है सो यह सामायिक चारित्र मुनिका धर्म है. सो ही शिक्षा श्रावककूं दीजिये है जो सामायिक कालकी मर्यादकरि तिसकालमैं मुनिकी रीति प्रवर्त्तै जातैं मुनि भये ऐसैं सदा रहना होयगा, इस ही अपेक्षाकरि तिस काल मुनि सारिखा श्रावककूं कह्या है।

आगैं दूसरा शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासकूं कहै हैं,—

ण्हाणविलेवणभूसणइत्थीसंसग्गगंधधूवदीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी वेरग्गभरणभूसणं किच्चा ॥ ३५८ ॥
दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एयभत्तणिव्वियडी ।
जो कुणइ एवमाई तस्स वयं पोसहं विदियं ॥ ३५९ ॥

स्नानविलेपनभूषणस्त्रीसंसर्गगन्धधूपदीपादीन् ।
यः परिहरति ज्ञानी वैराग्यभरणभूषणं कृत्वा ॥ ३५८ ॥
द्वयोः अपि पर्वणोः सदा उपवासं एकभक्तं निर्विकृतिं ।
यः करोति एवमादि तस्य व्रतं प्रोषधं द्वितीयं ॥ ३५९ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी श्रावक एकपक्षविषै दोय पर्व आठैं चौदसिविषै स्नान विलेपन आभूषण स्त्रीका संसर्ग सुगंध धूप दीप आदि भोगोपभोग वस्तुकूं छोडै अर वैराग्य भावना सोई भये आभरण तिसकरि आत्माकूं शोभायमानकरि उपवास तथा एकभक्त तथा नीरस आहार करै तथा आदि शब्दकरि कांजी करै. केवल भात पाणी ही ले. ऐसैं करै ताकै प्रोषधोपव्रत नाम शिक्षाव्रत होय है, **भावार्थ**–जैसैं सामायिक करनेकूं कालका नियमकरि सर्व पापयोगसूं निवृ-

होयकरि एकान्त स्थानक धर्मध्यानकरता संता बैठै. तैसें ही सर्व गृहकार्यकूं त्यागकरि समस्त भोग उपभोग सामग्रीकूं छोडिकरि सातैं तेरसिके दोय पहर दिन पीछैं एकान्त स्थानक बैठै, धर्मध्यान करता संता सोलह पहर ताँई मुनिकी ज्यों रहै, नवमी पूर्णमासीकूं दोयपहरां प्रतिज्ञा पूरण होय, तब गृहकारजनैं लागै. ताकै प्रोषध व्रत होय है. आठैं चौदसिके दिन उपवासकी सामर्थ्य न होय तौ एक बार भोजन करै. तथा नीरस भोजन कांजी आदि अल्प आहार कर ले. समय धर्मध्यानमैं खोवै. सोलह पहर आगें प्रोषध प्रतिमामें कही है. तैसें करै. परन्तु इहां गाथामें न कही तातें सोलह पहरका नियम न जानना. यह भी मुनिव्रतकी शिक्षा ही है।

आगें अतिथिसंविभाग नामक तीसरा शिक्षाव्रत कहै हैं,—

तिविहे पत्तम्मि सया सद्धाइगुणेहिं संजुदो णाणी ।
दाणं जो देदि सयं णवदाणविहीहिं संजुत्तो ॥ ३६० ॥
सिक्खावयं च तदियं तस्स हवे सव्वसोक्खसिद्धियरं ।
दाणं चउव्विहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं ॥ ३६१ ॥

त्रिविधे पात्रे सदा श्रद्धादिगुणैः संयुतः ज्ञानी ।
दानं यः ददाति स्वकं नवदानविधिभिः संयुतः ॥ ३६० ॥
शिक्षाव्रतं च तृतीयं तस्य भवेत् सर्वसौख्यसिद्धिकरं ।
दानं चतुर्विधं अपि च सर्वदानानां सारकरं ॥ ३६१ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी श्रावक उत्तम मध्यम जघन्य तीन प्रकार पात्रनिके निमित्त दाताके श्रद्धा आदि गुणनिकरि युक्त होयकरि अपने हस्तकरि नवधा भक्तिकरि संयुक्त हूवा संता नितप्रति दान देहै, तिस श्रावकके तीसरा शिक्षाव्रत होय है. सो दान कैसा है आहार अभय औषध शास्त्रदानके भेदकरि च्यारि प्रकार है. बहुरि यह अन्य जे लौकिक धनादिकका दान तिनिमें अतिशयकरि सार है, उत्तम है. बहुरि सर्व सिद्धि अर सुखका करनहारा है. भावार्थ—तीन प्रकार पात्रनिमें उत्कृष्ट तौ मुनि, मध्यम अणुव्रती श्रावक, जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी है. बहुरि दातारके सात गुण श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, शक्ति ए सात है तथा अन्य प्रकार भी कहे हैं. इस लोकके फलकी बांछा न करै, क्षमावान् होय, कपट रहित होय, अन्यदातारतें ईर्षा न होय, दीयेका वि-

(१) सव्वसिद्धिसोक्खयर इत्यपि पाठः ।

षाद न करै, दीयेका हर्ष करै, गर्व्व न करै, ऐसैं भी सात कहे हैं. बहुरि प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजनकरणा, प्रणाम करणा, मनकी शुद्धता, वचनकी शुद्धता, कायकी शुद्धता, आहारकी, शुद्धता, ऐसैं नवधा भक्ति है, ऐसैं दातारके गुण सहित पात्रकूं नवधा भक्तिकरि नित्य च्यारि प्रकार दान देहै ताकै तीसरा शिक्षाव्रत होय है. यह भी मुनिपणें की शिक्षाके अर्थ है जो देना सीखै तैसें आपकूं मुनिभये लेना होयगा।

आगें आहार आदि दानका माहात्म्य कहै हैं,—

भोयणदाणेण सोक्खं ओसहदाणेण सत्थदाणं च।
जीवाण अभयदाणं सुदुल्लहं सव्वदाणाणं ॥ ३६२ ॥

भोजनदानेन सौख्यं औषधदानेन शास्त्रदानं च।
जीवानां अभयदानं सुदुर्लभं सर्वदानानाम् ॥ ३६२ ॥

भाषार्थ—भोजन दानकरि सर्वकै सुख होय है. बहुरि औषध दानकरि सहित शास्त्रदान अर जीवनिकूं अभय दान है. सो सर्व दाननिमें दुर्लभ पाइए है उत्तम दान है. **भावार्थ**—इहां अभयदानकूं सर्वतैं श्रेष्ठ कह्या है।

आगें आहारदानकूं प्रधानकरि कहै हैं,—

भोयणदाणे दिण्णे तिण्णि वि दाणाणि होंति दिण्णाणि।
भुक्खतिसाएवाही दिणे दिणे होंति देहीणं ॥ ३६३ ॥
भोयणवलेण साहू सत्थं संवेदि रत्तिदिवहं पि।
भोयणदाणे दिण्णे पाणा वि य रक्खिया होंति ॥ ३६४ ॥

भोजनदाने दत्ते त्रीणि अपि दानानि भवन्ति दत्तानि।
क्षुधातृषाव्याधयः दिने दिने भवन्ति देहिनाम् ॥ ३६३ ॥
भोजनबलेन साधुः शास्त्रं सेवते रात्रिदिवसं अपि।
भोजनदाने दत्ते प्राणाः अपि च रक्षिताः भवन्ति ॥ ३६४ ॥

भाषार्थ—भोजन दान दीयें संतें तीनूं ही दान दीये होय हैं जातैं भूख तृषा नामका रोग प्राणीनिकै दिन दिन प्रति होय है. बहुरि भोजनके बलकरि साधु रात्रि दिन शास्त्रका अभ्यास करै है बहुरि भोजनके देनेकरि प्राणनिकी भी रक्षा होय है. ऐसैं भोजनके दानकरि औषध शास्त्र अभयदान ए तीनूं ही दीये जानने. **भावार्थ**—भूखतृषारोग मेटनेतैं तौ आहारदान ही औषधदान भया आहारके बलतैं शास्त्राभ्यास सुखसूं होनेतैं ज्ञानदान भी एही भया. आहार ही

तैं प्राणांकी रक्षा होय तातैं एही अभयदान भया. ऐसैं आहार दानमैं तीनूं गर्भित भये ।

आगें दानका माहात्म्यहीकूं फेरि कहै हैं,—

इहपरलोयणिरीहो दाणं जो देदि परमभत्तीए ।
रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥ ३६५ ॥
उत्तमपत्तविसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।
एयदिणे वि य दिण्णं इंदसुहं उत्तमं देदि ॥ ३६६ ॥

इहपरलोकनिरीहः दानं यः ददाति परमभक्त्या ।
रत्नत्रयेषु स्थपितः सङ्घः सकलः भवेत् तेन ॥ ३६५ ॥
उत्तमपात्रविशेषे उत्तमभक्त्या उत्तमं दानं ।
एकदिने अपि च दत्तं इन्द्रसुखं उत्तमं ददाति ॥ ३६६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष (श्रावक) इसलोक परलोकके फलकी बांछा रहित हूवा संता परम भक्तिकरि संघके निमित्त दान देहै ता पुरुषनैं सकल संघकूं रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषै स्थाप्या. बहुरि उत्तम पात्रका विशेषके अर्थ उत्तम भक्तिकरि उत्तम दान एक दिन भी दीया हूवा उत्तम इन्द्रपदका सुखकूं देहै. भावार्थ—दानके दीये चतुर्विध संघकी थिरता होय है सो दानके देनेवालेनैं मोक्षमार्ग ही चलाया कहिये. बहुरि उत्तम ही पात्र उत्तम ही दाताकी भक्ति अर उत्तम ही दान सर्व ऐसी विधि मिलै ताका उत्तम ही फल होय है. इन्द्रादिक पदवीका सुख मिलै है ।

आगें चौथा देशावकाशिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

पुव्वपमाणकदाणं सव्वदिसीणं पुणो वि संवरणं ।
इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥ ३६७ ॥
वासादिकयपमाणं दिणे दिणे लोहकामसमणत्थं ।
सावज्जवज्जणट्ठं तस्स चउत्थं वयं होदि ॥ ३६८ ॥

पूर्वप्रमाणकृतानां सर्वदिशानां पुनः अपि संवरणं ।
इन्द्रियविषयाणां तथा पुनः अपि यः करोति संवरणं ॥ ३६७ ॥
वर्षादिकृतप्रमाणं दिने दिने लोभकामशमनार्थं ।
सावद्यवर्जनार्थं तस्य चतुर्थं व्रतं भवति ॥ ३६८ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक पहलै सर्व दिशानिका परिमाण कीया था तिनिका फेरि

संवरण करै, संकोचै, बहुरि तैसैं ही पूर्वैं इन्द्रियनिका विषयनिका परिमाण भोगोपभोग परिमाण कीया था तिनिकूं फेरि संकोचै. कैसैं सो कहै हैं वर्ष आदि तथा दिन दिन प्रति कालकी मर्याद लीये करै. ताका प्रयोजन कहै हैं. अन्तरंग तौ लोभकषाय अर काम कहिये इच्छा ताके समन कहिये घटावनेकै अर्थ तथा बाह्य पाप हिंसादिकके वर्ज्जनेके अर्थ करै, तिस श्रावककै चौथा देशावकाशिक नामा शिक्षाव्रत होय है. **भावार्थ**–पहलै दिग्विरति व्रतमैं मर्यादा करी थी सो तौ नियमरूप थी. अब इहां तिसमें भी कालकी मर्याद लीये घर हाट गांव आदि ताँईकी गमनागमनकी मर्याद करै तथा भोगोपभोग व्रतमैं यमरूप इन्द्रियविषयनिकी मर्यादा करी थी तामैं भी कालकी मर्यादा लीये नियम करै-इहां सतरा नियम कहे हैं तिनिकूं पालै. प्रतिदिन मर्यादा करबो करै. यामें लोभका तथा तृष्णा वांछाका संकोच होय है, बाह्य हिंसादि पापनिकी हाणि होय है. ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहे सो ए च्यारों ही श्रावककूं अणुव्रतके यत्नतैं पालनेका तथा महाव्रतके पालनेकी शिक्षारूप है।

आगें अंतसल्लेखनाकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

वारसवएहिं जुत्तो जो संलेहण करेदि उवसंतो ।
सो सुरसोक्खं पाविय कमेण सोक्खं परं लहदि ॥ ३६९ ॥

द्वादशव्रतैः युक्तः यः सल्लेखनां करोति उपशान्तः ।
सः सुरसौख्यं प्राप्य क्रमेण सौख्यं परं लभते ॥ ३६९ ॥

भाषार्थ–जो श्रावक बारह व्रतनिकरि सहित हूवा अंत समय उपशम भावनिकरि युक्त होय सल्लेखना करै है सो स्वर्गके सुख पायकरि अनुक्रमतें उत्कृष्ट सुख जो मोक्षका सुख सो पावै है. **भावार्थ**–सल्लेखना नाम कषायनिका अर कायके क्षीण करनेका है सो श्रावक बारह व्रत पालै. पीछैं मरणका समय जाणैं तब पहली सावधान होय सर्व वस्तुसूं ममत्व छोडि कषायनिकूं क्षीणकरि उपशम भावरूप मंद कषायरूप होय रहै. अर कायकूं अनुक्रमतें ऊणोदर नीरस आदि तपनिकरि क्षीण करै. पहलै ऐसे कायकूं क्षीण करै तौ शरीरमैं मलके मूत्रके निमित्ततैं जो रोग होय हैं वे रोग न उपजैं. अंतसमैं असावधान न होय. ऐसैं सल्लेखना करै. अंतसमय सावधान होय अपनें स्वरूपमैं तथा अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप चितवनमैं लीन हूवा तथा व्रतरूप संवररूप परिणाम सहित हूवा संता पर्यायकू छोडै तौ स्वर्गके सुखनिकूं पावै. बहुरि तहां भी यह वांछा रहै जो मनुष्य होय व्रत पालूं ऐसैं अनुक्रमतें मोक्ष सुखकी प्राप्ति होय है।

बहुरि व्रतका माहात्म्य कहै हैं,—

एक्कं पि वयं विमलं सद्दिट्ठी जइ कुणदि दिढचित्तो ।
तो विविहरिद्धिजुत्तं इंदत्तं पावए णियमा ॥ ३७० ॥

एकं अपि व्रतं विमलं सदृष्टिः यदि करोति दृढचित्तः ।
तत् विविधर्द्धियुतं इन्द्रत्वं प्राप्नोति नियमात् ॥ ३७० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव दृढचित्त हूवा संता एक भी व्रत अतीचार-रहित निर्मल पालै तौ नानाप्रकारकी ऋद्धिनिकरि युक्त इन्द्रपणा नियमकरि पावै. **भावार्थ**—इहां एक भी व्रत अतीचाररहित पालनेका फल इन्द्रपणा नि-यमकरि कह्या. तहां ऐसा आशय सूचै है जो व्रतनिके पालनेके परिणाम सर्वके समान जाति हैं. जहां एक व्रत दृढचित्तकरि पालै तहां अन्य तिसके समान जातीय व्रत पालनेके अर्थ अविनाभावीपणा है सो सर्व ही व्रत पाले कहे. बहुरि ऐसा भी है जो एक आखड़ी त्यागकूं अंतसमै दृढचित्तकरि पकड़ि ताविषै लीन परिणाम भये मंतै पर्याय छूटै तौ तिसकाल अन्य उपयोगके अभावतें बडा धर्म ध्यानसहित परगतिकूं गमन होय तब उच्चगति ही पावै. यह नियम है. ऐसा आशयतें एक व्रतका ऐसा माहात्म्य कह्या है. इहां ऐसा न जानना जो एक व्रत तौ पालै अर अन्य पाप सेया करै ताका भी ऊंचा फल होय. ऐसैं तौ चोरी छोडै परस्त्री सेयबो करै. हिंसादिक करबो करै ताका भी उच्च फल होय सो ऐसा नाहीं है. ऐसैं दूजी व्रतप्रतिमाका निरूपण कीया. बारह भेदकी अपेक्षा यह तीसरा भेद भया ।

आगै तीजी सामायिकप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

जो कुणइ काउसग्गं बारसआवत्तसंजुदो धीरो ।
णमुणदुगं पि करंतो चदुप्पणामो पसण्णप्पा ॥ ३७१ ॥
चिंतंतो ससरूवं जिणबिंबं अहव अक्खरं परमं ।
ज्झायदि कम्मविवायं तस्स वयं होदि सामइयं ॥ ३७२ ॥

यः करोति कायोत्सर्गं द्वादशावर्तसंयुतः धीरः ।
नमनद्विकं अपि कुर्वन् चतुःप्रणामाः प्रसन्नात्मा ॥ ३७१ ॥
चिन्तयन् स्वस्वरूपं जिनबिम्बं अथवा अक्षरं परमं ।
ध्यायति कर्मविपाकं तस्य व्रतं भवति सामायिकं ॥ ३७२ ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक बारह आवर्त सहित च्यारि प्रणामसहित दोय नमस्कार करता संता प्रसन्न है आत्मा जाका, धीर दृढचित्त हूवा संता

कायोत्सर्ग करै. तहां अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूपकूं ध्यावता चितवन करता संता रहै अथवा जिनबिंबकूं चितवता रहै. अथवा परमेष्ठीके वाचक पंच नमोकारकूं चिंतवता रहै. अथवा कर्मके उदयके रसकी जातिका चिंतवन करता रहै ताकै सामायिक व्रत होय है. भावार्थ–सामायिकका वर्णन तौ पूर्वं शिक्षाव्रतमैं कीया था जो राग द्वेष तजि समभावकरि क्षेत्र काल आसन ध्यान मन वचन कायकी शुद्धताकरि कालकी मर्यादकरि एकान्त स्थानमैं बैठै. सर्व सावद्ययोगका त्यागकरि धर्मध्यानरूप प्रवर्त्तै ऐसैं कह्या था. इहां विशेष कह्या जो कायसूं ममत्व छोडि कायोत्सर्ग करै तहां आदि अंतविषै दोय तौ नमस्कार करै अर च्यारि दिशाके सन्मुख होय च्यारि शिरोनति करै. बहुरि एक एक शिरोनतिके विषै मन वचनकायकी शुद्धताकी सूचना रूप तीन तीन आवर्त्त करै ते बारह आवर्त्त भये. ऐसैं करि कायसूं ममत्व छोडि निज स्वरूपविषै लीन होय जिन प्रतिमासूं उपयोग लीन करै, तथा पंचपरमेष्ठीका वाचक अक्षरनिका ध्यान करै, तथा उपयोग कोई बाधाकी तरफ जाय तौ तहां कर्मके उदयकी जाति चिंतवै. यह साता वेदनीका फल है. यह असाताके उदयकी जाति है. यह अन्तरायके उदयकी जाति है. इत्यादि कर्मके उदयकूं चिंतवै यह विशेष कह्या. बहुरि ऐसा भी विशेष जानना जो शिक्षाव्रतमैं तौ मन वचनकायसंबन्धी कोई अतीचार भी लागै तथा कालकी मर्यादा आदि क्रियामैं हीनाधिक भी होय है. बहुरि इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है सो अतीचार रहित शुद्ध पलै है. उपसर्ग आदिके निमित्ततैं प्रतिज्ञातैं टलै नाहीं है ऐसा जानना. याके पांच अतीचार हैं. मन वचन कायका डुलावणा, अनादर करणा, भूलिजाणा ए अतीचार न लगावै. ऐसैं सामायिक प्रतिमा बारह भेदकी अपेक्षा चौथा भेद भया।

आगें प्रोषधप्रतिमाका भेद कहै हैं,—

सत्तमितेरसिदिवसे अवरह्ने जाइऊण जिणभवणे।
किरियाकम्मं काऊ उववासं चउव्विहं गहिय॥ ३७३॥
गिहवावारं चत्ता रत्तिं गमिऊण धम्मचिंताए।
पच्चूहे उट्ठित्ता किरियाकम्मं च कादूण॥ ३७४॥
सत्थब्भासेण पुणो दिवसं गमिऊण वंदणं किच्चा।
रत्तिं णेदूण तहा पच्चूहे वंदणं किच्चा॥ ३७५॥
पुज्जणविहिं च किच्चा पत्तं गहिऊण णवरि तिविहं पि।
भुंजाविऊण पत्तं भुंजंतो पोसहो होदि॥ ३७६॥

सप्तमित्रयोदशिदिवसे अपराह्णे गत्वा जिनभवने ।
क्रियाकर्म कृत्वा उपवासं चतुर्विधं गृहीत्वा ॥ ३७३ ॥
गृहव्यापारं त्यक्त्वा रात्रिं गमयित्वा धर्मचिन्तया ।
प्रत्यूषे उत्थित्वा क्रियाकर्म च कृत्वा ॥ ३७४ ॥
शास्त्राभ्यासेन पुनः दिवसं गमयित्वा वन्दनां कृत्वा ।
रात्रिं नीत्वा तथा प्रत्यूषे वन्दनां कृत्वा ॥ ३७५ ॥
पूजनविधिं च कृत्वा पात्रं गृहीत्वा नवरित्रिविधं अपि ।
भोजयित्वा पात्रं भुञ्जतः प्रोषधः भवति ॥ ३७६ ॥

भावार्थ–सातैं तेरसिके दिन दोय पहर पाछैं जिन चैत्यालय जाय अपराह्णको सामायिक आदि क्रिया कर्मकरि च्यारि प्रकार आहारका त्यागकरि उपवास ग्रहण करै. गृहका व्योपारकूं समस्तकूं छोडिकरि धर्म ध्यानकरि तेरसि सातैंकी राति गमावै. प्रभात उठिकरि सामायिक क्रिया कर्म करै. आठैं चौदसिका दिन शास्त्राभ्यास धर्म ध्यानकरि गमाय अपराह्णका सामायिक क्रिया कर्म करि राति तैसें ही धर्म ध्यानकरि गमाय नवमी पूर्णमासीकै प्रभात सामायिक वंदनाकरि जिनेश्वरका पूजन विधानकरि तीन प्रकारके पात्रकूं पड़गाहि बहुरि तिस पात्रकूं भोजन कराय आप भोजन करै ताकै प्रोषध होय है. भावार्थ–पहलै शिक्षाव्रतमें प्रोषधकी विधि कही थी, सो भी इहां जाननी. गृहव्यापार भोग उपभोगकी सामग्री समस्तका त्यागकरि एकान्तमें जाय बैठै अर सोलह पहर धर्मध्यानमैं गमावणी. इहां विशेष इतना जो तहां सोलह पहरका कालका नियम नाहीं कह्या था अर अतीचार भी लागै. अर इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है यामैं सोलह पहरका उपवास नियमकरि अतीचार रहित करै है. अर याकै अतीचार पांच हैं. जो वस्तु जिस काल राखी होय तिसका उठावना मेलणा तथा सोवने बैठनेका संथारा करना सो विना देख्या जाण्या, विना यतनतैं करै सो तीन अतीचार तौ ए. अर उपवासकेविषैं अनादर करै, प्रीति नाहीं करै अर क्रिया कर्ममें भूलि जाय ए पांच अतीचार लगावै नाहीं ।

आगें प्रोषधका माहात्म्य कहै हैं,—

एक्कं पि णिरारंभं उववासं जो करेदि उवसंतो ।
बहुविहसंचियकम्मं सो णाणी खवदि लीलाए ॥ ३७७ ॥

एकं अपि निरारम्भं उपवासं यः करोति उपशान्तः ।
बहुविधसञ्चितकर्म सः ज्ञानी क्षिपति लीलया ॥ ३७७ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी आरम्भका त्यागकरि उपशम भाव मंदकषाय·

रूप हूवा संता एक भी उपवास करै है सो बहुत भवमें संचित कीये बांधे जे कर्म, तिनिकूं लीलामात्रमें क्षय करै है. भावार्थ—कषायविषय आहारका त्यागकरि इसलोक परलोकके भोगकी आशा छोडि एक भी उपवास करै सो बहुत कर्मकी निर्जरा करै है तौ जो प्रोषधप्रतिमा अंगीकारकरि पक्षमें दोय उपवास करै ताका कहा कहणा? स्वर्गसुख भोगि मोक्षकूं पावै है।

आगें आरंभ आदिका त्यागविना उपवास करै ताकै कर्मनिर्जरा नाहीं हो है ऐसैं कहै हैं,—

उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो।
सो णियदेहं सोसदि ण झाडए कम्मलेसं पि ॥ ३७८ ॥

उपवासं कुर्वन् आरम्भं यः करोति मोहात्।
सः निजदेहं शुष्यति न उज्झति कर्मलेशं अपि ॥ ३७८ ॥

भाषार्थ—जो उपवास करता संता गृहकार्यके मोहतें गृहका आरंभ करै है सो अपनी देहहीकूं सोखै है कर्म निर्जराका तौ लेसमात्र भी ताकै नाहीं होय है. भावार्थ—जो विषय कषाय छोड्यां विना केवल आहार मात्र ही छोडै है. गृहकार्य समस्त करै है, सो पुरुष देहहीकूं केवल सोखै है ताकै कर्मनिर्जरा लेम मात्र भी नाहीं हो है।

आगें सचित्तत्यागप्रतिमाकूं कहै हैं,—

सच्चित्तं पत्तफलं छल्ली मूलं च किसलयं बीजं।
जो णय भक्खदि णाणी सचित्तविरओ हवे सो वि ॥ ३७९ ॥

सचित्तं पत्रं फलं त्वक् मूलं च किशलयं बीजं।
यः न च खादति ज्ञानी सचित्तविरतः भवेत् सः अपि ॥ ३७९ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक पत्र फल त्वक् छालि मूल कूंपल बीज ए सचित्त **नाहीं भक्षण करै. सो सचित्त विरती** श्रावक कहिये. भावार्थ—जीवकरि सहित होय **ताकूं सचित्त कहिये है. सो** पत्र फल छालि मूल बीज कूंपल इत्यादि हरित वनस्पति **सचित्तकूं न खाय** सो सचित्तविरत प्रतिमाका धारक श्रावक होय है (१)।

(१) उक्तं च गोमट्टसारटीकायां—

सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिललवणेहिं मिस्सियं दव्वं।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥

शुष्कं पक्वं तप्तं अम्ललवणाभ्यां मिश्रितं द्रव्यं।
यत् यन्त्रेण च छिन्नं तत् सर्वं प्राशुकं भणितम् ॥ १ ॥

भावार्थ—सूखाया हुवा, पकाया हुवा, तपाया हुवा, खटाई और लूणसे मिला हुवा तथा जो यन्त्रसे छिन्नभिन्न किया हुवा शोधाहुवा हो ऐसा सब हरितकाय प्राशुक कहिये जीवरहित अचित्त होता है.

जो ण य भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाउं ।
भुत्तस्स भोजिदस्सहि णत्थि विसेसो तदो को वि ॥ ३८० ॥

य: न च भक्षयति स्वयं तस्य न अन्यस्मै युज्यते दातुं ।
भुक्तस्य भोजयिष्यतः हि नास्ति विशेषः ततः कः अपि ॥ ३८० ॥

भावार्थ–बहुरि जो वस्तु आप न भखै ताकूं अन्यकूं देना योग्य नाहीं है जातैं खानेवाले अर खुवावनें वालेमें किछू विशेष नाहीं है कृतका अर कारितका फल समान है. तातैं जो वस्तु आप न खाय सो अन्यकूं भी न खुवाइये तब सचित्त त्याग व्रत पलै ।

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जय जीहा वि णिज्जिया तेण ।
दयभावो होदि किओ जिणवयणं पालियं तेण ॥ ३८१ ॥

यः वर्जयति सचित्तं दुर्जया जिह्वा अपि निर्जिता तेन ।
दयाभाव भवति कृतः जिनवचनं पालितं तेन ॥ ३८१ ॥

भावार्थ–जो श्रावक सचित्तका त्याग करै है तिसनें जिह्वा इन्द्रियका जीतना कठिन सो भी जीती, बहुरि दयाभाव प्रगट कीया, बहुरि जिनेश्वर देवके वचन पाले. **भावार्थ**–सचित्तका त्यागमें बडे गुण हैं. जिह्वा इन्द्रियका जीतना होय है. प्राणीनिकी दया पलै है. बहुरि भगवानके वचन पलै हैं, जातैं हरित कायादिक सचित्तमें भगवाननें जीव कहे हैं सो आज्ञा पालना भया. याका अतीचार जो सचित्ततें मिली वस्तु तथा सचित्ततें बंध संबंधरूप इत्यादिक हैं ते अतीचार लगावै नाहीं तब शुद्ध त्याग होय. तब प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होय है. भोगोपभोग व्रतमें तथा देशावकाशिक व्रतमें भी सचित्तका त्याग कह्या है परन्तु निरतीचार नियमरूप नाहीं इहां नियमरूप निरतीचार त्याग होय है. ऐसें सचित्त त्याग पंचमी प्रतिमा अर बारहभेदनिमें छट्ठा भेद वर्णन किया ।

आगें रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी ।
ण य भुंजावइ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो ॥ ३८२ ॥

यः चतुर्विधं अपि भोज्यं रजन्यां नैव भुञ्जते ज्ञानी ।
न च भोजयति अन्यं निशिविरतः सः भवेत् भोज्यः ॥ ३८२ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक रात्रिविषै च्यारि प्रकार अशन पान खाद्य स्वाद्य आहारकूं नाहीं भोगवै है, नाहीं खाय है, बहुरि परकूं नाहीं भोजन

करावै है सो श्रावक रात्रि भोजनको त्यागी होय है. भावार्थ– रात्रि भोजनका तौ मांसके दोषकी अपेक्षा तथा रात्रिविषै बहुत आरंभतैं त्रस घातकी अपेक्षा पहली दूजी प्रतिमामैं ही त्याग कराये हैं परन्तु तहां कृतकारितअनुमोदना अर मनवचन कायके कोई दोष लागे तातैं शुद्धत्याग नाहीं. इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञाविषै शुद्ध त्याग होय है तातैं प्रतिमा कही है।

जो णिसिभुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं।
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए ॥ ३८३ ॥

यः निशिभुक्तिं वर्जयति सः उपवासं करोति षण्मासं।
संवत्सरस्य मध्ये आरम्भं मुञ्चति रजन्याम् ॥ ३८३ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष रात्रि भोजनकूं छोडै है सो वरस दिनमैं छह महीनाका उपवास करै है. बहुरि रात्रि भोजनके त्यागतैं भोजन संबंधी आरंभ भी त्यागै है. बहुरि व्यापार आदिका भी आरंभ छोडै है सो महान दया पालै है. भावार्थ– जो रात्रि भोजन त्यागै सो वरसदिनमैं छह महीनाका उपवास करै है. बहुरि अन्य आरंभका भी रात्रिमैं त्याग करै है. बहुरि अन्य ग्रंथनिमैं इस प्रतिमाविषै दिनमैं स्त्री सेवनका भी मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि त्याग कह्या है. ऐसैं रात्रिभुक्तत्यागप्रतिमाका निरूपण कीया. यह प्रतिमा छठी बारह भेदनिमैं सातवां भेद भया।

८ आगैं ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण करै है,—

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी।
मण वाया कायेण य बंभवई सो हवे सदिओ ॥ ३८४ ॥

सर्वासां स्त्रीणां यः अभिलाषं न कुरुते ज्ञानी।
मनसा वचसा कायेन च ब्रह्मव्रती सः भवेत सदयः ॥ ३८४ ॥

भाषार्थ–जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक सर्व ही च्यारि प्रकारकी स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी चित्रामकी इत्यादि स्त्रीका अभिलाष मन वचनकायकरि न करै सो ब्रह्मचर्य व्रतका धारक हो है कैसा है दयाका पालनहारा है. भावार्थ–सर्व स्त्रीका मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि सर्वथा त्याग करै सो ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

आगैं आरंभविरति प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो आरंभं ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णो।
हिंसासंतट्ठमणो चत्तारंभो हवे सो हि ॥ ३८५ ॥

य: आरम्भं न करोति अन्यं कारयति नैव अनुमन्य: ।
हिंसासंत्रस्तमना: त्यक्तारम्भ: भवेत् स: हि ॥ ३८५ ॥

भावार्थ–जो श्रावक गृहकार्यसंबंधी कछू भी आरंभ न करै अन्य पास करावै नाहीं. बहुरि करै ताकूं भला जाणै नाहीं सो निश्चयतें आरंभका त्यागी होय है. कैसा है हिंसातैं भयभीत है मन जाका. **भावार्थ**–गृहकार्यका आरंभका मन वचन कायकृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै सो आरंभत्याग प्रतिमाधारक श्रावक होय है. यह प्रतिमा आठमी है. बारह भेदनिमें नवमां भेद है ।

आगें परिग्रहत्याग ... ताकूं कहै हैं,—

जो परिवज्जइ ... अब्भंतर बाहिरं च साणंदो ।
पावं ति मण्णमाणो णिग्गंथो सो हवे णाणी॥ ३८६ ॥

य: परिवर्जयति ग्रन्थं अभ्यन्तरं बाह्यं च सानन्द: ।
पापं इति मन्यमान: निर्ग्रन्थ: स: भवेत् ज्ञानी ॥ ३८६ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक अभ्यंतरका अर बाह्यका यह जो दो प्रकारका परिग्रह है सो पापका कारणरूप है ऐसैं मानता संता आनन्द सहित छोडै है सो परिग्रहका त्यागी श्रावक होय है. **भावार्थ**–अभ्यंतरका ग्रंथमैं मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण कषाय तौ पहिले छुटि गये हैं. बहुरि प्रत्याख्यानावरण अर तिसहीके लार लागे हास्यादिक अर वेद तिनिकूं घटावै है. बहुरि बाह्यके धनधान्य आदि सर्वका त्याग करै है. बहुरि परिग्रहके त्यागतें बड़ा आनन्द मानै है. जातें तिनिकै सांचा वैराग्य हो है तिनिकै परिग्रह पापरूप अर बड़ी आपदा दीखै है. तातें त्याग करतें बड़ा सुख मानै है ।

बाहिरगंथविहीणा दलिद्दमणुआ सहावदो होंति ।
अब्भंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥ ३८७ ॥

बाह्यग्रन्थविहीना: दरिद्रमनुष्या: स्वभावत: भवन्ति ।
अभ्यन्तरग्रन्थं पुन: न शक्नोति क: अपि त्यक्तुं ॥ ३८७ ॥

भावार्थ–बाह्य परिग्रहकरि रहित तौ दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतें होय है. याके त्यागमें अचिरज नाहीं. बहुरि अभ्यंतर परिग्रहकूं कोई भी छोडनेकूं समर्थ नांय है. **भावार्थ**–जो अभ्यन्तरपरिग्रहकूं छोड़ै है. ताकी बड़ाई है, अभ्यंतरका परिग्रह सामान्य पणै ममत्व परिणाम है सो याकूं छोड़ै सो परिग्रहका त्यागी कहिये. ऐसैं परिग्रहत्याग प्रतिमाका स्वरूप कह्या. प्रतिमा नवमी है बारह भेदनिमैं दशमा भेद है ।

आगें अनुमोदनविरति प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो अणुमणणं ण कुणदि गिहत्थकज्जेसु पावमूलेसु ।
भवियव्वं भावंतो अणुमणविरओ हवे सो दु ॥ ३८८ ॥

यः अनुमननं न करोति गृहस्थकार्येषु पापमूलेषु ।
भवितव्यं भावयन् अनुमनविरतः भवेन सः तु ॥ ३८८ ॥

भावार्थ—जो श्रावक पापके मूल जे गृहस्थके कार्य तिनिविषै अनुमोदना न करै. कैसा हूवा संता जो भवितव्य है सो होय है ऐसें भावना करता संता सो अनुमोदनविरति प्रतिमाधारी श्रावक है. भावार्थ—गृहस्थके कार्यके आहारके निमित्त आरंभादिककी भी अनुमोदना न करै. उदासीन हूवा घरमें भी बैठै. बाह्य चैत्यालय मठ मंडपमैं भी बैठै. भोजनकूं घरका तथा अन्य श्रावक बुलावै ताकै भोजन करि आवै. ऐसा भी न कहै जो हमारे तांई फलाणी वस्तु तयार कीज्यो. जो कुछ गृहस्थ जिमावै सोही जीमि आवै सो दसमी प्रतिमाका धारी श्रावक होय है ।

जो पुण चिंतदि कज्जं सुहासुहं रायदोससंजुत्तो ।
उवओगेण विहीणं स कुणदि पावं विणा कज्जं ॥ ३८९ ॥

यः पुनः चिन्तयति कार्यं शुभाशुभं रागद्वेषसंयुत ।
उपयोगेन विहीनं स करोति पापं विना कार्यं ॥ ३८९ ॥

भावार्थ—जो विना प्रयोजन रागद्वेषकरि संयुक्त हूवा संता शुभ तथा अशुभ कार्यकूं चिंतवन करै है सो पुरुष विना कार्य पाप उपजावै है. भावार्थ—आप तौ त्यागी भया फेरि विना प्रयोजन गृहस्थके शुभकार्य पुत्रजन्मप्राप्ति विवाहादिक अर अशुभकार्य काहूकूं पीड़ा देना मारना बांधना इत्यादि शुभाशुभ कार्यनिकूं चितवन करै रागद्वेष परिणाम करै तौ निरर्थक पाप उपजावै ताकै दसमी प्रतिमा कैसें होय ? तीसूं ऐसी बुद्धि रहै जो जैसी तरह भवितव्य है तैसें होयगा जैसें आहार मिलणा है तैसें मिलि रहैगा. ऐसें परिणाम रहै अनुमतित्याग पलै है. ऐसें बारह भेदमें ग्यारहवां भेद कहा ।

आगें उद्दिष्टविरतिप्रतिमाका स्वरूप कहै है,—

जो णवकोडिविसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जं ।
जायणरहियं जोग्गं उद्दिट्ठाहारविरओ सो ॥ ३९० ॥

यः नवकोटिविशुद्धं भिक्षाचरणेन भुङ्क्ते भोज्यं ।
याचनारहितं योग्यं उद्दिष्टाहारविरतः सः ॥ ३९० ॥

भावार्थ-जो श्रावक भोज्य जो आहार ताकूं नवकोटि विशुद्ध कहिये मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाका आपकूं दोष लागै नाहीं, ऐसा भिक्षाचरण करि ले, तहां भी याचना रहित ले, मांगिकरि न ले, सो भी योग्य ले, सचित्तादिक अयोग्य होय सो न ले, सो उद्दिष्ट आहारका त्यागी है. भावार्थ-घर छोडि मठ मंडपमैं रहै, भिक्षाकरि आहार ले जो याके निमित्त कोई आहार करै तौ, तिस आहारकूं न ले. बहुरि मांगिकरि न ले, बहुरि अयोग्य मांसादिक तथा सचित्त आहार न ले, ऐसा उद्दिष्टविरत श्रावक है।

आगें अंतसमयविषै श्रावक आराधना करै ऐसैं कहै हैं,—

जो सावयवयसुद्धो अंते आराहणं परं कुणदि ।
सो अच्चुदम्मि सग्गे इंदो सुरसेविओ होदि ॥ ३९१॥

य: श्रावकव्रतशुद्धः अन्ते आराधनं परं करोति ।
सः अच्युते स्वर्गे इन्द्रः सुरसेवित: भवति ॥ ३९१ ॥

भावार्थ-जो श्रावक व्रतकरि शुद्ध पुरुष है अर अंत समय उत्कृष्ट आराधना दर्शनज्ञानचारित्रतपकूं आराधै है सो अच्युत स्वर्गविषै देवनिकरि सेवनीक इन्द्र होय है. भावार्थ-जो सम्यग्दृष्टी श्रावक ग्यारह प्रतिमाका निरतिचार शुद्ध व्रत पालै है, बहुरि अंतसमय मरणकालविषै दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधनाकूं आराधै है; सो अच्युत स्वर्गविषै इन्द्र होय है. यह उत्कृष्ट श्रावकके व्रतका उत्कृष्ट फल है. ऐसैं ग्यारमी प्रतिमाका स्वरूप कह्या, अन्य ग्रंथनिमैं याके दोय भेद कहे हैं; पहला भेदवाला तौ एक वस्त्र राखै, केसनिकूं कतरणी तथा पाछणासूं सौरावै प्रतिलेखण हस्तादिकसूं करै, भोजन बैठा करै अपने हाथसूंभी करै, अर पात्रमैं भी करै. बहुरि दूसरा केसनिका लौंच करै. प्रतिलेखण पीछिसूं करै. अपने हाथहीमैं भोजन करै, कोपीन धारै, इत्यादि याकी विधि अन्य ग्रन्थनितैं जाननी. ऐसैं प्रतिमा तौ ग्यारमी भई. अर बारह भेद कहे थे, तिनिमैं यह बारमां भेद श्रावकका भया. अब इहां संस्कृतटीकाकार अन्य ग्रंथनिके अनुसार किछू कथन श्रावकका लिख्या है, सो भी संक्षेप तैं लिखिये है. तहां छट्ठी प्रतिमातांई तौ जघन्य श्रावक कह्या है. अर सातमी आठमी नवमी प्रतिमाका धारक मध्यम श्रावक कह्या है. अर दसमी ग्यारमी प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक कह्या है. बहुरि कह्या है जो समितिसहित प्रवर्त्तै तौ अणुव्रत सफल है. अर समितिरहित प्रवर्त्तै तौ व्रतपालता भी अव्रती है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थके असि मसि कृषि वाणिज्यके आरंभमैं त्रस थावरकी हिंसा होय है, सो त्रसहिं-

साका त्याग याकै कैसैं बणै है. सो याका समाधानके अर्थ कहै हैं जो पक्ष, चर्या, साधकता, तीन प्रवृत्ति श्रावककी कही हैं. तहां पक्षका धारक तौ पाक्षिक श्रावक कहिये और चर्याका धारक नैष्टिक श्रावक कहिये अर साधकताका धारक साधक श्रावक कहिये. तहां पक्ष तौ ऐसा जो जिन मार्गमें त्रसहिंसाका त्यागी श्रावक कह्या है. सो मैं त्रसजीवकूं मेरे प्रयोजनके अर्थ तथा परके प्रयोजनके अर्थ मारूं नाहीं. धर्मके अर्थ तथा देवताके अर्थ तथा मन्त्रसाधनके अर्थ तथा औषधके अर्थ तथा आहारके अर्थ तथा अन्य भोगके अर्थ मारूं नाहीं ऐसा पक्ष जाकै होय सो पाक्षिक है. सो याके असि मसि कृषि बाणिज्य आदि कार्यनिमैं हिंसा होय है तौऊ मारनेका अभिप्रत नाहीं है. कार्यका अभिप्राय है तहां घात होय है ताकी अपनी निंदा करै है. ऐसें त्रस हिंसा न करनेकी पक्षमात्रतैं पाक्षिक कहिये है. यह अप्रत्याख्यानावरण कषायके मंद उदयके परिणाम हैं तातैं अव्रती ही है. व्रत पालनेकी इच्छा है परन्तु निरतिचार व्रत पलै नाहीं तातैं पाक्षिक ही कह्या है. बहुरि नैष्टिक होय है तब अनुक्रमतैं प्रतिमाकी प्रतिज्ञा पलै है. याकै अप्रत्याख्यानावरण कषायका अभाव भया तातैं पांचवां गुणस्थानकी प्रतिज्ञा निरतिचार पलै. तहां प्रत्याख्यानवरण कषायके तीव्र मंद भेदनितैं ग्यारह प्रतिमाके भेद हैं. ज्यों ज्यों कषाय मंद होती जाय त्यों त्यों आगिली आगिली प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होती जाय. तहां ऐसें कह्या है जो घरका स्वामिपणा छोड़ि गृहकार्य तौ पुत्रादिककूं सौंपै अर आप यथाकषाय प्रतिमाकी प्रतिज्ञा अंगीकार करता जाय. जेतै सकल संयम न ग्रहै तेतै ग्यारमी प्रतिमातांई नैष्टिक श्रावक कहावै. बहुरि जब मरण काल आया जाणै तब आराधनासहित होय एकाग्रचित्तकरि परमेष्ठीका ध्यानमैं तिष्ठि समाधिकरि प्राण छोडै, सो साधक कहावै, ऐसा व्याख्यान है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थ द्रव्यका उपार्जन करै ताके छह भाग करै. तामें एक भाग तौ धर्मके अर्थ दे. एक भाग कुटंबके पोषणमें दे. एक भाग अपने भोगके अर्थ खरचै, एक अपने स्वजन समूह अर्थ व्योहारमैं खरचै, बाकी दोय भाग रहै ते अमानत भंडार राखै. वह द्रव्य बड़ा पूजन अथवा प्रभावना तथा काल दुकालमैं अर्थ आवै. ऐसें कीये गृहस्थकै आकुलता न उपजै है. धर्म सधै है. इहां कथन संस्कृतटीकाकारने बहुत कीया है. तथा पहले गाथाके कथनमें अन्य ग्रंथनिका कथन सधै है. कथन बहुत कीया है सो संस्कृत टीकातैं जानना. इहां तौ गाथाहीका अर्थ संक्षेपकरि लिख्या है. विशेष जाननेकी इच्छा होय सो रयणसार, वसुनन्दिकृतश्रावकाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय,

अमितगतिश्रावकाचार प्राकृतदोहाबंध श्रावकाचार, इत्यादि ग्रंथनितैं जानूं, इहां संक्षेप कथन है, ऐसैं बारहभेदरूप श्रावकधर्मका कथन कीया।

आगें मुनिधर्मका व्याख्यान करै हैं,—

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहिं परिणदो णिच्चं।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ॥ ३९२ ॥

य: रत्नत्रययुक्तः क्षमादिभावैः परिणतः नित्यं।
सर्वत्र अपि मध्यस्थः स साधुः भण्यते धर्मः ॥ ३९२ ॥

भाषार्थ—जे पुरुष रत्नत्रय कहिये निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-करि युक्त होय, बहुरि क्षमादिभाव कहिये उत्तम क्षमाकूं आदि देकर दश प्रकारका धर्म तिसकरि नित्य कहिये निरंतर परिणाम सहित होय, बहुरि मध्यस्थ कहिये सुखदुःख तृणकंचन लाभअलाभ शत्रुमित्र निन्दाप्रशंसा जीवन-मरण आदिविषै समभावरूप वर्त्तै, रागद्वेषकरि रहित होय, सो साधु कहिये. तिसहीकूं धर्म कहिये, जातैं जामैं धर्म है. सो ही धर्मकी मूर्त्ति है, सो ही धर्म है. **भावार्थ**—इहां रत्नत्रयकरि सहित कहनेमैं चारित्र तेरहप्रकार है सो मुनिका धर्म महाव्रत आदि है सो वर्णन किया चाहिये, सो यहां दश प्रकार धर्मका विशेष वर्णन है तामैं महाव्रत आदिका भी वर्णन गर्भित है सो जानना.।

अब दशप्रकार धर्मका वर्णन करै हैं,—

सो चिय दहप्पयारो खमादिभावेहिं सुक्खसारेहिं।
ते पुण भणिज्जमाणा मुणियव्वा परमभत्तीए ॥ ३९३ ॥

स च एव दशप्रकारः क्षमादिभावैः सौख्यसारैः।
ते पुनः भणिज्यमानाः मन्तव्यः परमभक्त्या ॥ ३९३ ॥

भाषार्थ—सो मुनिधर्म क्षमादि भावनकरि दश प्रकार है. कैसा है सौख्यसार कहिये सुख यातैं होय है. अथवा सुख याविषै है अथवा सुखकरि सार है ऐसा है. बहुरि ते दशप्रकार आगें कह्या हुवा धर्म भक्तिकरि, उत्तम धर्मानुरागकरि जानने योग्य है. **भावार्थ**—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तपः, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ऐसैं दश प्रकार मुनिधर्म है सो याका न्यारा न्यारा व्याख्यान आगें करै हैं सो जानना.।

अब पहिले ही उत्तमक्षमाधर्मकूं कहै हैं,—

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खिमा णिम्मला होदि ॥ ३९४ ॥

क्रोधेन यः न तप्यति सुरनरतिर्यग्भिः क्रियमाणे अपि ।
उपसर्गे अपि रौद्रे तस्य क्षमा निर्मला भवति ॥ ३९४ ॥

भाषार्थ–जो मुनि देव मनुष्य तिर्यंच आदिकरि रौद्र भयानक घोर उपसर्ग करतैं सतैं भी क्रोधकरि तप्तायमान न होय तिस मुनिके निर्मल क्षमा होय है. **भावार्थ**–जैसैं श्रीदत्त मुनि व्यंतरदेवकृत उपसर्गकूं जीति केवलज्ञान उपजाय मोक्ष गये, तथा चिलातीपुत्र मुनि व्यंतरकृत उपसर्गकूं जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा स्वामिकार्त्तिकेयमुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया. तथा गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणकृत उपसर्ग जीति मोक्ष गये. तथा श्रीधन्य मुनि चक्रराजकृत उपसर्गकूं जीति केवल उपजाय मोक्ष गये, तथा पांचसैमुनि दंडक राजाकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई, तथा राजकुमारमुनि पांशुळश्रेष्ठीकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई. तथा चाणिक्य आदि पांचसै मुनि मन्त्रीकृत उपसर्गकूं जीति मोक्ष गये, तथा सुकुमाल मुनि स्यालनीकृत उपसर्ग सहकरि देव भये, तथा श्रेष्ठीके बाईस पुत्र नदीके प्रवाहविषै पद्मासन शुभ ध्यानकरि मरणकरि देव भये, तथा सुकोशल मुनि व्याघ्रीकृत उपसर्ग जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा श्रीपणिकमुनि जलका उपसर्ग सहकरि मुक्ति गये. ऐसैं देव मनुष्य पशु अचेतन कृत उपसर्ग सहे, तहां क्रोध न कीया तिनिकै उत्तम क्षमा भई. तैसें उपसर्ग करनेवालेतैं क्रोध न उपजै, तब उत्तम क्षमा होय है. तहां क्रोधका निमित्त आवै तौ तहां ऐसा चिंतवन करै जो कोई मेरे दोष कहै ते मोविषै विद्यमान हैं तौ यह कहा मिथ्या कहै है? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि मोविषै दोष नाहीं है तो यह विना जाण्या कहै है, तहां अज्ञानपरि कहा कोप ? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि अज्ञानीका बालस्वभाव चिंतना, जो बालक तो प्रत्यक्ष भी कहै यह तो परोक्ष कहै है, यह ही भला है. बहुरि जो प्रत्यक्ष भी कुवचन कहै तो यह विचारना, जो बालक तौ ताड़न भी करै यह तौ कुवचन ही कहै है, ताड़ै नाहीं है, यह ही भला है. बहुरि जो ताड़न करै तौ यह विचारना जो बालक अज्ञानी तौ प्राणघात भी करै, यह ताड़ै ही है प्राणघात तो न किया यह ही भला है. बहुरि प्राणघात करै तौ यह विचारना, जो अज्ञानी तौ धर्मका भी विध्वंस करै यह प्राणघात करै है, धर्मका विध्वंस तौ नाहीं करै है. बहुरि विचारै जो मैं पापकर्म पूर्वै उपजाये थे, ताका यह दुर्वचनादिक उपसर्ग फल है, मेरा ही अपराध है, पर तौ निमित्त मात्र है. इत्यादि चितवनतैं उपसर्ग आदिकके निमित्ततैं क्रोध नाहीं उपजै तब उत्तमक्षमाधर्म होय है ।

आगें उत्तम मार्दव धर्मकूं कहै हैं,—

उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि ।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स ॥ ३९५ ॥

उत्तमज्ञानप्रधानः उत्तमतपश्चरणकरणशीलः अपि ।
आत्मानं यः हीलति मार्दवरत्नं भवेत् तस्य ॥ ३९५ ॥

भाषार्थ—जो मुनि उत्तम ज्ञानकरि तौ प्रधान होय, बहुरि उत्तम तपश्चरण करणेका जाका स्वभाव होय. तौऊ जो अपने आत्माकूं मदरहित करै अनादर रूप करै तिस मुनिकै मार्दव नामा धर्मरत्न होय है. भावार्थ—सकल शास्त्रका जाननहारा पण्डित होय तौऊ ज्ञानमद न करै. यह विचारै जो मोतैं बड़े अवधि मनःपर्यय ज्ञानी हैं. केवलज्ञानी सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं. मै कहा हौं अल्पज्ञ हौं. बहुरि उत्तम तप करै तौऊ ताका मद न करै. आप सब जाति कुल बल विद्या ऐश्वर्य तप रूप आदिकरि सर्वतैं बडे हैं तौऊ परकृत अपमानकूं भी सहै है. तहां गर्वकरि कषाय न उपजावै तहां उत्तममार्दवधर्म होय है ।

आगें उत्तम आर्जवधर्मकूं कहै हैं.—

जो चिंतेइ ण वंकं कुणदि ण वंकं ण जंपए वंकं ।
ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स ॥ ३९६ ॥

य चिन्तयति न वक्रं करोति न वक्रं जल्पते वक्रं ।
न च गोपायति निजदोषं आर्जवधर्मः भवेत् तस्य ॥ ३९६ ॥

भाषार्थ—जो मुनि मनविषैं वक्रता न चिंतवै, बहुरि कायकरि वक्रता न करै. बहुरि वचनकरि वक्रता न बोलै, बहुरि अपने दोषनिकूं गोपै नाहीं, छिपावै नाहीं, तिस मुनिकै आर्जवधर्म उत्तम होय है. भावार्थ—मनवचनकायविषै सरलता होय जो मनमें विचारै सो ही वचनकरि कहै, सो ही कायकरि करै, परकूं भुलावा देने ठिगने निमित्त विचारना तो और, कहना और, करना और तहां माया कषाय प्रबल होय है. सो ऐसैं न करै. निःकपट होय प्रवर्त्ते. बहुरि अपना दोष छिपावै नाहीं. जैसा होय तैसा बालककी ज्यों गुरुनिपासि कहै तहां उत्तम आर्जवधर्म होय है. ।

आगें उत्तम शौचधर्मकूं कहै हैं,—

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्लोहमलपुंजं ।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सुचित्तं हवे विमलं ॥ ३९७ ॥

समसन्तोषजलेन च यः धोवति तृष्णालोभमलपुञ्जं ।
भोजनगृद्धिविहीनः तस्य शुचित्वं भवेत् विमलं ॥ ३९७ ॥

भाषार्थ–जो मुनि समभाव कहिये रागद्वेषरहित परिणाम अर संतोष कहिये संतुष्ट भाव सो ही भया जल ताकरि, तृष्णा अर लोभ सो ही भया मलका समूह, ताकूं धोवै. बहुरि भोजनकी गृद्धि कहिये अति चाहि ताकरि रहित होय तिस मुनिका चित्त निर्मल होय है. ताकै उत्तम शौच धर्महोय है. **भावार्थ**–समभाव तौ तृण कंचनकूं समान जानना, अर संतोष संतुष्टपना, तृप्तिभाव अपने स्वरूप ही विषै सुख मानना, ऐसें भावरूप जलकरि, तृष्णा तौ आगामी मिलनेकी चाह, अर लोभ पाये द्रव्यादिकविषै अति लिप्तपणा. नाके त्यागविषै अति खेद करना सो ही भया मल ताकै धोवनेतैं मन पवित्र होय है. बहुरि मुनिकै अन्य त्याग तौ होय ही है. अर आहारका ग्रहण है ताविषै भी तीव्र चाह नाहीं राखै, लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समबुद्धि रहै. तब उत्तम शौचधर्म होय है. बहुरि लोभकी च्यारि प्रकार प्रवृत्ति है जीवितका लोभ, आरोग्य रहनेका लोभ, इन्द्रिय बनी रहनेका लोभ, उपयोगका लोभ, तहां अपना अर अपने संबंधी स्वजन मित्र आदिकै दोऊंकै चाहै तब आठ भेदरूप प्रवृत्ति है सो जहां सर्वहीका लोभ नाहीं होय तहां शौचधर्म है. ।

आगें उत्तम सत्यधर्मकूं कहै हैं.–

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि ।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ॥ ३९८ ॥

जिनवचनं एव भाषते तत् पालयितुं अशक्यमान अपि ।
व्यवहारेण अपि अलीकं न वदति यः सत्यवादी स ॥ ३९८ ॥

भाषार्थ–जो मुनि जिनसूत्रहीके वचनकूं कहै, बहुरि तिनिमें जो आचार आदि कह्या है ताकूं पालनेकूं असमर्थ होय तौऊ अन्य प्रकार न कहै. बहुरि व्यवहार करि भी अलीक कहिये असत्य न कहै सो मुनि सत्यवादी है. ताकै उत्तम सत्य धर्म होय है. **भावार्थ**–जो जिनसिद्धान्तमें आचार आदिका जैसा स्वरूप कह्या होय तैसा ही कहै. ऐसा नाहीं जो आपसूं न पाल्या जाय तब अन्यप्रकार कहै यथावत न कहै. अपना अपमान होय तातैं जैसें तैसें कहै अर व्यवहार जो भोजन आदिका व्यापार तथा पूजा प्रभावना आदिका व्योहार तिसविषै भी जिनसूत्र के अनुसार वचन कहै अपनी इच्छातैं जैसें तैसें न कहै. बहुरि इहां दशप्रकार सत्यका वर्णन है. नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रती-

त्यसत्य, संवृत्तिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य, समयसत्य. सो मुनिनिका मुनिनितें तथा श्रावकनितें वचनालापका व्यवहार है. तहां बहुत भी वचनालाप होय तब सूत्रसिद्धान्त अनुसार इस दशप्रकारका सत्यरूप वचनकी भी प्रवृत्ति होय है. तहां अर्थ गुण विना भी वक्ताकी इच्छातें काहू वस्तुका नाम संज्ञा करै सो तौ नाम सत्य है १ बहुरि रूपमात्रकरि कहिये जैसें चित्राममें काहूका रूप लिखि कहै कि यह सुपेद वर्ण फलाणा पुरुष है सो रूपसत्य है २. बहुरि किसी प्रयोजनके अर्थ काहूकी मूर्त्ति स्थापि कहै सो स्थापना सत्य है ३. बहुरि काहू प्रतीतिके अर्थ आश्रयकरि कहिये सो प्रतीतिसत्य है. जैसें ताल ऐसा परिमाण विशेष है ताकै आश्रय कहै यह पुरुष ताल है अथवा लंबा कहै तौ छोटेकूं प्रतीत्यकरि कहै, ४. बहुरि लोक व्यवहारके आश्रयकरि कहै सो संवृति सत्य है. जैसें कमल के उपजनेकूं अनेक कारण है तौऊ पंकविषै भया तातें पंकज कहिये ५. बहुरि वस्तुनिकूं अनुक्रमतें स्थापनेका वचन कहै सो संयोजना सत्य है. जैसें दशलक्षणका मंडल मांडै तामें अनुक्रमतें चूर्णके कोठे करै अर कहै कि यह उत्तम क्षमाका है, इत्यादि जोडरूप नाम कहै. अथवा दूसरा उदाहरण जैसें जोंहरी मोतीनिकी लड़ी करै तिनिमें मोतीनिकी संज्ञा थापिलीनी है सो जहां जो चाहिये तिसही अनुक्रमतें मोती पोवै ६. बहुरि जिस देशमें जैसी भाषा होय सो कहना सो जनपदसत्य है ७. बहुरि ग्राम नगर आदिका उपदेशक वचन सो देशसत्य है जैसें बाड़ि चौगिरद होय ताकूं ग्राम कहिये ८. बहुरि छद्मस्थके ज्ञान अगोचर अर संयमादिक पालनेके अर्थ जो वचन सो भावसत्य है. जैसें काहू वस्तुमें छद्मस्थके ज्ञानके अगोचर जीव होय तौऊ अपनी दृष्टिमें जीव न देखि आगम अनुसार कहै कि यह प्रासुक है ९. बहुरि जो आगमगोचर वस्तु है तिनिकूं आगमके वचनानुसार कहना सो समयसत्य है जैसें पल्य सागर इत्यादिक कहना १०. बहुरि दशप्रकार सत्यका कथन गोमट्टसारमें है तहां सात नाम तौ येही हैं अर तीनके नाम इहां तौ देश, संयोजना, समय हैं अर तहां, संभावना, व्यवहार, उपमा ए हैं. बहुरि उदाहरण अन्य प्रकार हैं सो विवक्षाका भेद जानना. विरोध नाहीं. ऐसें सत्यकी प्रवृत्ति होय है सो जिनसूत्रानुसार वचन प्रवृत्ति करै ताकै सत्यधर्म होय है।

आगें उत्तम संयमधर्मकूं कहै हैं,—

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकम्मेसु ।
तणछेदं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स ॥ ३९९ ॥

य: जीवरक्षणपर: गमनागमनादिसर्वकर्मसु ।
तृणच्छेदं अपि न इच्छति संयमभाव: भवेत् तस्य ॥ ३९९ ॥

भाषार्थ—जो मुनि गमन आगमन आदि सर्व कार्यनिविषै तृणका छेदमात्र भी नाहीं चाहै न करै. कैसा है मुनि जीवनिकी रक्षाविषै तत्पर हैं ऐसे मुनिकै संयमभाव होय हैं. भावार्थ—संयम दोयप्रकार कह्या है इन्द्रिय मनका वश करणा अर छह कायके जीवनिकी रक्षा करनी. सो इहां मुनिकै आहार विहार करनेविषै गमन आगमन आदिका काम पड़ै तिनि कार्यनिमैं ऐसे परिणाम रहैं जो मैं तृणमात्रका भी छेद नाहीं करूं. मेरा निमित्ततैं काहूका अहित न होय, ऐसैं यत्नरूप प्रवर्त्तै है. जीवदयाविषै ही तत्पर रहै है. इहां टीकाकार अन्य ग्रंथनितैं संयमका विशेष वर्णन कीया है. ताका संक्षेप जो संयम दोयप्रकार है. उपेक्षासंयम, अपहृतसंयम तहां जो स्वभावहीतैं रागद्वेषकूं छोड़ि गुप्ति धर्मविषै कायोत्सर्ग ध्यानकरि तिष्ठै तहां ताकै उपेक्षासंयम कहिये. उपेक्षा नाम उदासीनता वा वीतरागताका है. बहुरि अपहृतसंयमके तीन भेद हैं. उत्कृष्ट मध्यम जघन्य. तहां चालतां बैठतां जो जीव दीखै तासूं आप टलिजाय जीवकूं सरकावै नाहीं सो उत्कृष्ट है. बहुरि कोमल मयूरकी पीछीकरि जीवकूं सरकावै सो मध्यम है. बहुरि अन्य तृणादिकतैं सरकावै सो जघन्य है. इहां अपहृत संयमीकूं पंच समितिका उपदेश है. तहां आहार विहारकै अर्थ गमन करै सो प्राशुक मार्ग देखि जूड़ा प्रमाण भूमिकूं देखतैं मंद मंद अति यत्नतैं गमन करै. सो ईर्यासमिति है. बहुरि धर्मोपदेश आदिके निमित्त वचन कहै सो हितरूप मर्यादनैं लीयां सन्देहरहित स्पष्ट अक्षररूप वचन कहै. बहु प्रलाप आदि वचनके दोष हैं तिनितैं रहित बोलै सो भाषासमिति है. बहुरि कायकी स्थितिके अर्थ आहार करै सो मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाका दोष जामैं न लागै, ऐसा परका दीया छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालि चौदहमलरहित अपने हाथविषै खड़ा अतियत्नतैं शुद्ध आहार करै सो एषणा समिति है. बहुरि धर्मके उपकरणनिकूं उठावना धरना सो अतियत्नतैं भूमिकूं देखि उठावना धरना सो आदान निक्षेपण समिति है. बहुरि अंगका मल मूत्रादिक क्षेपण सो त्रस थावर जीवनिकूं देखि टालिकरि यत्नतैं क्षेपणा सो प्रतिष्ठापना समिति है. ऐसैं पांच समिति पालै तिनिकै संयम पलै है. जातैं ऐसा कह्या है जो यत्नाचार प्रवर्त्तै है ताकै बाह्य जीवकूं बाधा होय तौऊ बंध नाहीं है अर यत्नरहित प्रवर्त्तै है ताकै बाह्य जीव मरो तथा मतिमरो बंध अवश्य होय है. बहुरि अपहृत संयमके पालनेके अर्थ आठ शुद्धीनिका उपदेश है. भावशुद्धि १ कायशुद्धि २ विनयशुद्धि ३ ईर्यापथ-

शुद्धि ४, भिक्षाशुद्धि ५, प्रतिष्ठापनाशुद्धि ६, शयनासनशुद्धि ७, वाक्यशुद्धि ८. तहां भावशुद्धि तौ कर्मका क्षयोपशमजनित है सो तिस विना तौ आचार प्रकट नहीं होय. शुद्ध उज्वल भींतिमैं चित्राम शोभायमान दीखै जैसैं. बहुरि दिगम्बररूप सर्व विकारनितैं रहित यत्नरूप जाविषै प्रवृत्ति शान्त मुद्रा जाकूं देखै अन्यकै भय न उपजै तथा आप निर्भय रहै ऐसी कायशुद्धि है. बहुरि जहां अरहंत आदिविषै भक्ति गुरुनिके अनुकूल रहना ऐसैं विनयशुद्धि है. बहुरि मुनि जीवनिके ठिकाने सर्व जानै हैं तातैं अपने ज्ञानतैं सूर्यके उद्योततैं नेत्र इन्द्रियतैं मार्गकूं अतियत्नतैं देखिकरि गमन करना सो ईर्यापथशुद्धि है. बहुरि भोजनकूं गमन करै तब पहलै तौ अपने मल मूत्रकी बाधाकूं परखै, अपना अंगकू नीकै प्रतिलेखै, बहुरि आचार सूत्रमें कह्या तैसें देश काल स्वभाव विचारै. बहुरि एती जायगां आहारकूं प्रवेश करै नहीं. गीत नृत्य वादित्रकी जिनकै आजीविका होय, तिनिकै घर जाय नाहीं. जहां प्रसूति भई होय तहां जाय नाहीं. जहां मृत्यु भई होय तहां जाय नाहीं. वेश्याकै जाय नाहीं. पापकर्म हिंसाकर्म होय तहां जाय नाहीं. दीनका घर, अनाथका घर, दान, शाला, यज्ञ, पूजनशाला, विवाह आदि मंगल जहां होय इनिकै आहार निमित्त जाय नाहीं. धनवानकै जाना कि निर्धनके जाना ऐसा विचार नाहीं. लोकनिंद्य कुलकै घर जाय नाहीं. दीनवृत्ति करै नाहीं. प्राशुक आहार ले. आगममें कह्या तैसें दोष अंतराय टालि निर्दोष आहार ले, सो भिक्षाशुद्धि है. इहां लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समानबुद्धि राखै है. सो भिक्षा पांच प्रकार कही है. गोचरी १ अक्षम्रक्षण २ उदराग्निप्रशमन ३ भ्रमराहार ४ गरतपूरण ५. तहां गऊकी ज्यों दातारकी सम्पदादिककी तरफ न देखै, जैसा पाया तैसा आहार लेनेहीमें चित्त राखै, सो गोचरी वृत्ति है. बहुरि जैसैं गाड़ीकूं वांगि ग्राम पहुचै, तैसें संयमका साधक काय, ताकूं निर्दोष आहार दे संयम साधै, सो अक्षम्रक्षण है. बहुरि लाय लागीकूं जैसैं तैसैं पाणीतैं बुझाय घर बचावै, तैसें क्षुधा अग्निकूं सरस नीरस आहारकरि बुझाय अपना परिणाम उज्वल राखै सो उदराग्नि प्रशमन है. बहुरि भ्रमर जैसैं फूलकूं बाधा नहीं करै अर वासना ले, तैसें मुनि दातारकूं बाधा न उपजाय आहार ले सो भ्रमराहार है. बहुरि जैसैं शुभ्र कहिये खाडा ताकूं जैसैं तैसैं भरतकरि भरिये तैसैं मुनि स्वादु निःस्वादु आहारकरि उदर भरै सो गर्त्तपूरण कहिये. ऐसैं भिक्षाशुद्धि है. बहुरि मलमूत्र श्लेष्म थूक आदि क्षेपै सो जीवनिकूं देखि यत्नतैं क्षेपै सो प्रतिष्ठापना शुद्धि है. बहुरि शयनासनशुद्धि जहां स्त्री दुष्ट जीव नपुंसक चोर मद्यपायी जीववधके करनहारे, नीच लोक वसते होंय तहां न वसै. बहुरि

शृंगार विकार आभूषण सुन्दर वेश ऐसी जो वेश्यादिक तिनिकी क्रीड़ा जहां होय, सुन्दर गीत नृत्य वादित्र जहां होते होंय, बहुरि जहां विकारके कारण नग्न गुह्य-प्रदेश जिनमैं दीखैं ऐसे चित्राम होंय, बहुरि जहां हास्य महोत्सव घोड़ा आदिकूं शिक्षा देनेका ठिकाना तथा व्यायामभूमि होय, तहां मुनि न वसै. जिनतैं क्रोधादिक उपजै ऐसे ठिकाने न वसै. सो शयनासनशुद्धि है. जेतैं कायोत्सर्ग खड़ा रहनेकी शक्ति होय तेतैं स्वरूपमैं लीन होय खड़े रहै पीछैं बैठ तथा खेदके मेटनेकूं अल्पकाल सोवै. बहुरि वाक्यशुद्धि जहां आरंभकी प्रेरणारहित वचन प्रवर्त्तै युद्ध, काम, कर्कश, प्रलाप, पैशुन्य, कठोर, परपीड़ा करनेवाले वाक्य न प्रवर्त्तै अनेक विकथाके भेद हैं तिनिरूप वचन न प्रवर्त्तै. जिनिमैं व्रत शीलका उपदेश अपना परका जामैं हित होय मीठा मनोहर वैराग्यकूं कारण अपनी प्रशंसा परकी निन्दातैं रहित संयमीके योग्य वचन प्रवर्त्तै सो वचनशुद्धि है. ऐसैं संयम धर्म है. संयमके पांच भेद कहे हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, ऐसैं पांच भेद हैं इनिका विशेष व्याख्यान अन्य-ग्रंथनितैं जानना ।

आगैं तप धर्मकूं कहै हैं,—

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स ॥ ४०० ॥

इहपरलोकसुखाना निरपेक्षः यः करोति समभावः ।
विविधं कायक्लेशं तपोधर्मः निर्मलः तस्य ॥ ४०० ॥

भावार्थ—जो मुनि इस लोक परलोकके सुखकी अपेक्षासूं रहित हूवा संता, बहुरि सुखदुःख शत्रुमित्र तृणकंचन निंदाप्रशंसा आदिविषै रागद्वेषरहित समभावी हूवा संता अनेक प्रकार कायक्लेश करै है तिस मुनिके निर्मल तपधर्म होय है. **भावार्थ**—चारित्रके अर्थ जो उद्यम अर उपयोग करै सो तप कह्या है. तहां कायक्लेश सहित ही होय है. तातैं आत्माकी विभावपरिणतिका संस्कार हो है ताकूं मेटनेका उद्यम करै. अपने शुद्धस्वरूप उपयोगकूं चारित्रविषै थांभै, तहां बड़ा जोरसूं थंभै है सो जोर करना सो ही तप है. सो बाह्य अभ्यंतर भेदतैं बारह प्रकार कह्या है. ताका वर्णन आगैं चूलिकामैं होयगा. ऐसैं तप धर्म कह्या ।

आगैं त्याग धर्मकूं कहै हैं,—

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं ।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स ॥ ४०१ ॥

य: त्यजति मिष्टभोज्यं उपकरणं रागद्वेषसंजनकं ।
वसतिं ममत्वहेतुकां त्यागगुणः सः भवेत् तस्य ॥ ४०१ ॥

भाषार्थ–जो मुनि मिष्ट भोजन छोडै, रागद्वेषका उपजावनहारा उपकरण छोडै, ममत्वका कारण वसतिका छोडै, तिस मुनिकै त्यागनामा धर्म होय है. भावार्थ–मुनिकै संसार देह भोगके ममत्वका त्याग तौ पहलै ही है. बहुरि जिन वस्तूनिमें कार्य पडै है तिनिकूं मुख्यकरि कह्या है. आहारसूं काम पडै तहां तौ सरस नीरसका ममत्व नाहीं करै. बहुरि धर्मोपकरण पुस्तक पीछी कमंडलु जिनसूं राग तीव्र बंधै ऐसे न राखै जो गृहस्थजनके काम न आवै. बहुरि बडी बस्तिका रहनेकी जायगासूं काम पडै सो ऐसी जायगां न बसै जातैं ममत्व उपजै. ऐसें त्यागधर्म कह्या ।

आगें आकिंचन्य धर्मकूं कहै हैं,—

तिविहेण जो विवज्जइ चेयणमियरं च सव्वहा संगं ।
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥ ४०२ ॥

त्रिविधेन यः वर्जयति चेतनं इतरं च सर्वथा सङ्गम् ।
लोकव्यवहारविरतः निर्ग्रन्थत्वं भवेत् तस्य ॥ ४०२ ॥

भाषार्थ–जो मुनि चेतन अचेतन परिग्रहकूं सर्वथा मनवचनकायकृतकारितअनुमोदनाकरि छोडै, कैसा हूवा संता, लोकके व्यवहारसूं विरक्त हूवा संता छोडै, तिस मुनिकै निर्ग्रंथपणा होय है. भावार्थ–मुनि अन्य परिग्रह तौ छोडै ही है परन्तु मुनिपणामें योग्य ऐसे चेनत तो शिष्य संघ अर अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमंडलु धर्मोपकरण अर आहार वस्तिका देह ये अचेतन तिनिसूं भी सर्वथा ममत्व छोडै. ऐसा विचारै जो मैं तौ आत्मा ही हौं अन्य मेरा किछू भी नाहीं, मैं अकिंचन हौं, ऐसा निर्ममत्व होय ताकै आकिंचन्य धर्म होय है ।

आगें ब्रह्मचर्य धर्मकूं कहै हैं,—

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं ।
कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स ॥ ४०३ ॥

यः परिहरति संङ्गं महिलानां नैव पश्यति रूपं ।
कामकथादिनिवृत्तः नवधा ब्रह्म भवेत् तस्य ॥ ४०३ ॥

भाषार्थ–जो मुनि स्त्रीनिकी संगति न करै, तिनिका रूपकूं नाहीं निरखै, बहुरि कामकी कथा आदि शब्दकरि स्मरणादिकरि रहित होय ऐसैं नवधा क-

हिये मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि करै तिस मुनिके ब्रह्मचर्य धर्म होय है. भावार्थ– इहां ऐसा भी जानना जो ब्रह्म आत्मा है ताविषै लीन होय सो ब्रह्मचर्य है. सो परद्रव्यविषै आत्मा लीन होय तिनिविषै स्त्रीमैं लीन होना प्रधान है जातैं काम मनविषै उपजै है सो अन्य कषायनितैं भी यह प्रधान है. अर इस कामका आलंबन स्त्री है सो याका संसर्ग छोडे अपने स्वरूपविषै लीन होय है. तातैं याकी संगति करना, रूपनिरखना, याकी कथा करनी, स्मरण करना, छोडै ताकै ब्रह्मचर्य होय है. इहां टीकामैं शीलके अठारह हजार भेद ऐसें लिखे हैं. अचेतनस्त्री–काष्टपाषाण, अर लेपकृत, तिनिकूं मनवचनकाय अर कृतकारितअनुमोदना इनि छहतैं गुणे अठारह होय. तिनिकूं पांच इन्द्रियनितैं गुणे निव्वै होय. द्रव्य अर भावतैं गुणे एकसो अस्सी (१८०) होय. क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारितैं गुणे सातसौवीस (७२०) होय. बहुरि चेतन स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी. तिनिकूं कृतकारित अनुमोदनातैं गुणे नव (९) होय, तिनिकूं मन वचन काय इनि तीनतैं गुणे सत्ताईस २७ होय, पांच इन्द्रियनितैं गुणे एकसौ पैंतीस १३५ होय, द्रव्य अर भावकरि गुणे दोयसैसत्तरि २७० होय. इनिकूं च्यारि संज्ञा आहार भय मैथुन परिग्रहतैं गुणे एक हजार अस्सी १०८० होय इनिकूं अनन्तानुंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ रूप सोलह कषायनितैं गुणे सतराहजार दोयसे अस्सी १७२८० होय अर अचेतन स्त्रीके सातसैवीस भेद मिलाये अठारह हजार १८००० होय ऐसें भेद हैं, बहुरि इनि भेदनिकूं अन्य प्रकार भी कीये हैं सो अन्य ग्रंथनितैं जानने. ए आत्माकी परणतिके विकारके भेद हैं सो ये सर्व ही छोडि अपने स्वरूपमैं रमै तब ब्रह्मचर्य धर्म उत्तम होय है।

आगैं शीलवानकी बड़ाई कहै हैं,—उक्तं च गाथा।

जो ण वि जादि वियारं तरुणियणकडक्खवाणविद्धो वि ।
सो चेव सूरसूरो रणसूरो णो हवे सूरो ॥ १ ॥

यः न अपि याति विकारं तरुणिजनकटाक्षबाणविद्धः अपि ।
सः एव शूरशूरः रणशूरः न भवेत् शूरः ॥ १ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष स्त्रीजनके कटाक्षरूप बाणनिकरि विंध्या भी विकारकूं प्राप्त न होय है सो सूरवीरनिमैं प्रधान है, अर जो रणविषै शूरवीर है सो सूरवीर नाहीं है, भावार्थ–युद्धमैं साम्हा होय मरनेवाले तौ सूरवीर बहुत हैं अर जे स्त्रीके वस न होय हैं ब्रह्मचर्यव्रत पालै हैं ऐसे विरले हैं तेही बडे साहसी

हैं सूरवीर हैं, कामको जीतनेवाले ही बडे सुभट हैं. ऐंसे यह दश प्रकार धर्मका व्याख्यान कीया।

आगें याकूं संकोचै है,—

एसो दहप्पयारो धम्मो दहलक्खणो हवे णियमा।
अण्णो ण हवदि धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थ त्थि ॥४०४॥

एपः दशप्रकारः धर्मः दशलक्षणः भवेत् नियमात्।
अन्यः न भवति धर्मः हिंसा सूक्ष्मा अपि यत्र अस्ति ॥ ४०४ ॥

भाषार्थ—ऐसैं दश प्रकार धर्म है सो ही दशलक्षणस्वरूप धर्म नियमकरि है. बहुरि अन्य जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नाहीं है. **भावार्थ**—जहां हिंसाकरि अर तिसकूं कोई अन्यमती धर्म थापै है, तिसकूं धर्म न कहिये. यह दशलक्षणस्वरूप धर्म कह्या है सो ही धर्म नियमकरि है।

आगें इस गाथामें कह्या है जो जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय तहां धर्म नाहीं तिस ही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—

हिंसारंभो ण सुहो देवणिमित्तं गुरूण कज्जेसु।
हिंसा पावं ति मदो दयापहाणो जदो धम्मो ॥ ४०५ ॥

हिंसारम्भः न शुभः देवनिमित्तं गुरूणां कार्येषु।
हिंसा पापं इति मतः दयाप्रधानः यतः धर्मः ॥ ४०५ ॥

भाषार्थ—जातैं हिंसा होय सो पाप है, ऐसैं कह्या है. बहुरि धर्म है सो दया प्रधान है, ऐसैं कह्या है. तातैं देवके निमित्त तथा गुरुके कार्यके निमित्त हिंसा आरंभ सो शुभ नाहीं है. **भावार्थ**—अन्यमती हिंसामैं धर्म थापै हैं. मीमांसक तौ यज्ञ करै हैं, तहां पशुनिकौं होमै हैं, ताका फल शुभ कहै हैं. बहुरि देवीके भैरूंके उपासक बकरे आदि मारि देवी भैरूंके चढावै हैं ताका शुभ फल मानै है. बौद्धमती हिंसाकरि मांसादिक आहार शुभ कहै हैं. बहुरि स्वेताम्बरनिके केई सूत्रनिमैं ऐसैं कही है जो देव गुरु धर्मके निमित्त चक्रवर्तिकी सेनानै चूरिये जो साधु ऐसें न करै है तो अनन्त संसारी होय. कहूं मद्यमांसका आहार भी लिखा है. इनि सर्वनिका निषेध इस गाथामैं जानना. जो देव गुरुके कार्यनिमित्त हिंसाका आरंभ करै है सो शुभ नाहीं. धर्म है सो दयाप्रधान ही है. बहुरि ऐसैं भी जानना जो पूजा प्रतिष्ठा चैत्यालयका निर्मापण संघयात्रा तथा वसतिकाका निर्मापण गृहस्थनिके कार्य हैं ते भी मुनि आप न करै, न करावै, न अनुमोदना करै. यह धर्म गृहस्थनिका है सो जैसैं इनिका सूत्रमें विधान लिख्या है तैसैं

गृहस्थ करै. गृहस्थ मुनिकूं इनिका प्रश्न करै तौ कहै जिन सिद्धांतमैं गृहस्थका धर्म पूजा प्रतिष्ठा आदि लिख्या है तैसैं करो. ऐसैं कहनेमैं हिंसाका दोष तौ गृहस्थके ही है. इसमैं तिस श्रद्धान भक्ति धर्मकी प्रधानता भई तिस संबंधी पुण्य भया तिसके सीरी मुनि भी हैं, हिंसा गृहस्थकी है. ताके सीरी नाहीं. बहुरि गृहस्थ भी हिंसा करनेका अभिप्राय करै तौ अशुभ ही है. पूजा प्रतिष्ठा यत्नपूर्वक करै है. कार्यमैं हिंसा होय सो गृहस्थकै कैसैं टलै? सिद्धान्तमैं ऐसा भी कह्या है जो अल्प अपराध लगै बहुत पुण्य निपजै ऐसा कार्य गृहस्थकूं योग्य है. गृहस्थ जिसमैं नफा जाणै सो कार्य करै. थोड़ा द्रव्य दीये बहुत द्रव्य आवै. सो कार्य करै. किंतु मुनिनिकै ऐसा कार्य नाहीं होय है. तिनिकै सर्वथा यत्न ही है ऐसा जानना ।

देवगुरूण णिम्मित्तं हिंसारंभो वि होदि जदि धम्मो ।
हिंसारहिओ धम्मो इदि जिणवयणं हवे अलियं ॥ ४०६ ॥

देवगुर्वोः निमित्तं हिंसारम्भ अपि भवति यदि धर्मः ।
हिंसारहितः धर्मः इति जिनवचनं भवेत् अलीकं ॥ ४०६ ॥

भाषार्थ–जो देव गुरुके निमित्त हिंसाका आरंभ भी यतीका धर्म होय तौ जिन भगवानके ऐसे वचन हैं जो धर्म हिंसारहित है सो ऐसा वचन अलीक (जूठा) ठहरै. **भावार्थ**–जातैं धर्म भगवानने हिंसा रहित कह्या है तातैं देव गुरुके कार्यके निमित्त भी मुनि हिंसाका आरंभ न करै. जे श्वेताम्बर कहै हैं सो मिथ्या हैं।

आगैं इस धर्मका दुर्लभपणा दिखावै हैं,—

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि ।
मिच्छत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं ॥ ४०७ ॥

इति एषः जिनधर्मः अलब्धपूर्वः अनादिकाले अपि ।
मिथ्यात्वसंयुतानां जीवानां लब्धिहीनानां ॥ ४०७ ॥

भाषार्थ–ऐसैं यह जिनेश्वर देवका धर्म अनादि कालविषै मिथ्यात्वकरि संयुक्त जे जीव. जिनिके कालादि लब्धि नाहीं आई, तिनिकै अलब्धपूर्वक है पूर्वैं कबहू पाया नाहीं. **भावार्थ**–मिथ्यात्वकी अलट जीवनिकै अनादि कालतैं ऐसी है जो जीव अजीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान कबहू हूवा नाहीं. विना तत्त्वार्थश्रद्धान अहिंसाधर्मकी प्राप्ति कैसैं होय ? ।

आगें कहे हैं कि अलब्धपूर्व धर्मकूं पायकरि केवल पुण्यका ही आशय करि न सेवणा,—

एदे दहप्पयारा पावकम्मस्स णासिया भणिया ।
पुण्णस्स य संजणया पर पुण्णत्थं ण कायव्वा ॥ ४०८ ॥

एते दशप्रकाराः पापकर्मणः नाशकाः भणिताः ।
पुण्यस्य च संजनकाः परं पुण्यार्थं न कर्त्तव्याः ॥ ४०८ ॥

भावार्थ—ए दश प्रकार धर्मके भेद कहे, ते पापकर्मके तौ नाश करनेवाले कहे बहुरि पुण्य कर्मके उपजावन हारे कहे हैं परन्तु केवल पुण्यहीका अर्थ प्रयोजनकरि नाहीं अंगीकार करने. **भावार्थ**—सातावेदनी शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र तौ पुण्यकर्म कहे हैं. अर च्यारि घातिकर्म अर असातावेदनी अशुभनाम अशुभआयु अशुभगोत्र पापकर्म कहे हैं सो दशलक्षण धर्मकूं पापका नाश करनेवाला पुण्यका उपजावनहारा कह्या. तहां केवल पुण्य उपजावनेका अभिप्राय राखि इनिकूं न सेवणें जातें पुण्य भी बंध ही है. ए धर्म तौ पाप जो घाति कर्म ताके नाश करनेवाला है. अर अघातिमें अशुभ प्रकृति हैं तिनिका नाश करै है. अर पुण्य कर्म है ते संसारके अभ्युदयकूं देहैं सो इनितें तिसका भी व्यवहार अपेक्षा बंध होय है तौ स्वयमेव होय ही है. तिसकी बांछा करणा तौ संसारकी बांछा करना है. सो यह तौ निदान भया, मोक्षका अर्थीके यह होय नाहीं. जैसें किसाण खेती नाजके अर्थ करै है ताकै घास स्वयमेव होय है. ताकी बांछा काहेकूं करै? मोक्षके अर्थीकूं पुण्यबंधकी बांछा करना योग्य नाहीं ।

पुण्णं पि जो समिच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि ।
पुण्णं सग्गइ हेउं पुण्णखयेणेव णिव्वाणं ॥ ४०९ ॥

पुण्यं अपि यः समिच्छति संसारः तेन ईहितः भवति ।
पुण्यं सद्गतिहेतुः पुण्यक्षयेण एव निर्वाणम् ॥ ४०९ ॥

भावार्थ—जो पुण्यकूं भी चाहै है तिस पुरुषनें संसार चाह्या. जातें पुण्य है सो सुगतिका बंधका कारण है अर मोक्ष है सो भी पुण्यका भी क्षयकरि होय है. **भावार्थ**—पुण्यतें सुगति होय है. सो जानैं पुण्य चाह्या तिसनैं संसार चाह्या सुगति है सो संसार ही है. मोक्ष तौ पुण्यका भी क्षय भये होय है. सो मोक्षका अर्थीकूं पुण्यकी बांछा करणा योग्य नाहीं ।

जो अहिलसेदि पुण्णं सकसाओ विसयसोक्खतह्णाए ।
दूरे तस्स विसोही विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ॥ ४१० ॥

य: अभिलषति पुण्यं सकषायः विषयसौख्यतृष्णया ।
दूरे तस्य विशुद्धिः विशुद्धिमूलानि पुण्यानि ॥ ४१० ॥

भाषार्थ—जो कषायसहित भया संता विषयसुखकी तृष्णाकरि पुण्यकी अभिलाषा करै है ताकै विशुद्धता मंदकषायके अभावकरि दूर वर्त्तै है. बहुरि पुण्य कर्म है सो विशुद्धता है मूल कारण जाका, ऐसा है. भावार्थ—जो विषयनिकी तृष्णाकरि पुण्यकूं चाहै है सो तीव्र कषाय है. अर पुण्यबंध होय सो मंदकषायरूप विशुद्धितातैं होय है सो पुण्य चाहै ताकै आगामी पुण्यबंध भी नाहीं होय है, निदानमात्र फल होय तौ होय ।

पुण्णासए ण पुण्णं जदो णिरीहस्स पुण्णसंपत्ती ।
इय जाणिऊण जइणो पुण्णो वि म आयरं कुणह ॥ ४११ ॥

पुण्याशया न पुण्यं यतः निरीहस्य पुण्यसम्प्राप्तिः ।
इति ज्ञात्वा यतिनः पुण्ये अपि मा आदरं कुरुध्वम् ॥ ४११ ॥

भाषार्थ—जातैं पुण्यकी बांछाकरि तौ पुण्यबंध नाहीं होय है अर बांछा रहित पुरुषकै पुण्यका बंध होय है. तातैं भो यतीश्वर हो! ऐसा जाणिकरि पुण्य विषै भी बांछा आदर मति करौ. भावार्थ—इहां मुनिजनकूं उपदेश कह्या है जो पुण्यकी बांछातैं पुण्यबंध नाहीं पुण्य तौ आशा मिटे बंधै है तातैं आशा पुण्यकी भी मति करौ अपने स्वरूपकी प्राप्तिकी आशा करौ ।

पुण्णं बंधदि जीवो मंदकसाएहि परिणदो संतो ।
तह्मा मंदकसाया हेऊ पुण्णस्स ण हि बंछा ॥ ४१२ ॥

पुण्यं बध्नाति जीवः मन्दकषायैः परिणतः सन् ।
तस्मात् मन्दकषाया हेतुः पुण्यस्य न हि बांछा ॥ ४१२ ॥

भाषार्थ—जातैं जीव है सो मंदकषायरूप परिणया संता पुण्यकूं बांधै है. तातैं पुण्यबंधका कारण मंदकषाय है, बांछा पुण्यबन्धका कारण नाहीं है. पुण्यबंध मंदकषायतैं होय है, अर याकी बांछा है सो तीव्र कषाय है. तातैं बांछा न करणी. निर्वांछक पुरुषकै पुण्यबंध होय है. यह लौकिक भी कहै है जो चाह करै ताकूं किछू मिलै नाहीं. विना चाहिवालेकूं बहुत मिलै है. तातैं बांछाका तौ निषेध ही है. इहां कोई पूछै अध्यात्म ग्रंथनिमैं तौ पुण्यका निषेध बहुत कीया अर पुराणनिमैं पुण्यहीका अधिकार है सो हम तौ यह जाणै है संसारमैं पुण्य ही बडा है, याहीतैं तौ इहां इन्द्रियनिके सुख मिलै हैं याहीतैं मनुष्य पर्याय, भली संगति, भला शरीर मोक्ष साधनेके उपाय मिलै हैं पापतैं नरक नि-

गोद जाय तब मोक्षका भी साधन कहां मिलै? तातैं ऐसैं पुण्यकी बांछा क्यों न कीजिये? ताका समाधान-यह कह्या सो तौ सत्य है परन्तु भोगनिके अर्थ केवल पुण्यकी बांछाका अत्यन्त निषेध है भोगनिके अर्थ पुण्यकी बांछा करै ताकै प्रथम तौ सातिशय पुण्य बंधै ही नाहीं, अर इहां तपश्चरणादिककरि किछू पुण्यबांधि भोग पावै, तहां अति तृष्णातैं भोगनिकूं सेवै तब नरक निगोद ही पावै अर बंध मोक्षके स्वरूप साधनेके अर्थ पुण्य पावै ताका निषेध है नाहीं पुण्यतैं मोक्षसाधनेकी सामग्री मिलै ऐसा उपाय राखै तौ तहां परंपराय मोक्षहीकी बांछा भई, पुण्यकी तौ बांछा न भई. जैसें कोई पुरुष भोजन करनेकी बांछाकरि रसोईकी सामग्री भेली करै तिनिकी बांछा पहली होय तौ भोजनहीकी बांछा कहिये. बहुरि भोजनकी बांछा विना केवल सामग्रीहीकी बांछा करै तौ सामग्री मिलै भी प्रयास मात्र ही भया. किछू फल तौ न भया. ऐसें जानना. पुराणनिमैं पुण्यका अधिकार है सो भी मोक्षहीकै अर्थि है संसारका तौ तहां भी निषेध ही है ।

आगैं दश लक्षण धर्म है सो दया प्रधान है अर दया है सोई सम्यक्त्वका मुख्य चिह्न है जातैं सम्यक्त्व है सो जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष इनि तत्त्वार्थनिके ज्ञान पूर्वक श्रद्धान स्वरूप है. सो यह होय तब सर्व जीवनिकूं आप समान जाणै ही तिनिकै दुःख होय तब आपकी ज्यों जाणै. तब तिनिकी करुणा होय ही. अर अपना शुद्ध स्वरूप जाणै कषायनिकूं अपराध दुःखरूप जाणै इनितैं अपना घात जाणै तब आपकी दया कषायभावके अभावकूं मानै ऐसैं अहिंसाकूं धर्म जाणै हिंसाकूं अधर्म जानै ऐसा श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व है. ताकै निःशंकितकूं आदि देकरि आठ अंग हैं. तिनिकूं जीव दया ही परि लगाय कहै हैं. तहां प्रथम निःशंकितकूं कहै हैं,—

किं जीवदया धम्मो जण्णे हिंसा वि होदि किं धम्मो ।
इच्चेवमादिसंका तदकरणं जाणि णिस्संका ॥ ४१३ ॥

किं जीवदया धर्मः यज्ञे हिंसा अपि भवति किं धर्मः ।
इत्येवमादिशङ्का तदकरणं जानीहि निःशङ्कः ॥ ४१३ ॥

भाषार्थ—यह विचारै जो कहा जीव दया धर्म है कि यज्ञविषै पशूनिका वधरूप हिंसा होय है सो धर्म है? इत्यादिक धर्मविषै संशय होय सो शंका है. याका न करणां सो निःशंका है. भावार्थ—इहां आदि शब्दतैं कहा दिगम्बर यतीनिहीकूं मोक्ष है. कि तापस पंचाग्नि आदि तप करै तिनिकूं भी है अथवा

दिगम्बरकू ही मोक्ष है कि स्वेताम्बरकू है अथवा केवली कवलाहार करै है कि नाहीं करै है अथवा स्त्रीनिकूं मोक्ष है कि नाहीं अथवा जिनदेव वस्तुकूं अनेकान्त कह्या है सो सत्य है कि असत्य है ऐसी आशंका न करै सो निःशंकित अंग है।

दयभावो वि य धम्मो हिंसाभावो ण भण्णदे धम्मो।
इदि संदेहाभावो णिस्संका णिम्मला होदि॥ ४१४॥

दयाभाव. अपि च धर्मः हिंसाभावः न भण्यते धर्मः।
इति सन्देहाभावः निःशंका निर्मला भवति॥ ४१४॥

भावार्थ–निश्चयतें दयाभाव ही धर्म है हिंसाभाव धर्म न कहिये ऐसें निश्चय भये सन्देहका अभाव होय सो ही निर्मल निःशंकित गुण है. **भावार्थ**–अन्यमतीनें मान्या जो विपरीत देव धर्म गुरुका तथा तत्त्वका स्वरूप ताका सर्वथा निषेधकरि जिनमतका कह्या श्रद्धान करना सो निःशंकित गुण है शंका रहै जेतें श्रद्धान निर्मल होय नाहीं।

आगें निःकांक्षित गुणकूं कहै हैं,—

जो सग्गसुहणिमित्तं धम्मं णायरदि दूसहतवेहिं।
मुक्खं समीहमाणो णिक्कंक्खा जायदे तस्स॥ ४१५॥

यः स्वर्गसुखनिमित्तं धर्मं न आचरति दुःसहतपोभिः।
मोक्षं समीहमानः निःकाङ्क्षा जायते तस्य॥ ४१५॥

भावार्थ–जो सम्यग्दृष्टी दुद्धर तपकरि भी स्वर्गसुखके अर्थ धर्मकूं आचरण न करै तिसकै निःकांक्षित गुण होय है. कैसा है तिस दुद्धर तपकरि मोक्षकी ही वांछा करता संता है. **भावार्थ**–जो धर्मकूं आचरण करै दुद्धर तप करै सो मोक्षहीकै अर्थ करै स्वर्ग आदिके सुख न चाहै ताकै निःकांक्षित गुण होय है।

आगें निर्विचिकित्सा गुणकूं कहै हैं,—

दहविहधम्मजुदाणं सहावदुग्गंधअसुइदेहेसु।
जं णिंदणं ण कीरइ णिव्विदिगिंछा गुणो सो हु॥ ४१६॥

दशविधधर्मयुतानां स्वभावदुर्गन्धाशुचिदेहेषु।
यत् निन्दनं न क्रियते निर्विचिकित्सागुणः सः स्फुटं॥ ४१६॥

भावार्थ–जो दशप्रकारके धर्मकरि संयुक्त जे मुनिराज तिनिका देह सो प्रथम तौ देहका स्वभाव ही करि दुर्गंध अशुचि है बहुरि स्नानादि संस्कारके अभावतें बाह्यमें विशेषकरि अशुचि दुर्गंध दीखै है ताकी अवज्ञा न करै सो निर्विचि-

कित्सा गुण है. भावार्थ–सम्यग्दृष्टी पुरुषकी प्रधान दृष्टि सम्यक्त्वज्ञानचारित्रगुणनि परि पडै है देह तौ स्वभाव ही करि अशुचि दुर्गंध है तातैं मुनिराजनिकी देहकी तरफ कहा देखै ? तिनिकै रत्नत्रयकी तरफ देखै तब काहेकूं गिलानि आवै. यह ग्लानि न उपजाना सो ही निर्विचिकित्सा गुण है. जाकै सम्यक्त्व गुण प्रधान न होय ताकी दृष्टि पहली देहपरि पडै तब ग्लानि उपजै तब यह गुण न होय है ।

आगें अमूढदृष्टि गुणकूं कहै हैं,—

भयलज्जालाहादो हिंसारंभो ण मण्णदे धम्मो ।
जो जिणवयणे लीणो अमूढदिट्ठी हवे सो हु ॥ ४१७॥

भयलज्जालाभात् हिंसारम्भः न मन्यते धर्मः ।
यः जिनवचने लीनः अमूढदृष्टिः भवेत् सः स्फुटं ॥ ४१७ ॥

भाषार्थ–जो भयकरि तथा लज्जाकरि तथा लाभकरि हिंसाके आरंभकूं धर्म नाहीं मानै, सो पुरुष अमूढदृष्टिगुण संयुक्त है. कैसा है जिनवचनविषै लीन है भगवाननें धर्म अहिंसा ही कह्या है ऐसी दृढ श्रद्धा युक्त है. भावार्थ–अन्यमती यज्ञादिक हिंसा धर्म थापै है ताकूं राजाकै भयतैं तथा काहू व्यंतरके भयतैं तथा लोककी लज्जातैं तथा किछु धनादिकके लाभतैं इत्यादि अनेक कारण हैं तिनितैं धर्म न मानैं ऐसी श्रद्धा राखै जो धर्म तौ भगवान अहिंसा ही कह्या है ताकै अमूढदृष्टि गुण है. इहां हिंसारंभकै कहनेमैं हिंसाके प्ररूपक देव शास्त्र गुरु आदिविषै भी मूढदृष्टि न होय है ऐसा जानना ।

आगें उपगूहन गुणकूं कहै हैं,—

जो परदोसं गोवदि णियसुकयं णो पयासदे लोए ।
भवियव्वभावणरओ उवगूहणकारओ सो हु ॥ ४१८ ॥

यः परदोषं गोपायति निजसुकृतं नो प्रकाशयते लोके ।
भवितव्यभावनारतः उपगूहनकारकः सः स्फुटं ॥ ४१८ ॥

भाषार्थ–जो सम्यग्दृष्टी परके दोषकूं तौ गोपै ढाकै बहुरि अपना सुकृत कहिये पुण्य गुण लोकविषै प्रकाशै नाहीं. कहता न फिरै. बहुरि ऐसी भावनामैं लीन रहै जो भवितव्य है सो होय है तथा होयगा सो उपगूहन गुण करनेवाला है. भावार्थ–सम्यग्दृष्टीकै ऐसी भावना रहै है जो कर्मका उदय है तिस अनुसार मेरे लोकमैं प्रवृत्ति है सो होणी है सो होय है. ऐसी भावनातैं अपना गुणको प्रकाशना फिरै नाहीं, परके दोष पगट करै नाहीं, बहुरि साधर्मी जन तथा

पूज्य पुरुषनिमें कोई कर्मके उदयतें दोष लागै तो ताकूं छिपावै, उपदेशादिकरि दोष छुडावै, ऐसें न करै जामें विनिकी निन्दा होय, धर्मकी निंदा होय, धर्म धर्मात्मामैंसूं दोषका अभाव करना है सो छिपावना भी अभाव ही करना है. जाकूं लोक न जानै सो अभाव तुल्य ही है ऐसें उपगूहन गुण होय है ।

आगें स्थितिकरण गुणकूं कहै हैं,—

धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि ।
अप्पाणं पि सुदिढयदि ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥ ४१९ ॥

धर्मातः चलमानं यः अन्यं संस्थापयति धर्मे ।
आत्मानं अपि सुदृढयति स्थितिकरणं भवति तस्य एव ॥ ४१९ ॥

भाषार्थ—जो अन्यकूं धर्ममें चलायमान होतेकूं धर्मविषै स्थापै तथा अपने आत्माकूं भी चलनेतें दृढ करै तिसकै निश्चयतें स्थितिकरण गुण होय है. भावार्थ—धर्मतें चिगनेके अनेक कारण हैं सो निश्चय व्यवहाररूप धर्मतें परकूं तथा आपकूं चिगता जाणि तथा उपदेशतें तथा जैसें होय तैसें दृढ करै, ताकै स्थितिकरण गुण होय है।

आगें वात्सल्य गुणकूं कहै हैं,—

जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।
पियवयणं जंपंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥॥ ४२० ॥

यः धार्मिकेषु भक्तः अनुचरणं करोति परमश्रद्धया ।
प्रियवचनं जल्पन् वात्सल्यं तस्य भव्यस्य ॥ ४२० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव धार्मिक कहिये सम्यग्दृष्टी श्रावक मुनिनिविषै तौ भक्तिवान् होय, वहुरि तिनिकै अनुसार प्रवर्त्तै, परम श्रद्धाकरि प्रियवचन बोलता संता प्रवर्त्तै, तिस भव्यकै वात्सल्यगुण होय है. भावार्थ—वात्सल्य गुणमें धर्मानुराग प्रधान है उत्कृष्ट श्रद्धाकरि धर्मात्मा पुरुषनिसूं जाकै भक्ति अनुराग होय तिनिमें प्रियवचन सहित प्रवर्त्तै, तिनिकूं भोजन गमन आगमन आदिकी क्रियाका अनुचर होय प्रवर्त्तै, गाय वछरेकीसी प्रीति राखै ताकै वात्सल्य गुण होय है ।

आगें प्रभावना गुणकूं कहै हैं,—

जो दसभेयं धम्मं भव्वजणाणं पयासदे विमलं।
अप्पाणं पि पयासदि णाणेण पहावणा तस्स ॥ ४२१ ॥

यः दशभेदं धर्मं भव्यजनानां प्रकाशयति विमलं ।
आत्मानं अपि प्रकाशयति ज्ञानेन प्रभावना तस्य ॥ ४२१ ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी दशभेदरूप धर्मकूं भव्य जीवनिके निकट अपने ज्ञानकरि प्रगट करै तथा अपनी आत्माकूं दशप्रकार धर्मकरि प्रकासै ताकै प्रभावना गुण होय है. भावार्थ—धर्मका विख्यात करना सो प्रभावना गुण है. सो उपदेशादिककरि तौ परके विषै धर्म प्रगट करै. अर अपना आत्माकूं दशविध धर्म अंगीकारकरि कर्म कलंकतैं रहितकरि प्रगट करै ताकै प्रभावना गुण होय है।

जिणसासणमाहप्पं वहुविहजुत्तीहिं जो पयासेदि ।
तह तिव्वेण तवेण य पहावणा णिम्मला तस्स ॥ ४२२ ॥

जिनशासनमाहात्म्यं बहुविधयुक्तिभिः यः प्रकाशयति ।
तथा तीव्रेण तपसा च प्रभावना निर्मला तस्य ॥ ४२२ ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी पुरुष अपने ज्ञानके बलतैं अनेक प्रकार युक्तिकरि वादीनिका निराकरणकरि तथा न्याय व्याकरण छन्द अलंकार साहित्य विद्याकरि वक्तापणा वा शास्त्रनिकी रचनाकरि तथा अनेकप्रकार युक्तिकरि वादीनिका निराकरणकरि तथा अनेक अतिशय चमत्कार पूजा प्रतिष्ठा तथा महान् दुद्धर तपश्चरणकरि जिनशासनका माहात्म्य प्रगट करै ताकै प्रभावना गुण निर्मल होय है. भावार्थ—यह प्रभावना गुण बड़ा गुण है यातैं अनेक अनेक जीवनिकै धर्मकी रुचि श्रद्धा उपजि आवै है तातैं सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकै अवश्य होय है ।

आगैं निःशंकित आदि गुण किस पुरुषकै होय ताकूं कहै हैं,—

जो ण कुणदि परतत्तिं पुण पुण भावेदि सुद्धमप्पाणं ।
इंदियसुहणिरवेक्खो णिस्संकाईगुणा तस्स ॥ ४२३ ॥

यः न करोति परतातिं पुन पुनः भावयति शुद्धं आत्मानं ।
इन्द्रियसुखनिरपेक्षः निःशङ्कादिगुणाः तस्य ॥ ४२३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी निंदा न करै बहुरि शुद्ध आत्माकूं बार बार भावै बहुरि इन्द्रिय सुखकी अपेक्षा वांछा रहित होय ताकै निःशंकित आदि अष्ट गुण अहिंसा धर्मरूप सम्यक्त्व होय है. भावार्थ—इहां तीन विशेषण है तिनिका तात्पर्य यह है जो परकी निंदा करै ताकै निर्विचिकित्सा अर उपगूहन स्थितिकरण गुण कैसैं होय तथा वात्सल्य कैसैं होय तातैं परका निंदक न होय तब ये चार गुण होय हैं. बहुरि जाकै अपना आत्माका वस्तु स्वरूपमैं शंका संदेह होय तथा मूढ दृष्टि होय सो अपने आत्माकूं वारंवार शुद्ध कैसैं भावै तातैं शुद्ध

आपकूं भावै ताहीकै निःशंकित तथा अमूढदृष्टि गुण होय. तथा प्रभावना भी ताहीकै होय. बहुरि जाकै इन्द्रियसुखकी बांछा होय ताकै निःकांक्षित गुण नाहीं होय. इन्द्रिय सुखकी बांछातैं रहित भये ही निःकांक्षित गुण होय. ऐसैं आठ गुणके संभवनके तीन विशेषण हैं।

आगैं ए कहे हैं ये आठ गुण जैसें धर्मविषै कहे तैसें देवगुरु आदिविषैभी जानने,—

णिस्संकापहुदिगुणा जह धम्मे तह य देवगुरुतच्चे ।
जाणेहि जिणमयादो सम्मत्तविसोहया एदे ॥ ४२४ ॥

निःशङ्काप्रभृतिगुणाः यथा धर्मे तथा च देवगुरुतत्त्वेषु ।
जानीहि जिनमतात् सम्यक्त्वविशुद्धिकराः एते ॥ ४२४ ॥

भाषार्थ—ए निःशंकित आदि आठ गुण कहे ते धर्मविषै प्रकट होते कहे तैसें हीं देवके स्वरूपविषै तथा गुरुके स्वरूपविषै तथा षड्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्त तत्त्व नव पदार्थनिके स्वरूपविषै होय हैं. तिनिकूं प्रवचन सिद्धान्ततैं जानने. ए आठ गुण सम्यक्त्वकूं निरतिचार विशुद्ध करनेवाले हैं. **भावार्थ**—देव गुरु तत्त्वविषै शंका न करणी, तिनिकी यथार्थ श्रद्धातैं इन्द्रिय सुखकी बांछा रूप कांक्षा न करणी, तिनिमें ग्लानि न ल्यावनी, तिनिविषै मूढदृष्टि न राखणी, तिनिके दोषनिका अभाव करना तथा तिनिका ढांकना, तिनिका श्रद्धान दृढ करना, तिनिकैं वात्सल्य विशेष अनुराग करना, तिनिकी महिमा प्रकट करनी ऐसैं आठ गुण इनिविषैं जानने. इनिकी कथा आगें सम्यग्दृष्टी भये तिनिकी जिनशास्त्रनितैं जाननी. अर ये आठों गुण सम्यक्त्वके अतीचार दूरिकरि निर्मल करने हारे हैं ऐसें जानना।

आगें इस धर्मके करनेवाला तथा जाननेवाला दुर्लभ है ऐसें कहे हैं,—

धम्मं ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कहवि कट्ठेण ।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥ ४२५ ॥

धर्मं न जानाति जीवः अथवा जानाति कथमपि कष्टेन ।
कर्तुं तदपि न शक्यते मोहपिशाचेन भोलवितः ॥ ४२५ ॥

भाषार्थ—या संसारमें प्रथम तौ जीव धर्मकूं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई प्रकार बड़ा कष्टकरि जो जाणै भी तौ मोहरूप पिशाचकरि भ्रमित किया हुवा करनेकूं समर्थ नाहीं होय है. **भावार्थ**—अनादिसंसारतैं मिथ्यात्वकरि भ्रमित जो यह प्राणी प्रथम तौ धर्मकूं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई काललब्धितैं गुरुके संयोगतैं ज्ञानावरणीके क्षयोपशमतैं जानै भी तौ ताका करना दुर्लभ है।

आगें धर्मका ग्रहणका माहात्म्य दृष्टान्तकरि कहै हैं,—

जह जीवो कुणइ रइं पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु ।
तह जइ जिणिंदधम्मे तो लीलाए सुहं लहदि ॥ ४२६ ॥

यथा जीवः करोति रतिं पुत्रकलत्रेषु कामभोगेषु ।
तथा यदि जिनेन्द्रधर्मे तत् लीलया सुखं लभते ॥ ४२६ ॥

भाषार्थ–जैसें यह जीव पुत्र कलत्रविषै तथा काम भोगविषै रति प्रीति करै है तैसें जो जिनेन्द्रके वीतराग धर्मविषै करै तौ लीला मात्र शीघ्र कालमैं ही सुखकूं प्राप्त होय है. **भावार्थ**–जैसी या प्राणीके संसारकेविषै तथा इन्द्रियनिके विषयनिकेविषै प्रीति है तैसी जो जिनेश्वरके दश लक्षण धर्म स्वरूप जो वीतराग धर्मताविषै प्रीति होय तौ थोडेसे ही कालविषै मोक्षकूं पावै ।

आगें कहै हैं जो जीव लक्ष्मी चाहै है सो धर्मविना कैसें होय,—

लच्छिं वंछेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयरं कुणई ।
वीएण विणा कुत्थ वि किं दीसदि सस्सणिप्पत्ती ॥ ४२७ ॥

लक्ष्मीं वाञ्छति नरः नैव सुधर्मेषु आदरं करोति ।
बीजेन विना कुत्र अपि किं दृश्यते शस्यनिष्पत्तिः ॥ ४२७ ॥

भाषार्थ–यह जीव लक्ष्मीकूं चाहै है बहुरि जिनेन्द्रका कह्या मुनि श्रावक धर्मविषै आदर प्रीति नाहीं करै है तौ लक्ष्मीका कारण तौ धर्म है. तिस विना कैसें आवै? जैसें बीजविना धान्यकी उत्पत्ति कहूं दीखै है? नाहीं दीखै है. **भावार्थ**–बीज विना धान्य न होय तैसें धर्मविना सम्पदा न होय यह प्रसिद्ध है ।

आगें धर्मात्मा जीवकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

जो धम्मत्थो जीवो सो रिउवग्गे वि कुणदि खमभावं ।
ता परदव्वं वज्जइ जणणिसमं गणइ परदारं ॥ ४२८ ॥

यः धर्मस्थः जीवः सः रिपुवर्गे अपि करोति क्षमाभावं ।
तावत् परद्रव्यं वर्जयति जननीसमं गणयति परदारान् ॥ ४२८ ॥

भाषार्थ–जो जीव धर्मविषै तिष्टै है सो वैरीनिके समूहविषै क्षमाभाव करै है बहुरि परका द्रव्यकूं तजै है अंगीकार नाहीं करै है. बहुरि परकी स्त्रीकूं कन्या माता बहण समान गिणै है ।

ता सव्वत्थ वि कित्ती ता सव्वस्स वि हवेइ वीसासो ।
ता सव्वं पिय भासइ ता सुद्धं माणसं कुणई॥ ४२९ ॥

तावत् सर्वत्र अपि कीर्तिः तावत् सर्वस्य अपि भवति विश्वासः।
तावत् सर्वं प्रियं भाषते तावत् शुद्धं मानसं करोति ॥ ४२९ ॥

भावार्थ–जो जीव धर्मविषै तिष्ठै है तो सर्व लोकमें ताकी कीर्त्ति होय है. बहुरि ताका सर्वलोक विश्वास करै है. बहुरि सो पुरुष सर्वकूं प्रियवचन कहै है जातैं कोई दुःख न पावै है. बहुरि सो पुरुष अपने अर परके मनकूं शुद्ध उज्वल करै है कोईकै यासूं कालिमा न रहै. तैसें याकै भी कोईसूं कालिमा न रहै है. **भावार्थ**–धर्म सर्वप्रकार सुखदाई है।

आगें धर्मका माहात्म्य कहै है.

उत्तमधम्मेण जुदो होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तमधम्मेण संभवदि ॥ ४३० ॥

उत्तमधर्मेणयुतः भवति तिर्यञ्चः अपि उत्तमः देवः।
चाण्डालः अपि सुरेन्द्रः उत्तमधर्मेण संभवति ॥ ४३० ॥

भावार्थ–सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि संयुक्त जीव है सो तिर्यंच भी देव पदईकूं पावै है. बहुरि चांडाल है सो भी देवनिका इन्द्र सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि होय है।

अग्गी वि य होदि हिमं होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं।
जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥ ४३१ ॥

अग्निः अपि च भवति हिमं भवति भुजङ्गः उत्तम रत्न।
जीवस्य सुधर्मात् देवा अपि च किङ्कराः भवन्ति ॥ ४३१ ॥

भावार्थ–या जीवकै उत्तम धर्मतें अग्नि तौ हिम (शीतल पाला) हो जाय है. बहुरि सर्प है सो उत्तम रत्ननिकी माला हो जाय है बहुरि देव हैं ते भी किंकर दास होय हैं। उक्तं च गाथा,

तिक्खं खग्गं माला दुज्जयरिउणो सुहंकरा सुयणा।
हालाहलं पि अमियं महापया संपया होदि ॥ १ ॥

तीक्ष्णं खड्गं माला दुर्जयरिपुवः सुखङ्कराः सुजनाः।
हालाहलं अपि अमृतं महापदा सम्पदा भवति ॥ १ ॥

भावार्थ–उत्तम धर्म सहित जीवकै तीक्ष्ण खड्ग सो फूलमाला होय जाय है. बहुरि दुर्जय इसा जो जीत्या न जाय रिपु जो वैरी सो भी सुखका करवा

वाला सुजन कहिये मित्र समान होय है. बहुरि हालाहल जो जहर सो भी अमृतसमान परिणवै है, बहुत कहा कहिये महान् बड़ी आपदा भी संपदा होय जाय है।

अलियवयणं पि सच्चं उज्जमरहिए वि लच्छिसंपत्ती।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि ॥४३२॥

अलीकवचनं अपि सत्यं उद्यमरहिते अपि लक्ष्मिसंप्राप्तिः।
धर्मप्रभावेन नरः अनय अपि सुखंकरः भवति ॥ ४३२ ॥

भावार्थ–धर्मके प्रभावकरि जीवके झूंठ वचन भी सत्य वचन होय हैं. बहुरि उद्यम रहितकै भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होय है बहुरि अन्याय कार्य भी सुखका करनहारा होय है. भावार्थ–इहां यह अर्थ जानना जो पूर्वे धर्म सेया होय तौ ताके प्रभावतैं इहां झूंठ बोलै सो भी सांची होय जाय. उद्यमविना भी संपत्ति मिलै, अन्याय चालै तौ भी सुखी रहै. अथवा कोई झूंठ वचनका तूदा लगावै तौ धीजमें सांचा होय अन्याय कीया लोक कहै है तौ न्यायवालेकी सहाय ही होय ऐसा भी जानना।

आगे धर्मरहित जीवकी निंदा कहै हैं,

देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि।
चक्की वि धम्मरहिओ णिवडइ णरए ण संपदे होदि ॥ ४३३ ॥

देवः अपि धर्मत्यक्तः मिथ्यात्ववशेन तरुवरः भवति।
चक्री अपि धर्मरहितः निपतति नरके न सम्पदे भवति ॥ ४३३ ॥

भावार्थ–धर्मकरि रहित जीव है सो मिथ्यात्वका वशकरि देव भी वनस्पतिका जीव एकेन्द्रिय आय होय है. बहुरि चक्रवर्त्ती भी धर्मकरि रहित होय तब नरकविषै पड़ै है जातैं पाप है सो संपदाके अर्थ नाहीं है।

धम्मविहीणो जीवो कुणइ असज्झं पि साहसं जइवि।
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ॥ ४३४ ॥

धर्मविहीनः जीवः करोति असह्यं अपि साहसं यद्यपि।
तत न अपि प्राप्नोति इष्टं सुष्ठु अनिष्टं परं लभते ॥ ४३४ ॥

भावार्थ–धर्मरहित जीव है सो यद्यपि बड़ा असहने योग्य साहस पराक्रम करै तौऊ ताकै इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होय केवल उलटा अतिसैंकरि

अनिष्टकूं प्राप्त होय है. भावार्थ—पापके उदयतैं भली करतैं बुरा होय है यह जगप्रसिद्ध है।

इय पच्चक्खं पिच्छिय धम्माहम्माण विविहमाहप्पं।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरह ॥ ४३५ ॥

इति प्रत्यक्षं दृष्ट्वा धर्माधर्मयोः विविधमाहात्म्यं।
धर्मं आचरत सदा पापं दूरेण परिहरत ॥ ४३५ ॥

भाषार्थ—हे प्राणी हो या प्रकार धर्म अर अधर्मका अनेकप्रकार माहात्म्य प्रत्यक्ष देखिकरि तुम धर्मकूं आदरौ अर पापकूं दूरहीतैं परिहरौ. **भावार्थ**—आचार्य दशप्रकार धर्मका स्वरूप कहिकरि अधर्मका फल दिखाया. अब इहां यह उपदेश कीया है जो हे प्राणी हौ जो प्रत्यक्ष धर्म अधर्मका फल लोकविषै देखि धर्मकूं आदरौ पापकूं परिहरौ. आचार्य बडे उपकारी हैं निःकारण आपकूं किछू चाहिये नाहीं. निस्पृह भयेसंते जीवनिके कल्याणहीके अर्थ वारंवार कहिकरि प्राणीनिकौं चेत करावै है, ऐसे श्रीगुरु वंदने पूजने योग्य हैं. ऐसें यतिधर्मका व्याख्यान किया।

॥ दोहा ॥

मुनिश्रावकके भेदतैं, धर्म दोय परकार।
ताकूं मुनि चिंतवो सतत. गहि पावौ भवपार ॥ १२ ॥

इति धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

अथ द्वादश तपांसि लिख्यते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिकाकूं कहता संता आचार्य बारहप्रकार तपके विधानका निरूपण करै हैं,—

बारसभेओ भणिओ णिज्जरहेऊ तवो समासेण।
तस्स पयारा एदे भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥ ४३६ ॥

द्वादशभेदं भणितं निर्जराहेतुः तपः समासेन।
तस्य प्रकाराः एते भण्यमानाः मन्तव्याः ॥ ४३६ ॥

भाषार्थ—तप है सो बारह प्रकार संक्षेपकरि जिनागमविषै कह्या है. कैसा है कर्म निर्जराका कारण है तिसके प्रकार आगें कहैंगे ते जानने **भावार्थ**—निर्जराका कारण तप है सो बारहप्रकार है. बाह्यके अनशन अवमोदर्य वृतपरिसंख्यान

रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं छः प्रकार. बहुरि अंतरंगका प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार. इनिका व्याख्यान अब करिये हैं तहां प्रथम ही अनशन नाम तपकूं च्यारि गाथाकरि कहै हैं,—

उवसमणे अक्खाणं उववासो वण्णिदो मुणिंदेहि ।
तह्मा भुंजंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥ ४३७ ॥

उपशमने अक्षाणां उपवासः वर्णितः मुनीन्द्रैः ।
तस्मात् भुञ्जमानाः अपि च जितेन्द्रियाः भवन्ति उपवासाः ॥ ४३७ ॥

भाषार्थ—मुनीन्द्र हैं तिनिनैं इन्द्रियनिका उपवास कहिये विषयनिमैं न जानैं देना मनकूं अपने आत्मस्वरूपविषै लगावणा सो उपवास कह्या है. तातैं जितेन्द्रिय हैं ते आहार करते भी उपवास सहित ही कहिये. **भावार्थ**—इन्द्रियका जीतना सो उपवास सो यतिगण भोजन करते भी उपवासे ही हैं जातैं इन्द्रियनिकूं वशीभूतकरि प्रवर्त्तै हैं ।

जो मणइंदियविजई इहभवपरलोयसोक्खणिरवेक्खो ।
अप्पाणे चिय णिवसइ सज्झायपरायणो होदि ॥ ४३८ ॥
कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एगदिणादिपमाणं तस्स तवो अणसणं होदि ॥ ४३९ ॥

यः मनः इन्द्रियविजयी इहभवपरलोकसौख्यनिरपेक्षः ।
आत्मनि च एव निवसति स्वाध्यायपरायणः भवति ॥ ४३८ ॥
कर्मणां निर्जरार्थं आहारं परिहरति लीलया ।
एकदिनादिप्रमाणं तस्य तपः अनशनं भवति ॥ ४३९ ॥

भाषार्थ—जो मनइन्द्रियनिका जीतनहारा है बहुरि इस भव परभवके विषयसुखनिविषै अपेक्षा रहित है वांछा नाहीं करै है बहुरि अपने आत्मस्वरूप ही विषै वसै है. अथवा स्वाध्यायविषै तत्पर है । बहुरि एक दिनकी मर्यादातैं कर्मनिकी निर्जराकै अर्थ क्रीड़ा कहिये लीलामात्र ही क्लेश रहित हर्षतैं आहारको छोड़ै है ताकै अनशन तप होय है. **भावार्थ**—उपवासका ऐसा अर्थ है जो इन्द्रिय मन विषयनिविषै प्रवृत्तितैं रहित होय आत्मामैं बसै सो उपवास है. सो इन्द्रियनिका जीतना विषयनिकी इसलोक परलोक संबंधी वांछा न करनी, कै तौ आत्मस्वरूपविषै लीन रहना कै शास्त्रके अभ्यास स्वाध्यायविषै मन लगावणा ए तौ उपवासविषै प्रधान हैं. बहुरि क्लेश न उपजै जैसैं क्रीड़ामात्र एक दिनकी मर्यादारूप आहारका त्याग करना ऐसैं उपवास नामा अनशन तप होय है ।

उववासं कुव्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो ।
तस्स किलेसो अवरं कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥ ४४० ॥

उपवासं कुर्वाणः आरम्भं यः करोति मोहतः ।
तस्य क्लेशः अपरं कर्मणां नैव निर्जरणं ॥ ४४० ॥

भाषार्थ—जो उपवास करता संता मोहतैं आरंभ गृहकार्यादिककूं करै है ताकै पहिलै तौ गृहकार्यका क्लेश था ही बहुरि दूसरा भोजनविना क्षुधा तृष्णाका क्लेश भया ऐसैं होतैं क्लेश ही भया कर्मका निर्जरण तौ न भया. **भावार्थ**—आहारकों तौ छोडै अर विषय कषाय आरंभकूं न छोड़ै ताकै आगैं तौ क्लेश था ही दूसरा क्लेश भूख तिसका भया ऐसे उपवासमैं कर्मकी निर्जरा कैसैं होय ? कर्मकी निर्जरा तौ सर्व क्लेश छोडि साम्यभाव करै होय है. ऐसा जानना।

आगैं अवमोदर्य तपकूं दोय गाथाकरि कहै हैं.—

आहारगिद्धिरहिओ चरियामग्गेण पासुगं जोग्गं ।
अप्पयरं जो भुंजइ अवमोदरियं तवं तस्स ॥ ४४१ ॥

आहारगृद्धिरहितः चर्यामार्गेण प्राशुकं योग्यं ।
अल्पतरं यः भुङ्क्ते अवमोदर्यं तपः तस्य ॥ ४४१ ॥

भाषार्थ—जो तपस्वी आहारकी अतिचाहरहित हूवा सूत्रोक्त चर्याका मार्गकरि योग्य प्राशुक आहार अतिशयकरि अल्प लै. तिसकै अवमोदर्य तप होय है. **भावार्थ**—मुनि आहारकै छियालीस दोष टालै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मल रहित प्राशुक योग्य भोजन लै हैं तौऊ ऊनोदर तप करै. तामैं अपने आहारके प्रमाणतैं थोड़ा लै, एक ग्रासतैं लगाय बत्तीस ग्रास ताईं आहारका प्रमाण कह्या है तामैं यथा इच्छा घटती लै सो अवमोदर्यतप है।

जो पुण कित्तिणिमित्तं मायाए मिट्ठभिक्खलाहट्ठं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं तस्स तवं णिप्फलं विदियं ॥ ४४२ ॥

यः पुनः कीर्त्तिनिमित्तं मायया मिष्टभिक्षालाभार्थं ।
अल्पं भुङ्क्ते भोज्यं तस्य तपः निष्फलं द्वितीयं ॥ ४४२ ॥

भाषार्थ—जो मुनि कीर्त्तिकै निमित्त तथा माया कपटकरि तथा मिष्ट भोजनकै लाभकै अर्थ अल्प भोजन करै है तपका नाम करै है ताकै तौ दूसरा अवमोदर्य तप निष्फल है. **भावार्थ**—जो ऐसा विचारै अल्प भोजन कीयेसूं मेरी कीर्त्ति होयगी. तथा कपटकरि लोककूं भुलावा दे किछू प्रयोजन साधनेके निमित्त तथा

यह विचारे जो थोड़ा भोजन कीये भोजन मिष्ट रससहित मिलेगा ऐसे अभिप्रायतें ऊनोदर तप करे तौ ताकै निष्फल है. यह तप नाहीं पाखंड है ।

आगें वृत्तिपरिसंख्यान तपकूं कहै हैं,—

एगादिगिहपमाणं किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।
भोज्जं पसुव्व भुंजइ वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥ ४४३ ॥

एकादिगृहप्रमाणं किं वा संकल्पकल्पितं विरसं ।
भोज्यं पशुवत् भुङ्क्ते वृत्तिप्रमाणं तपः तस्य ॥ ४४३ ॥

भावार्थ—जो मुनि आहारकूं उतरै तब पहले मनमें ऐसी मर्यादकरि चालै जो आज एक ही घर पहलै मिलेगा तौ आहार लेवेंगे नातर फिरि आवेंगे. तथा दोय घर तांई जांयगे तथा तीन घर तांई जांयगे ऐसे मर्याद करै. तथा एक रसताकी मर्याद करै तथा देनेवालेकी मर्याद करै तथा पात्रकी मर्याद करै ऐसा दातार ऐसी रीति ऐसे पात्रमें लेकरि देयगा तौ लेवेंगे. तथा आहारकी मर्याद करै सरस तथा नीरस तथा फलाणा अन्न मिलेगा तौ लेवेंगे इत्यादि वृत्तिकी संख्या गणना मर्यादा मनमें विचारि चालै तैसें ही मिलै तौ लेय अन्यथा न लेय. बहुरि आहार लेय तब पशु गऊ आदिकी ज्यों करै. जैसें गऊ इतउत देखै नाहीं चरनेहीकी तरफ देखै तैसें ले. तिसकै वृत्तिपरिसंख्यानतप है. **भावार्थ**—भोजनकी आशाका निरास करनेकूं यह तप है संकल्पमाफिक विधि मिलना दैवयोग है यह बड़ा कठिन तप महामुनि करै हैं ।

आगें रसपरित्यागतपकूं कहै हैं,—

संसारदुक्खतट्ठो विससमविसयं विचिंतमाणो जो ।
णीरसभोज्जं भुंजइ रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥ ४४४ ॥

संसारदुःखत्रस्त विषसमविषयं विचिन्तयन् यः ।
नीरसभोज्यं भुङ्क्ते रसत्यागः तस्य सुविशुद्धः ॥ ४४४ ॥

भावार्थ—जो मुनि संसार दुःखसूं तप्तायमान हुवा ऐसे विचार करता है जो इन्द्रियनिके विषय हैं ते विष सारिखे हैं विष खाये एकवार मरै है विषय सेये बहुत जन्म मरण होय हैं. ऐसा विचारि नीरस भोजन करै है ताकै रसपरित्याग तप निर्मल होय है. **भावार्थ**—रस छह प्रकारके हैं. घृत तैल दधि मिष्ट लवण दुग्ध ऐसें. बहुरि खाटा खारा मीठा कडुवा तीखा कषायला. ए भी रस कह्या

१ तथा चोक्तं मूलाचारे ।
खीर दधि सपि तेल गुड लवणाण च जं परिच्चयणं ।
तित्त कडु कसाय विमल मधुर रसाण च जं चयणं ॥ १ ॥

है. तिनिका जैसैं इच्छा होय तैसैं त्याग करै. एक ही रस छोडै दोय रस छोडै तथा सर्व ही छोडै ऐसैं रसपरित्याग तप होय है. इहां कोई पूछै रसत्यागकूं कोई जाणै नाहीं मनहीमैं त्याग करै तौ ऐसैं ही वृत्तिपरिसंख्यान है यामैं वामैं कहा विशेष? ताका समाधान, वृत्ति परिसंख्यानमैं तौ अनेक रीतिनिकी संख्या है इहां रसहीका त्याग है यह विशेष है. बहुरि यह भी विशेष है जो रसपरित्याग तौ बहुत दिनका भी होय ताकूं श्रावक जाणि भी जाय अर वृत्तिपरिसंख्यान बहुत दिनका होय नाहीं।

आगैं विविक्तशय्यासन तपकूं कहै हैं,—

जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्चयई।
अप्पा णिव्विसय सया तस्स तवो पंचमो परमो ॥ ४४५ ॥

यः रागद्वेषहेतुः आसनशय्यादिकं परित्यजति।
आत्मा निर्विषयः सदा तस्य तपः पञ्चमं परमं ॥ ४४५ ॥

भावार्थ—जो मुनि रागद्वेषके कारण जे आसन अर शय्या इनि आदिककूं छोडै बहुरि सदा अपने आत्मस्वरूपविषै वसै अर निर्विषय कहिये इन्द्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तिस मुनिकै पांचमा तप विविक्तशय्यासन उत्कृष्ट होय है. भावार्थ—आसन कहिये बैठनेका स्थान अर शय्या कहिये सोवनेका स्थान, आदि शब्दतैं मलमूत्रादिक क्षेपनेका स्थान, ऐसा होय जहां रागद्वेष न उपजै अर वीतरागता बधै ऐसा एकान्त स्थानक होय तहां बैठै सोवै. जातैं मुनिनिकूं अपना अपना स्वरूप साधना है इन्द्रिय विषय सेवने नाहीं है तातैं एकान्त स्थानक कहा है।

पूजादिसु णिरवेक्खो संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।
अब्भंतरतवकुसलो उवसमसीलो महासंतो ॥ ४४६ ॥
जो णिवसेदि मसाणे वणगहणे णिज्जणे महाभीमे।
अण्णत्थ वि एयंते तस्स वि एदं तवं होदि ॥ ४४७ ॥

पूजादिषु निरपेक्षः संसारशरीभोगनिर्विण्णः।
आभ्यन्तरतपःकुशलः उपशमशीलः महाशान्तः ॥ ४४६ ॥
यः निवसति स्मशाने वनगहने निर्जने महाभीमे।
अन्यत्र अपि एकान्ते तस्य अपि एतत् तपः भवति ॥ ४४७ ॥

भाषार्थ–जो महामुनि पूजा आदिविषै तौ निरपेक्ष है अपनी पूजा महिमादिक नाहीं चाहै है, बहुरि संसारदेहभोगसूं विरक्त है, बहुरि स्वाध्याय ध्यान आदि जे अंतरंग तप तिनिविषै प्रवीण है. ध्यानाध्ययनका निरंतर अभ्यास राखै है, बहुरि उपशमशील कहिये मंद कषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जाका, बहुरि महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है, ऐसा महामुनि मसाण भूमिविषै तथा गहन वनविषै तथा जहां लोक न प्रवर्त्तै, ऐसे निर्जनस्थानविषै तथा महाभयानक उद्यानविषै तथा अन्य भी ऐसा एकान्त स्थानविषै जो बसै ताकै निश्चय यह विविक्तशय्यासन तप होय है. भावार्थ–महामुनि विविक्तशय्यासन तप करै है सो ऐसें एकान्त स्थानकमें सोवै बैठै है जहां चित्तके क्षोभके करनहारे कछू भी पदार्थ न होय. ऐसे सूने घर गिरिकी गुफा वृक्षके मूल तथा स्वयमेव गृहस्थनिके बणाये उद्यानमें वस्तिकादिक देव मन्दिर तथा मसाणभूमि इत्यादिक एकान्त स्थानक होय तहां ध्यानाध्ययन करै है जातैं देहतैं तौ निर्ममत्व है विषयनितैं विरक्त है अपने आत्मस्वरूपविषै अनुरक्त है सो मुनि विविक्तशय्यासनतपसंयुक्त है।

आगें कायक्लेशतपकूं कहै हैं.—

दुस्सहउवसग्गजई आतावणसीयवायखिण्णो वि।
जो ण वि खेदं गच्छदि कायकिलेसो तवो तस्स ॥ ४४८ ॥

दुस्सहोपसर्गजयी आतापनशीतवातखिन्नः अपि।
यः न अपि खेदं गच्छति कायक्लेशं तपः तस्य ॥ ४४८ ॥

भाषार्थ–जो मुनि दुःसह उपसर्गका जीतनहारा आतापसीतबातकरि पीड़ित होय खेदकूं प्राप्त न होय, चित्तमें क्षोभ क्लेश न उपजै तिस मुनिकै कायक्लेश नामा तप होय है. भावार्थ–महामुनि ग्रीष्मकालमें तौ पर्वतके शिखर आदिविषै जहां सूर्यके किरणनिका अत्यन्त आताप होय तलैं भूमि शिलादिक तप्तायमान होय तहां आतापनयोग धारै हैं. बहुरि शीतकालमें नदी आदिके तटविषै चोड़ै जहां अति शीत पड़ै दाहतैं वृक्ष भी दाहे जांय तहां खड़े रहैं. बहुरि चतुर्मासमें वर्षा बरसै प्रचंड पवन चालै दंशमशक काटैं ऐसे समय वृक्षके तलैं योग धारै हैं. तथा अनेक विकट आसन करै हैं ऐसैं अनेक कायक्लेशके कारण मिलावै है अर साम्यभावतैं चिगै नाहीं हैं. जातैं अनेक प्रकारके उपसर्गके जीतनहारे हैं तातैं चित्तविषै जिनकै खेद नाहीं उपजै है. अपने स्वरूपके ध्यानमैं लगे रहैं तिनिकै कायक्लेशनामा तप होय है. जिनिकै काय तथा इन्द्रियनिसूं ममत्व

होय है तिनिकै चित्तमें क्षोभ हो है ए मुनि सर्वतें निस्पृह वर्त्ते है तिनिकूं काहेका खेद होय. ऐसें छह प्रकार बाह्यतपका निरूपण किया.

आगें छहप्रकार अंतरंग तपका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही प्रायश्चित्त-नामा तपकूं कहै हैं,—

दोसं ण करेदि सयं अण्णं पि ण कारएदि जो तिविहं।
कुव्वाणं पि ण इच्छइ तस्स विसोही परो होदि ॥ ४४९ ॥

दोषं न करोति स्वयं अन्यं अपि न कारयति य त्रिविधं।
कुर्वाणं अपि न इच्छति तस्य विशुद्धिः परा भवति ॥ ४४९ ॥

भाषार्थ–जो मुनि आप दोष न करै अन्य पास दोष न करावै दोष करता होय ताकूं इष्ट भला न जाणै तिसकै उत्कृष्ट विशुद्धि होय है. **भावार्थ**–इहां विशुद्धि नाम प्रायश्चित्तका है जातें 'प्रायः' शब्दकरि तौ प्रकृष्ट चारित्रका ग्रहण है. ऐसा चारित्र जाकै होय सो 'प्रायः' कहिये साधु लोक. ताका चित्त जिस कार्यविषै होय है सो प्रायश्चित्त कहिये. सो आत्माकै विशुद्धि करै सो प्रायश्चित्त है. वहुरि दूसरा अर्थ ऐसा भी है जो प्रायः नाम अपराधका है ताका चित्त कहिये शुद्ध करना सो भी प्रायश्चित्त कहिये. ऐसें पूर्व कीये अपराधतें जातें शुद्धता होय सो प्रायश्चित्त है. ऐसें जो मुनि मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष नाहीं लगावै ताकै उत्कृष्ट विशुद्धता होय. यही प्रायश्चित्त नामा तप है।

अह कहवि पमादेण य दोसो जदि एदि तं पि पयडेदि।
णिद्दोससाहुमूले दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥ ४५० ॥

अथ कथमपि प्रमादेन च दोषः यदि एति तं अपि प्रकटयति।
निर्दोषसाधुमूले दशदोषविवर्जितः भवितुं ॥ ४५० ॥

भाषार्थ–अथवा कोई प्रकार प्रमादकरि अपने चारित्रमें दोष आया होय तौ ताकूं निर्दोष जे साधु आचार्य तिनिकै निकट दश दोषवर्जित होयकरि प्रकट करै आलोचना करै. **भावार्थ**–अपने चारित्रमें दोष प्रमादकरि लाग्या होय तौ आचार्य पास जाय दसदोषवर्जित आलोचना करै. ते प्रमाद–इन्द्रिय ५ निद्रा १

१ यत्याचारोक्त दशप्रकार प्रायश्चित्त।

आलोयण पडिकमणं उभय विवेगो तहा विओसग्गो।
तवछेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणं ॥ १ ॥

आलोचनं प्रतिक्रमणं तदुभयं विवेकः तथा व्युत्सर्गः।
तपः छेदः मूलं अपि च परिहारः च एव श्रद्धानं ॥ १ ॥

कषाय ४ विकथा ४ स्नेह १ ये पांच हैं तिनके पंधरह भेद हैं भंगनिकी अपेक्षा बहुत भेद होय हैं तिनिकरि दोष लागै हैं. बहुरि आलोचनाके दश दोष हैं तिनिके नाम–आकंपित १ अनुमानित २ बादर ३ सूक्ष्म ४ दृष्ट ५ प्रच्छन्न ६ शब्दाकुलित ७ बहुजन ८ अव्यक्त ९ तत्सेवी १० ए दश दोष हैं. तिनिका अर्थ ऐसा जो आचार्यकूं उपकरणादि देकरि आपकी करुणा उपजाय आलोचना करै जो ऐसें कीये प्रायश्चित्त थोड़ा देसी ऐसा विचारै तौ यह आकंपितदोष है. बहुरि वचन ही करि आचार्यनिकी बड़ाई आदिकरि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा राखै जो आचार्य मोसूं प्रसन्न रहै तौ प्रायश्चित्त थोड़ा बतावै, ऐसें अनुमानित दोष है. बहुरि प्रत्यक्ष दृष्टदोष होय सो कहै अदृष्ट न कहै सो दृष्टदोष है. बहुरि स्थूल बड़ा दोष तौ कहै सूक्ष्म न कहै सो बादरदोष है. बहुरि सूक्ष्म दोष ही कहै बादर न कहै यह जनावै यानैं सूक्ष्म ही कह दिया सो बादर काहेकूं छिपावै सो सूक्ष्मदोष है. बहुरि छिपायकरि ही कहै कोई अन्यनें अपना दोष कह्या है तब कहै ऐसा ही दोष मोकूं लाग्या है ताका नाम प्रकट न करै सो प्रछन्न दोष है. बहुरि बहुत शब्दका कोलाहलविषै दोष कहै अभिप्राय ऐसा कोइ औरन सुणै तहां शब्दाकुलित दोष है. बहुरि गुरु पासि आलोचनाकरि फेरि अन्य गुरुपासि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा जो याका प्रायश्चित्त देखै, अन्य गुरु कहा बतावै, ऐसें बहुजननामा दोष है. बहुरि जो दोष व्यक्त होय सो कहै, अभिप्राय ऐसा–जो यह दोष छिपाया छिपै नाहीं कह्या ही चाहिये. सो अव्यक्त दोष है. बहुरि अन्य मुनिनै लाग्या दोपकी गुरुपासि आलोचनाकरि प्रायश्चित्त लिया देखकरि तिस समान आपकूं दोष लाग्या होय ताकी आलोचना गुरुपासि न करै आप ही प्रायश्चित्त लेवै, अभिप्राय दोष प्रगट करनेका न होय सो तत्सेवी दोष है. ऐसें दशदोषरहित सरलचित्त होय बालककी ज्यों आलोचना करै।

---

१ विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।
चउ चउ पण मेगेगं होंदि पमादा तु पण्णरसा॥ १॥

विकथा तथा कषायाः इन्द्रिय निद्रा तथैव प्रणयः च।
चतु. चतुः पञ्च एक एक. भवति प्रमादाः पञ्चदश॥ १॥

२ आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहमं च।
छण्णं सद्दाउलियं बहुजण मव्वत्त तस्सेवी॥ १॥

जं किंपि तेण दिण्णं तं सव्वं सो करेदि सद्धाए ।
णो पुण हियए संकदि किं थोवं किमु बहुवं वा (?)॥ ४५१ ॥

यत् किमपि तेन दत्तं तत् सर्व सः करोति श्रद्धया ।
नो पुनः हृदये शङ्कते किं स्तोकं किमु बहुकं वा ॥ ४५१ ॥

भाषार्थ–दोषकी आलोचना करै पीछैं जो किछू आचार्य प्रायश्चित्त दीया तिस सर्वहीकूं श्रद्धाकरि करै. हृदयविषै ऐसैं शंका संदेह न करै जो ए प्रायश्चित्त दीया सो थोड़ा है कि बहुत है. भावार्थ–प्रायश्चित्तके तत्त्वार्थ सूत्रमें नव भेद कहे हैं. आलोचन प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युत्सर्ग तपश्छेद परिहार उपस्थापना. तहां आलोचना तौ दोषका यथावत् कहना, प्रतिक्रमण–दोषका मिथ्या करावना. तदुभय–आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ करावना, विवेक–आगामी त्याग करावना, व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग करावना. तप–छेद कहिये दीक्षा छेदना, बहुत दिनके दीक्षितकूं थोड़े दिनका करना, परिहार–संघबाह्य करना, उपस्थापना फेरि नवा सिरतैं दीक्षा देना. ऐसैं नव है इनिके भी अनेक भेद हैं. तहां देश काल अवस्था सामर्थ्य दूषणका विधान देखि यथाविधि आचार्य प्रायश्चित्त देहैं ताका श्रद्धाकरि अंगीकार करै तामैं संशय न करै ।

पुणरवि काउं णेच्छदि तं दोसं जइवि जाइ सयखंडं ।
एवं णिच्चयसहिदो पायच्छित्तं तवो होदि ॥ ४५२ ॥

पुनः अपि कर्तुं न इच्छति तं दोषं यद्यपि याति शतखण्डम् ।
एवं निश्चयसहितः प्रायश्चित्तं तपः भवति ॥ ४५२ ॥

भाषार्थ–लाग्यादोषका प्रायश्चित्त लेकरि तिस दोषकूं किया न चाहै जो आपके शतखंड भी होय तौ न करै ऐसैं निश्चय सहित प्रायश्चित्त नामा तप होय है. भावार्थ–ऐसा दिढचित्त करै जो लाग्या दोषको फेरि अपना शरीरके शतखंड होय जाय तौऊ सो दोष न लगावै सो प्रायश्चित्त तप है।

जो चिंतइ अप्पाणं णाणसरूवं पुणो पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो पायच्छित्तं वरं तस्स ॥ ४५३ ॥

यः चिन्तयति आत्मानं ज्ञानस्वरूपं पुनःपुनः ज्ञानी ।
विकथादिविरक्तमनाः प्रायश्चित्तं वरं तस्य ॥ ४५३ ॥

भाषार्थ–जो ज्ञानी मुनि आत्माकूं ज्ञानस्वरूप फेरि फेरि वारंवार चितवन करै, बहुरि विकथादिक प्रमादनितैं विरक्त हूवा संता ज्ञानहीकूं निरंतर सेवै,

ताकै श्रेष्ठ प्रायश्चित्त होय. भावार्थ–निश्चय प्रायश्चित्त यह है जामैं सर्व प्रायश्चित्तके भेद गर्भित हैं जो प्रमादतैं रहित होय अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्माका ध्यान करना यातैं सर्व पापनिका प्रलय होय है ऐसैं प्रायश्चित्तनामा अभ्यन्तर तपका भेद कह्या ।

आगैं विनय तपकूं गाथा तीनिकरि कहै हैं,—

विणयो पंचपयारो दंसणणाणे तहा चरित्ते य ।
बारसभेयम्मि तवे उवयारो बहुविहो णेओ ॥ ४५४ ॥

विनयः पञ्चप्रकारः दर्शने ज्ञाने तथा चारित्रे च ।
द्वादशभेदे तपसि उपचारः बहुविधः ज्ञेयः ॥ ४५४ ॥

भावार्थ–विनय पांच प्रकार है दर्शनविषैं ज्ञानविषैं तथा चारित्रविषैं बारह भेदरूप तपविषैं अर उपचार विनय सो यह बहुत प्रकार जानना ।

दंसणणाणचरित्ते सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।
बारसभेदे वि तवे सो च्चिय विणओ हवे तेसिं ॥ ४५५ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रेषु सुविशुद्धः यः भवति परिणामः ।
द्वादशभेदे अपि तपसि स एव विनयः भवेत् तेषां ॥ ४५५ ॥

भावार्थ–दर्शन ज्ञान चारित्र इनिविषैं बहुरि बारहभेदरूप तपकेविषैं जो विशुद्ध परिणाम होय सो ही तिनिका विनय है. भावार्थ–सम्यग्दर्शनकै शंकादिक अतीचाररहित परिणाम सो दर्शनका विनय है. बहुरि ज्ञानका संशयादिरहित परिणाम अष्टांग अभ्यास करना सो ज्ञानविनय है. बहुरि चारित्रकूं अहिंसादिक परिणामकरि अतीचाररहित पालना सो चारित्रका विनय है. बहुरि तैसैं ही तपके भेदनिकूं निरखि देखि निर्दोष पालनै सो तपका विनय है ।

रयणत्तयजुत्ताणं अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए ।
भिच्चो जह रायाणं उवयारो सो हवे विणओ ॥४५६॥

रत्नत्रययुक्तानां अनुकूलं यः चरति भक्त्या ।
भृत्यः यथा राज्ञां उपचारः सः भवेत् विनयः ॥ ४५६ ॥

भावार्थ–जो रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका धारक मुनिनिकै अनुकूल भक्तिकरि आचरण करै जैसैं राजाकै चाकर राजाकै अनुकूल प्रवर्त्तै हैं तैसैं साधूनिकै अनुकूल प्रवर्त्तै सो उपचार विनय है. भावार्थ–जैसैं राजाकै चाकर किंकर लोक राजाकै अनुकूल प्रवर्त्तै हैं. ताकी आज्ञा मानै, हुकम होय सो करै

तथा प्रत्यक्ष देखि उठि खड़ा होय, सन्मुख होय, हाथहू जोडै, प्रणाम करै, चालै तब पीछै होय चालै, ताके पोसाख आदि उपकरण संवारै. तैसें ही मुनिनिकी भक्ति मुनिनिका विनय करै तिनकी आज्ञा मानै प्रत्यक्ष देखै तब उठि सन्मुख होय हाथ जोड़ै प्रणाम करै चलै तब पीछै होय चालै उपकरण सवारै इत्यादिक तिनका विनय करै सो उपचारविनय है ।

आगें वैयावृत्य तपकूं दोय गाथाकरि कहै हैं,—

जो उवयरदि जदीणं उवसग्गजराइखीणकायाणं ।
पूजादिसु णिरवेक्खं विज्जावच्चं तवो तस्स ॥ ४५७ ॥

यः उपचरति यतीनां उपसर्गजरादिक्षीणकायानां ।
पूजादिषु निरपेक्षं वैयावृत्यं तपः तस्य ॥ ४५७ ॥

भावार्थ—जो मुनि यति उपसर्गकरि पीड़ित होय तिनिका तथा जरा रोगादिककरि क्षीण काय होय तिनिका अपनी चेष्टातें तथा उपदेशतें तथा अल्प वस्तुतें उपकार करै ताकै वैयावृत्य नामा तप होय है. सो कैसें करै आप अपने पूजा महिमा आदिविषै अपेक्षा वांछातें रहित जैसें होय तैसें करै. भावार्थ—निस्पृह हूवा मुनिनिकी चाकरी करै सो वैयावृत्य है. तहां आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दश प्रकारके यति वैयावृत्य करने योग्य कहे हैं. तिनिका यथायोग्य अपनी शक्तिसारू वैयावृत्य करै ।

जो वावरइ सरूवे समदमभावम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।
लोयववहारविरदो विज्जावच्चं परं तस्स ॥ ४५८ ॥

यः व्यावृणोति स्वरूपे शमदमभावे शुद्ध्युपयुक्तः ।
लोकव्यवहारविरतः वैयावृत्यं परं तस्य ॥ ४५८ ॥

भावार्थ—जो मुनि शमदमभावरूप जो अपना आत्मस्वरूप ताकै विषै शुद्ध उपयोगकरि युक्त हूवा प्रवर्त्तै अर लोकव्यवहार बाह्य वैयावृत्यसूं विरक्त होय, ताकै उत्कृष्ट निश्चय वैयावृत्य होय है. भावार्थ—जो मुनि सम कहिये राग द्वेष रहित साम्यभाव, बहुरि दम कहिये इन्द्रियनिकूं विषयनिविषै न जानै देना, ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप ताविषै लीन होय, ताकै लोकव्यवहाररूप बाह्य वैयावृत्य काहेकूं होय ? ताकै निश्चय वैयावृत्य ही होय है. शुद्धोपयोगी मुनिनिकी यह रीति है ।

आगें स्वाध्याय तपकूं छह गाथानिकरि कहै हैं;—

परतत्तीणिरवेक्खो दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्छयहेदू सज्झाओ ज्झाणसिद्धियरो ॥ ४५९ ॥

परतातिनिरपेक्षः दुष्टविकल्पानां नाशनसमर्थः ।
तत्त्वविनिश्चयहेतुः स्वाध्यायः ध्यानसिद्धिकरः ॥ ४५९ ॥

भाषार्थ—जो मुनि परकी निन्दाविषै निरपेक्ष होय वांछारहित होय है. बहुरि दुष्ट जे मनके खोटे विकल्प तिनिके नाश करनेकूं समर्थ होय ताकै तत्त्वके निश्चय करनेका कारण अर ध्यानकी सिद्धि करनेवाला स्वाध्यायनामा तप होय है. **भावार्थ**—जो परकी निंदा करनेविषै परिणाम राखै अर आर्त्तरौद्रध्यानरूप खोटे विकल्प मनमें चिंतवन कीया करै ताकै शास्त्रनिका अभ्यासरूप स्वाध्याय कैसे होय? तातै तिनिकूं छोडि स्वाध्याय करै ताकै तत्त्वका निश्चय होय अर धर्मशुक्लध्यानकी सिद्धि होय. ऐसा स्वाध्याय तप है ।

पूजादिसु णिरवेक्खो जिणसत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥ ४६० ॥

पूजादिषु निरपेक्षः जिनशास्त्रं यः पठति भक्त्या ।
कर्ममलशोधनार्थं श्रुतलाभः सुखकरः तस्य ॥ ४६० ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपनी अपनी पूजा महिमा आदिविषै तौ निरपेक्ष होय, वांछारहित होय अर भक्तिकरि जिनशास्त्र पढै, बहुरि कर्ममलके सोधनेके अर्थ पढै ताकै श्रुतका लाभ सुखकारी होय. **भावार्थ**—जो पूजा महिमा आदिके अर्थ शास्त्रकूं पढै है ताकै शास्त्रका पढना सुखकारी नाहीं. अपने कर्मक्षयके निमित्त जिनशास्त्रनिहीकूं पढै ताकै सुखकारी है ।

जो जिणसत्थं सेवइ पंडियमाणी फलं समीहंतो ।
साहम्मियपडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स ॥ ४६१ ॥

यः जिनशास्त्रं सेवते पण्डितमानी फलं समीहन् ।
साधर्मिकप्रातिकूलः शास्त्रं अपि विषं भवेत तस्य ॥ ४६१ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष जिनशास्त्र तौ पढै है अर आपकै पूजा लाभ सत्कारकूं चाहै है अर साधर्मी सम्यग्दृष्टी जैनी जननितै प्रतिकूल है सो पंडितमन्य है. पंडित तौ नाहीं अर आपकूं पंडित मानै ताकूं पंडितमन्य कहिये सो ऐसाकै

सो ही शास्त्र विषरूप परिणमै है. भावार्थ–जैनशास्त्र भी पढिकरि तीव्रकषायी भोगाभिलाषी होय जैनीनितैं प्रतिकूल रहै, सो ऐसा पंडितमन्यकै शास्त्र ही विष भया कहिये. जो यह मुनि भी होय तौ भेषी पाषंडी ही कहिये।

जो जुद्धकामसत्थं रायदोसेहिं परिणदो पढइ।
लोयावंचणहेदुं सज्झाओ णिप्फलो तस्स ॥ ४६२ ॥

यः युद्धकामशास्त्रं रागद्वेषैः परिणतः पठति।
लोकवञ्चनहेतुं स्वाध्यायः निष्फलः तस्य ॥ ४६२ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष युद्धके शास्त्र कामकथाके शास्त्र रागद्वेष परिणामकरि लोकनिकूं ठगनेके अर्थ पढै है ताकै स्वाध्याय निष्फल है. भावार्थ–जो पुरुष युद्धके, कामकौतूहलके, मंत्र ज्योतिष वैद्यक आदि लौकिक शास्त्र लोकनिके ठगनेंकूं पढै है, ताकै काहेका स्वाध्याय है. इहां कोई पूछै मुनि अर पंडित तौ सर्व ही शास्त्र पढै है ते काहेकूं पढै है. ताका समाधान रागद्वेषकरि अपने विषय आजीविका पोषनेकू लोकनिकै ठगनेकूं पढै ताका निषेध है. बहुरि जो धर्मार्थी हूवा कछू प्रयोजन जानि इनि शास्त्रनिकूं पढै, ज्ञान बढावना, परका उपकार करना, पुण्यपापका विशेष निर्णय करना. स्वपर मतकी चरचा जानना, पंडित होय तौ धर्मका प्रभाव होना, जो जैन मतमैं ऐसे पंडित हैं इत्यादिक प्रयोजन है. दुष्ट अभिप्रायतैं पढै ताका निषेध है।

जो अप्पाणं जाणदि असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं।
जाणगरूवसरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥ ४६३ ॥

यः आत्मानं जानाति अशुचिशरीरात् तत्त्वतः भिन्नं।
ज्ञायकरूपस्वरूपं सः शास्त्रं जानाति सर्वं ॥ ४६३ ॥

भाषार्थ–जो मुनि अपने आत्माकूं इस अपवित्र शरीरतैं भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जाणै सो सर्व शास्त्र जाणै. भावार्थ–जो मुनि शास्त्र अभ्यास अल्प भी करै है अर अपना आत्माका रूप ज्ञायक देखन जाननहारा इस अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्धउपयोगरूप होय जाणै है, सो सर्व ही शास्त्र जानै है. अपना स्वरूप न जान्या अर बहुत शास्त्र पढै तौ कहा साध्य है?।

जो ण विजाणदि अप्पं णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं।
सो ण विजाणदि सत्थं आगमपाढं कुणंतो वि ॥ ४६४ ॥

---

१ 'परं कुणदि' इत्यपि पाठ.

यः न अपि जानाति आत्मानं ज्ञानस्वरूपं शरीरतः भिन्नं ।
सः न अपि जानाति शास्त्रं आगमपाठं कुर्वन् अपि ॥ ४६४ ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपने आत्माकूं ज्ञानस्वरूप शरीरतें भिन्न नाहीं जानै है सो आगमका पाठ करै है तौऊ शास्त्रकूं नाहीं जानै है. **भावार्थ**—जो मुनि शरीरतें भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्माकूं नाहीं जानै है सो बहुत शास्त्र पढै है तौऊ विना पढ्या ही है. शास्त्रके पढनेका सार तौ अपना स्वरूप जानि रागद्वेषरहित होना था सो पढिकरि भी ऐसा न भया तो काहेका पढ्या? अपना स्वरूप जानि ताविषै स्थिर होना सो निश्चयस्वाध्यायतप है. वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश ऐसें पांचप्रकार व्यवहारस्वाध्याय है सो यह व्यवहार निश्चयके अर्थ होय सो व्यवहार भी सत्यार्थ है विना निश्चय व्यवहार थोथा है।

आगें व्युत्सर्ग तपकूं कहै हैं,—

जल्लमललित्तगत्तो दुस्सहवाहीसु णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणादिविरओ भोयण सेज्जादिणिरवेक्खो ॥ ४६५ ॥
ससरूवचिंतणरओ दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो ।
देहे वि णिम्ममत्तो काओसग्गो तवो तस्स ॥ ४६६ ॥

जल्लमललिप्तगात्रः दुःसहव्याधिषु निःप्रतीकारः ।
मुखधोवनादिविरतः भोजनशय्यादिनिरपेक्षः ॥ ४६५ ॥
स्वस्वरूपचिन्तनरतः दुर्जनस्वजनानां यः स्फुटं मध्यस्थः ।
देहे अपि निर्ममत्वः कायोत्सर्गः तपः तस्य ॥ ४६६ ॥

भाषार्थ—जो मुनि जल्ल कहिये पसेव अर मल तिनिकरि तौ लिप्त शरीर होय, बहुरि सह्या न जाय ऐसा भी तीव्र रोग आवै, ताका प्रतीकार न करै इलाज न करै, मुखका धोवणा आदि शरीरका संस्कार न करै भोजन अर सेज्या आदिकी बांछा न करै, बहुरि अपने स्वरूप चिंतवनविषै रत होय, लीन होय, बहुरि दुर्जन सज्जनविषै मध्यस्थ होय, शत्रु मित्र बराबर जानैं, बहुत कहा कहिये देहविषै भी ममत्वरहित होय, ताकै कायोत्सर्ग नामा तप होय है. मुनि कायोत्सर्ग करै है, तब सर्व बाह्य अभ्यंतर परिग्रह त्यागकरि सर्व बाह्य आहारविहारादिक क्रियासूं रत होय कायसूं ममत्व छोडि अपना ज्ञानस्वरूप आत्माविषै रागद्वेषरहित शुद्धोपयोगरूप होय लीन होय है, तिस काल जो अनेक

उपसर्ग आवो, रोग आवौ, कोई शरीरकूं काटि ही डारौ, स्वरूपतैं चिगै नाहीं, काहूतैं रागद्वेष नाहीं उपजावै है ताकै कायोत्सर्ग तप होय है।

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो।
बाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

यः देहपालनपरः उपकरणादिविशेषसंसक्तः।
बाह्यव्यवहाररतः कायोत्सर्गः कुतः तस्य ॥ ४६७ ॥

भाषार्थ–जो मुनि देहके पालनेविषै तत्पर होय, उपकरण आदिकविषै विशेष संसक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषै रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहेतैं होय. **भावार्थ**–जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकूं लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामैं तत्पर होय अर देहका आहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष संवारना शिष्य जनादिकतैं बहुत ममत राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमैं लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामैं कबहू लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तौ खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तौ ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है।

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।
ज्झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ॥ ४६८ ॥

अन्तर्मुहूर्त्तमात्रं लीनं वस्तुनि मानसं ज्ञान।
ध्यानं भण्यते समये अशुभं च शुभं च तत् द्विविधं ॥ ४६८ ॥

भाषार्थ–जो मनसंबंधी ज्ञान वस्तुविषै अन्तर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषै ध्यान कह्या है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसैं दोय प्रकार कह्या है. **भावार्थ**–ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमैं अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसैं दोय प्रकार है।

आगैं शुभ अशुभध्यानके नाम स्वरूप कहै हैं,—

असुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि।
अट्टं तिव्वकसायं तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥ ४६९ ॥

अशुभं आर्त्तं रौद्रं धर्म्यं शुक्लं च सुखकरं भवति।
आर्त्तं तीव्रकषायं तीव्रतमकषायतः रौद्रं ॥ ४६९ ॥

भावार्थ–आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ए दोऊ तौ अशुभध्यान है बहुरि धर्मध्यान अर शुक्लध्यान ए दोऊ शुभ अर शुभतर हैं तिनिमें आदिका आर्त्तध्यान तौ तीव्र कषायतैं होय है अर रौद्रध्यान अति तीव्र कषायतें होय है।

मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं।
अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि तं होदि ॥ ४७० ॥

मन्दकषायं धर्म्यं मन्दतमकषायतः भवेत् शुक्लं।
अकषाये अपि श्रुताढ्ये केवलज्ञाने अपि तत् भवति ॥ ४७० ॥

भावार्थ–धर्म ध्यान है सो मन्दकषाय होतें होय है. बहुरि शुक्लध्यान है सो अतिशयकरि मंदकषाय तें होय महामुनि श्रेणी चढै तिनिके होय है. अर कषायका अभाव भये श्रुतज्ञानी उपशांतकषाय क्षीणकषाय तथा केवलज्ञानी सयोगी अयोगी जिनके भी कहिये हैं. भावार्थ–धर्मध्यान तौ व्यक्तरागसहित पंच परमेष्ठी तथा दशलक्षणस्वरूप धर्म तथा आत्मस्वरूपविषै उपयोग एकाग्र होय है तातें याकूं मन्दकषाय सहित है ऐसा कह्या है. बहुरि शुक्लध्यान है सो उपयोगमें व्यक्तराग तौ नाहीं अर अपने अनुभवमें न आवै ऐसा सूक्ष्मराग सहित श्रेणी चढै है तहां आत्मपरिणाम उज्वल होय हैं यातें शुचि गुणके योगतें शुक्ल कह्या है. ताकूं मन्दतमकषाय कहिये अतिशय मंदकषायतें होय है ऐसा कह्या है तथा कषायके अभाव भये भी कह्या है।

आगें आर्त्तध्यानकूं कहै हैं,—

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इदि विचिंततो।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो अट्टं ज्झाणं हवे तस्स ॥ ४७१ ॥
मणहरविसयविजोगे कह तं पावेमि इदि वियप्पो जो।
संतावेण पयट्टो सो चिय अट्टं हवे ज्झाणं ॥ ४७२ ॥

दुःखकरविषययोगे केन इमं त्यजति इति विचिन्तयन्।
चेष्टते यः विक्षिप्तः आर्त्तध्यानं भवेत् तस्य ॥ ४७१ ॥
मनोहरविषयवियोगे कथं तत् प्रापयामि इति विकल्पः यः।
सन्तापेन प्रवृत्तः तत् एव आर्त्तं भवेत् ध्यानं ॥ ४७२ ॥

भावार्थ–जो पुरुष दुःखकारी विषयका संयोग होते ऐसा चिंतवन करै जो यह मेरे कैसें दूर होय, बहुरि तिसके संयोगतें विक्षिप्तचित्त भया संता चेष्टा करै, रुदनादिक करै तिसके आर्त्तध्यान होय है. बहुरि जो मनोहर प्यारी विषयसामग्रीका वियोग होतैं ऐसा चिंतवन करै जो ताहि मैं कैसें पाऊं, ताके वि-

योगतैं संतापरूप दुःखस्वरूप प्रवर्त्तै, सो भी आर्त्तध्यान है. **भावार्थ**–आर्त्तध्यान सामान्य तौ दुःखक्लेशरूप परिणाम है. तिस दुःखमैं लीन रहै अन्य किछू चेत रहै नाहीं ताकूं दोय प्रकारकरि कह्या. प्रथम तौ दुःखकारी सामग्रीका संयोग होय ताकूं दूरि करनेका ध्यान रहै. दूसरा इष्ट सुखकारी सामग्रीका वियोग होय ताके मिलावनेका चितवन ध्यान रहै सो आर्त्तध्यान है. अन्य ग्रंथनिमैं च्यारि भेद कहे हैं इष्टवियोगका चितवन, अनिष्टसंयोगका चितवन, पीड़ाका चितवन, निदानबंधका चितवन. सो इहां दोय कहे तिनिमैं ही अंतर्भाव भये. अनिष्टसंयोगके दूरि करनेमैं तौ पीड़ा चितवन आय गया, अर इष्टके मिलावनेकी बांछामैं निदानबंध आयगया. ये दोऊ ध्यान अशुभ हैं पापबंधकूं करै हैं धर्मात्मा पुरुषनिके त्यजने योग्य हैं।

आगें रौद्रध्यानकूं कहै हैं,—

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं ज्झाणं हवे तस्स ॥ ४७३ ॥

हिंसानन्देन युतः असत्यवचनेन परिणतः यः तु।
तत्र एव अस्थिरचित्तः रौद्रं ध्यानं भवेत् तस्य ॥ ४७३ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष हिंसाविषै आनन्दकरि संयुक्त होय. बहुरि असत्य वचनकरि परिणमता रहै तहां हीं विक्षिप्तचित्त रहै तिसकै रौद्रध्यान होय है. **भावार्थ**–हिंसा जो जीवनिका घात तिसकूं करि अति हर्ष मानै, सिकार आदिमैं आनन्दतैं प्रवर्त्तै, परकै विघ्न होय, तब अति संतुष्ट होय, बहुरि झूंठ बोलि करि अपना प्रवीणपणा मानै परकै दोषनिकूं तिरंतर देखै, कहै तामैं आनंद मानै ऐसैं ए दोय भेद रौद्रध्यानके कहे।

आगें दोय भेद और कहै हैं,—

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो।
तग्गयचित्ताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥ ४७४ ॥

परविषयहरणशीलः स्वकीयविषयसुरक्षणे दक्षः।
तद्गतचिन्ताविष्टः निरन्तरं तदपि रौद्रं अपि ॥ ४७४ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष परकी विषय सामग्रीकूं हरणेका स्वभावसहित होय, बहुरि अपनी विषय सामग्रीकी रक्षा करणेविषै प्रवीण होय, तिनि दोऊं कार्यनिविषै लीनचित्त निरंतर राखै, तिस पुरुषकै यह भी रौद्रध्यान ही है. **भावार्थ**–परकी सम्पदाकूं चोरनेविषै प्रवीण होय चोरीकरि हर्ष मानै, बहुरि अपनी विषय

सामग्रीकूं राखनेका अति यत्न करै, ताकी रक्षाकरि आनंद मानै ऐसें ये दोय भेद रौद्रध्यानके भये. ऐसैं ये चारौं भेदरूप रौद्रध्यान अति तीव्र कषायके योगतैं होय हैं. महापाप रूप हैं. महापापबंधकूं कारण हैं. सो धर्मात्मा पुरुष ऐसे ध्यानकूं दूरिहीतैं छौडै है. जेते जगतकूं उपद्रवके कारण हैं तेते रौद्रध्यानयुक्त पुरुषतैं बणै हैं, जातैं पापकरि हर्ष मानै सुख मानै ताकूं धर्मका उपदेश भी नाहीं लागै है. अति प्रमादी हूवा अचेत पापहीमें मस्त रहै है।

आगें धर्मध्यानकूं कहै हैं,—

विण्णिवि असुहे ज्झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे ।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणह ॥ ४७५ ॥

द्वे अपि अशुभे ध्याने पापनिधाने च दुःखसन्ताने ।
ज्ञात्वा दूरं वर्जध्वं धर्मे पुनः आदरं कुरुत ॥ ४७५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो आर्त्त रौद्र ये दोऊं ही ध्यान अशुभ हैं पापके निधान दुःखके संतान जाणिकरि दूरिहीतैं छोडौ, बहुरि धर्मध्यानविषै आदर करौ. **भावार्थ**—आर्त्तरौद्र दोऊं ही ध्यान अशुभ हैं अर पापके भरे हैं अर दुःखहीकी संतति इनिमें चली जाय है. तातैं छोडिकरि धर्मध्यान करनेका श्रीगुरुनिका उपदेश है।

आगें धर्मका स्वरूप कहै हैं,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥ ४७६ ॥

धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावः च दशविधः धर्मः ।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥ ४७६ ॥

भाषार्थ—वस्तुका स्वभाव सो धर्म है. जैसें जीवका दर्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यस्वभाव सो याका एही धर्म है. बहुरि क्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म है. बहुरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सो धर्म है. बहुरि जीवनिकी रक्षा करना सो भी धर्म है. **भावार्थ**—अभेदविवक्षाकरि तौ वस्तुकास्वभाव सो धर्म है जीवका चैतन्य स्वभाव सो ही याका धर्म है. बहुरि भेद विवक्षाकरि दशलक्षण उत्तम क्षमादिक तथा रत्नत्रयादिक धर्म है. बहुरि निश्चयतैं तौ अपने चैतन्यकी रक्षा विभावपरिणतिरूप न परिणमना अर व्यवहारकरि परजीवकूं विभावरूप दुःख क्लेशरूप न करना ताहीका भेद जीवकूं प्राणांत न करना यह धर्म है।

आगें धर्मध्यान कैसे जीवकै होय सो कहै हैं,—

धम्मे एयग्गमणो जो ण हि वेदेइ इंदियं विसयं।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स॥ ४७७॥

धर्मे एकाग्रमनाः य न हि वेदयति इन्द्रियं विषयं।
वैराग्यमयः ज्ञानी धर्मध्यानं भवेत् तस्य॥ ४७७॥

भाषार्थ—जो पुरुष ज्ञानी धर्मविषै एकाग्रमन होय वर्तै, बहुरि इन्द्रियनिके विषयनिकूं न वेदै. बहुरि वैराग्यमयी होय, तिस ज्ञानीकै धर्मध्यान होय है. **भावार्थ**—ध्यानका स्वरुप एक ज्ञेयकेविषै ज्ञानका एकाग्र होना है. जो पुरुष धर्मविषै एकाग्रचित्त करै तिस काल इन्द्रिय विषयनिकूं न वेदै ताकै धर्मध्यान होय है. याका मूलकारण संसारदेहभोगसूं वैराग्य है विना वैराग्य धर्ममैं चित्त थंभै नाहीं।

सुविसुद्धरायदोसो वाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो।
एयग्गमणो संतो जं चिंतइ तं पि सुहज्झाणं॥ ४७८॥

सुविशुद्धरागद्वेषः बाह्यसंकल्पवर्जितः धीरः।
एकाग्रमनाः सन् यत् चिन्तयति तदपि शुभध्यानं॥ ४७८॥

भाषार्थ—जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित हूवा संता बाह्यके संकल्पकरि वर्जित हूवा धीरचित्त एकाग्रमन हूवा संता जो चितवन करै सो भी शुभध्यान है. **भावार्थ**—जो रागद्वेषमयी वा वस्तुसंबंधी संकल्प छोडि एकाग्रचित्त होय काहूका चलाया न चलै ऐसा होय चितवन करै सो भी शुभ ध्यान है।

ससरूवसमुब्भासो णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो।
अप्पाणं चिंततो सुहज्झाणरओ हवे साहू॥ ४७९॥

स्वस्वरूपसमुद्भासः नष्टममत्वः जितेन्द्रियः सन्।
आत्मानं चिन्तयन् शुभध्यानरतः भवेत् साधुः॥ ४७९॥

भाषार्थ—जो साधु अपनें स्वरूपका है समुद्भास कहिये प्रगट होना जाकै ऐसा हूवा संता, तथा परद्रव्यविषै नष्ट भया है ममत्व भाव जाकै ऐसा हूवा संता, तथा जीते हैं इन्द्रिय जानैं, ऐसा हूवा संता आत्माकूं चितवन करता संता प्रवर्त्तै सो साधु शुभध्यानकेविषै लीन होय है. **भावार्थ**—जाकै अपना स्वरूपका तौ प्रतिभास भया होय अर परद्रव्यविषै ममत्व न करै अर इन्द्रियनिकूं वश करै ऐसैं आत्माका चितवन करै सो साधु शुभ ध्यानविषै लीन होय अन्यके शुभध्यान न होय है।

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मणं णिरुंभित्ता ।
जं चिंतइ साणंदं तं धम्मं उत्तमं ज्झाणं ॥ ४८० ॥

वर्जितसकलविकल्पः आत्मस्वरूपे मनः निरुन्ध्य ।
यत् चिन्तयति सानन्दं तत् धर्मं उत्तमं ध्यानं ॥ ४८० ॥

भाषार्थ–जो समस्त अन्य विकल्पनिकूं वर्जकरि आत्मस्वरूपविषै मनकूं रोकिकरि आनंदसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है. **भावार्थ**–जो समस्त अन्य विकल्पनिसूं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकूं थांभनेतैं आनन्दरूप चितवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है. इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिके अनुसार विशेष कथन कीया है. ताका संक्षेपकरि लिखिये है. तहां धर्मध्यानके च्यारि भेद कहे हैं. आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसें. तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपनी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देवनै कह्या है सो हमारै प्रमाण है ऐसें आज्ञा मानि ताकै अनुसार पदार्थनिमैं उपयोग थांभै सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १. बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसें कर्मनिका नाश होय तैसें चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै अपने न होनेका चितवन करै परकै मेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २. बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३. बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४. बहुरि दशप्रकार भी कह्या है–अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय. ऐसें इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसें च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहां पद तौ अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिकूं प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहां तिस अ-

१. सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः ॥ १ ॥

२. पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् ।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥ २ ॥

क्षरमैं एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये तहां नमोकार मन्त्रके पैंतीस अक्षर हैं ते प्रसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप सोलह अक्षर हैं " अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू " ऐसैं सोलह अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप " अरहंतसिद्ध " ऐसैं छह अक्षर हैं. बहुरि इसहीका संक्षेप " असि आ उ सा " ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि " अरहंत " ए च्यारि अक्षर हैं. बहुरि " सिद्ध " अथवा " अर्हं " ऐसैं दोय अक्षर हैं. बहुरि " ओं " ऐसा एक अक्षर है. यामैं पंचपरमेष्ठीका आदि अक्षर सर्व हैं. अरहंतका अकार अशरीर जे सिद्ध तिनिका अकार आचार्यका " आकार उपाध्यायका उकार मुनिका मकार ऐसैं पांच अक्षर अ+अ+आ+उ+म्= " ओम् " ऐसा सिद्ध होय है. ऐसैं ए मन्त्रवाक्य हैं. सो इनिका उच्चारणरूपकरि मनविषै चितवनरूप ध्यान करै. तथा इनिका वाच्य अर्थ जो परमेष्ठी तिनिका अनन्तज्ञानादिरूप स्वरूप विचारि ध्यान करना, बहुरि अन्य भी बारह हजार श्लोकरूप नमस्कार ग्रन्थ है. ताके अनुसार तथा लघुबृहत् सिद्धचक्र प्रतिष्ठा ग्रंथनिमैं मन्त्र कहे हैं तिनिका ध्यान करना, मन्त्रनिका केताइक कथन संस्कृत टीकामैं है सो तहातैं जानना. इहां संक्षेप लिख्या है. ऐसैं पदस्थध्यान है. बहुरि पिंड नाम शरीरका है तिसविषै पुरुषाकार अमूर्त्तीक अनन्तचतुष्टयकरि संयुक्त जैसा परमात्माका स्वरूप तैसा आत्माका चितवन करना सो पिंडस्थध्यान है. बहुरि रूप कहिये अरहंतका रूप समवसरणविषै घातिकर्मरहित चौंतीस अतिशय आठ प्रातिहार्यकरि सहित अनन्तचतुष्टयमंडित इन्द्र आदिकरि पूज्य परम औदारिक शरीरकरि युक्त ऐसा अरहंतकूं ध्यावै तथा ऐसा ही संकल्प अपने आत्माका करि आपकूं ध्यावै सो रूपस्थ ध्यान है. बहुरि देहविना बाह्यके अतिशयादिकविना अपना परका ध्याता ध्यान ध्येयका भेदविना सर्व विकल्परहित परमात्मस्वरूपविषै लयकूं प्राप्त होय सो रूपातीत ध्यान है. ऐसा ध्यान सातवें गुणस्थान होय तब श्रेणीकूं यह ध्यान व्यक्तरागसहित चतुर्थ गुणस्थानतैं लगाय सातवां गुणस्थान तांई अनेक भेदरूप प्रवर्त्ते है।

---

१. अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

२. णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

३. अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥ १ ॥

आगें शुक्लध्यानकूं पांच गाथाकरि कहै हैं,—

जत्थ गुणा सुविसुद्धा उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे ज्झाणं॥ ४८१॥

यत्र गुणाः सुविशुद्धाः उपशमक्षपणं च यत्र कर्मणां।
लेश्या अपि यत्र शुक्ला तत् शुक्लं भण्यते ध्यानं॥ ४८१॥

भाषार्थ—जहां भले प्रकार विशुद्ध व्यक्त कषायनिके अनुभवरहित उज्वल गुण कहिये ज्ञानोपयोग आदि होय, बहुरि कर्मनिका जहां उपशम तथा क्षय होय, बहुरि जहां लेश्या भी शुक्ल ही होय,तिसकूं शुक्लध्यान कहिये हैं. **भावार्थ**—यह सामान्य शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या विशेष आगें कहै हैं. बहुरि कर्मके उपशमनका अर क्षपणका विधान अन्य ग्रंथनितें टीकाकार लिख्या है सो आगें लिखियेगा।

अब विशेष भेदनिकूं कहै हैं,—

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए।
पढमं सुक्कं ज्झायदि आरूढो उभयसेणीसु॥ ४८२॥

प्रतिसमय शुध्यन् अनन्तगुणितया उभयशुध्या।
प्रथमं शुक्लं ध्यायति आरूढः उभयश्रेणीषु॥ ४८२॥

भाषार्थ—उपशमक अर क्षपक इनि दोऊं श्रेणीनिविषै आरूढ हूवा संता समय समय अनंतगुणी विशुद्धता कर्मका उपशमरूप तथा क्षयरूपकरि शुद्ध होता संता मुनि प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा ध्यावै है. **भावार्थ**—पहलें मिथ्यात्व तीन, कषाय अनंतानुबंधी च्यारि प्रकृतिनिका उपशम तथा क्षय करि सम्यग्दृष्टी होय. पीछें अप्रमत्त गुणस्थानविषै सातिशय विशुद्धतासहित होय श्रेणीका प्रारंभ करै, तब अपूर्वकरण गुणस्थान होय, शुक्लध्यानका पहला पाया प्रवर्त्ते, तहां जो मोहकी प्रकृतिनिकूं उपशमावनेका प्रारंभ करै तौ अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय इनि तीनूं गुणस्थानविषै समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि वर्द्धमान होता संता मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतिनिकूं उपशमकरि उपशांत कषाय गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. अर कै मोहकी प्रकृतिनिकूं क्षपावनेका प्रारंभ न करै तौ तीनूं गुणस्थानविषै इकईस मोहकी प्रकृतिनिका सत्तामैंसूं नाशकरि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. ऐसैं शुक्लध्यानका पहला पाया पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा प्रवर्त्तै है. तहां प्रथक् कहिये न्यारा न्यारा वितर्क कहिये श्रुतज्ञानके अक्षर अर अर्थ अर वीचार क

हिये अर्थका व्यंजन कहिये अक्षररूप वस्तुका नामका अर मन वचन कायके योग इनिका पलटना सो इस पहले शुक्लध्यानमैं होय है. तहां अर्थ तौ द्रव्य गुणपर्याय है सो पलटै, द्रव्यसूं द्रव्यान्तर गुणसूं गुणान्तर पर्यायसूं पर्यायांतर. बहुरि तैसैं ही वर्णसूं वर्णान्तर बहुरि तैसें ही योगसूं योगांतर है।

इहां कोई पूछै ध्यान तौ एकाग्रचिंतानिरोध है पलटनेकूं ध्यान कैसें कहिये ताका **समाधान**—जो जेतीवार एकपरि थंभै सो तौ ध्यान भया पलट्या तब दूसरे परि थंभ्या सो भी ध्यान भया ऐसैं ध्यानके संतानकूं भी ध्यान कहिये. इहां संतानकी जाति एक है ताकी अपेक्षा लेणी. बहुरि उपयोग पलटै सो इसके ध्याताकै पलटावनेकी इच्छा नाहीं है जो इच्छा होय तौ रागसहित यह भी धर्म ध्यान ही ठहरै. इहां रागका अव्यक्त भया सो केवलज्ञानगम्य है ध्याताके ज्ञान गम्य नाहीं. आपशुद्ध उपयोगरूप हूवा पलटनेका भी ज्ञाता ही है. पलटना क्षयोपशम ज्ञानका स्वभाव है सो यह उपयोग बहुत काल एकाग्र रहै नाहीं याकूं शुक्ल ऐसा नाम रागके अव्यक्त होनेहीतें कह्या है।

आगें दूजा भेद कहै हैं,—

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले।
ससरूवम्मि णिलीणो सुक्कं ज्झायेदि एयत्तं ॥ ४८३ ॥

निःशेषमोहविलये क्षीणकषायः च अन्तिमे काले।
स्वस्वरूपे निलीनः शुक्लं ध्यायति एकत्वं ॥ ४८३ ॥

भाषार्थ—आत्मा समस्त मोहकर्मका नाश भये क्षीणकषाय गुणस्थानका अंतके कालविषै अपने स्वरूपविषै लीन हूवासंता एकत्ववितर्कवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानकूं ध्यावै है. **भावार्थ**—पहले पायेमें उपयोग पलटै था सो पलटता रहगया एक द्रव्य तथा गुण तथा पर्यायपरि तथा एक व्यंजनपरि तथा एक योगपरि थंभि गया, अपने स्वरूपमें लीन है ही, अब घातिकर्मका नाशकरि उपयोग पलटैगा सो सर्वका प्रत्यक्ष ज्ञाता होय लोकालोककूं जानना यह ही पलटना रह्या है।

आगें तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए।
जं ज्झायदि सजोगजिणो तं तदियं सुहमकिरियं च ॥ ४८४ ॥

केवलज्ञानस्वभावः सूक्ष्मे योगे संस्थितः काये।
यत् ध्यायति सयोगिजिनः तत् तृतीयं सूक्ष्मक्रियं च ॥ ४८४ ॥

भाषार्थ-केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमैं तिष्ट तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्ल ध्यान है. भावार्थ-जब घातिकर्मका नाशकरि केवल उपजै, तब तेरहवां गुणस्थानवर्त्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमैं अंतर्मुहूर्त्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है. सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमैं अन्तर्मुहूर्त्त ठहरना कह्या है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थंभनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थंभि ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा पलटावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमैं रमि रहे हैं. ज्ञेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषैं इष्टअनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपात नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्त्तै है।

अब चौथा भेद कहै हैं,—

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं।
जं ज्झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च॥ ४८५॥

योगविनाशं कृत्वा कर्मचतुष्कस्य क्षपणकरणार्थं।
यत् ध्यायति अयोगिजिनः निष्क्रियं तत् चतुर्थं च॥ ४८५॥

भाषार्थ-केवली भगवान् योगनिकी प्रवृत्तिका अभवाकरि जब अयोगी जिन होय है तब अघातियाकी प्रकृति सत्तामैं पिच्यासी रहीं हैं तिनिका क्षय करनेके अर्थ जो ध्यावै है सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामा शुक्लध्यान होय है. भावार्थ-चौदहवां गुणस्थान अयोगीजिन है तहां स्थिति पंचलघुअक्षरप्रमाण है. तहां योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव है सो सत्तामैं अघातिकर्मकी पिच्यासी प्रकृति हैं तिनिके नाशका कारण यह योगनिका रुकना है तातैं इसकूं ध्यान कह्या है. सो तेरहवां गुणस्थानकी ज्यों इहां भी ध्यानका उपचार जानना. किछू इच्छा पूर्वक उपयोगका थांभनेरूप ध्यान है नाहीं. इहां कर्म प्रकृतिनिके नाम तथा औरभी विशेष कथन अन्यग्रंथनिके अनुसार है सो संस्कृतटीकातैं जानना, ऐसैं ध्यान तपका स्वरूप कह्या।

आगैं तपके कथनकूं संकोचै हैं,—

एसो वारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहई॥ ४८६॥

एतत् द्वादशभेदं उग्रतपः यः चरति उपयुक्तः ।
सः क्षपयित्वा कर्मपुञ्जं मुक्तिसुखं उत्तमं लभते ॥ ४८६ ॥

भाषार्थ—यह बारह प्रकारका तप कह्या जो मुनि इनिविषै उपयोग लगाय उग्र तीव्र तपकूं आचरण करै है सो मुनि मुक्तिके सुखकूं पावै है. कैसा है मुक्तिसुख खेपे हैं कर्मके पुंज जानें बहुरि अक्षय है. अविनाशी है. **भावार्थ**—तपतैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊं ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकूं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है. तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी बाधारहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावै ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनागार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनागार हैं. बहुरि ध्यानमैं तिष्टै श्रेणी मांडै ते यति हैं. बहुरि जिनिकूं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋषि हैं. तिनिके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, दवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि केवलज्ञानी परमऋषि ऐसैं जानना ।

आगें या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेय नामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्य प्रगट करै है,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥ ४८७ ॥

जिनवचनभावनार्थं स्वामिकुमारेण परमश्रद्धया ।
रचिताः अनुप्रेक्षाः चञ्चलमनोरुन्धनार्थं च ॥ ४८७ ॥

भाषार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्त्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथारूप रचना करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानैं यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो. इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैकि,—जिन वचनकी भावनाके अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पूजादिक लौकिक प्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताको वारंवार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकूं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं

ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं, ताकूं इस शास्त्रमैं लगा इये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनकै अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकूं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी बधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमैं लगै अन्य विषयनिविषै न जाय।

आगैं अनुप्रेक्षाका माहात्म्य कहि भव्यनिकूं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

वारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं॥ ४८८॥

द्वादशअनुप्रेक्षाः भणिताः स्फुटं जिनागमानुसारेण।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यं॥ ४८८॥

भाषार्थ—ए बारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार ले प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं कल्पित न कही हैं पूर्व अनुसारतैं कही हैं सो इनिकूं जो भव्य जीव पढै अथवा सुणै अर इनिकी भावना करै वारंवार चितवन करै सो उत्तम सुख जो बाधारहित अविनाशी स्वात्मीक सुख, ताकूं पावै. यह संभावनारूप कर्त्तव्य अर्थका उपदेश जानना. भव्य जीव है सो पढौ सुणूं वारंवार इनिका चितवन रूप भावना करौ।

आगैं अन्त्यमंगल करै हैं,—

तिहुयणपहाणस्वामिं कुमारकाले वि तविय तवयरणं।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरिमनियं संथुवे णिच्चं॥ ४८९॥

त्रिभुवनप्रधानस्वामिनं कुमारकाले अपि तप्ततपश्चरणं।
वसुपूज्यसुतं मल्लिं चरमत्रिकं संस्तुवे नित्यम्॥ ४८९॥

भाषार्थ—तीन भुवनके प्रधान स्वामी तीर्थंकर देव जिननें कुमार कालविषै ही तपश्चरण धारण किया, ऐसे वसुपूज्य राजाके पुत्र वासुपूज्यजिन, अर मल्लिजिन अर चरम कहिये अंतके तीन नेमिनाथ जिन, पार्श्वनाथ जिन, वर्द्धमान जिन, ए पांच जिन, तिनिकूं मैं नित्य ही स्तवूं हूं तिनिके गुणानुवाद करू हूं वंदौ हूं. भावार्थ—ऐसैं कुमारश्रमण जे पांच तीर्थंकर तिनिकूं स्तवन नमस्काररूप अंतमंगल कीया है. इहां ऐसा सूचै हैकि—आप कुमारअवस्थामैं मुनि भये हैं तातैं कुमार तीर्थंकरनितैं विशेष प्रीति उपजी है तातैं तिनिके नामरूप अंतमंगल कीया है।

ऐसैं श्रीस्वामिकार्त्तिकेय मुनि यह अनुप्रेक्षा नामा ग्रंथ समाप्त कीया।

आगें इस वचनिकाके होनेका सबंध लिखिये हैं,—

दोहा.

प्राकृत स्वामिकुमार कृत, अनुप्रेक्षा शुभ ग्रंथ।
देशवचनिका तासकी, पढ़ौ लगौ शिवपंथ ॥ १ ॥

चौपई.

देश ढुंढाहड़ जयपुर थान । जगतसिंह नृपराज महान ॥
न्यायबुद्धि ताकै नित रहै । ताकी महिमा को कवि कहै ॥ २ ॥
ताके मंत्री बहुगुणवान । तिनिकै मंत्र राजसुविधान ॥
ईति भीति लोकनिकै नाहिं । जो व्यापै तौ झट मिटि जाहिं ॥ ३ ॥
धर्मभेद सब मतके भलै । अपने अपने इष्ट जु चलै ॥
जैनधर्मकी कथनी तनी । भक्ति प्रीति जैनिनकै घनी ॥ ४ ॥
तिनिमें तेरापंथ कहाव । धरै गुणीजन करै बढाव ॥
तिनिके मध्य नाम जयचन्द्र । मैं हूं आतमराम अनन्द ॥ ५ ॥
धर्मरागतैं ग्रंथ विचारि । करि अभ्यास लेय मनधारि ॥
भावन बारह चितवन सार । सो हूं लखि उपज्यो सुविचार ॥ ६ ॥
देशवचनिका करिये जोय । सुगम होय बांचै सब कोय ॥
यातैं रची वचनिका सार । केवल धर्मराग निरधार ॥ ७ ॥
मूलग्रंथतैं घटि वधि होय । ज्ञानी पण्डित सोधौ सोय ॥
अल्पबुद्धिकी हास्य न करैं । संतपुरुष मारग यह धरैं ॥ ८ ॥
बारह भावनका भावना । बहु लै पुण्ययोग पावना ॥
तीर्थंकर वैराग जु होय । तब भावै सब राग जु खोय ॥ ९ ॥
दीक्षा धारैं तब निरदोष । केवल ले अरु पावै मोष ॥
यह विचारि भावौ भवि जीव । सब कल्याण सु धरौ सदीव ॥ १० ॥
पंच परमगुरु अरु जिनधर्म । जिनवानी भाषै सब मर्म ॥
चैत्य चैत्यमंदिर पढि नाम । नमूं मानि नव देव सुधाम ॥ ११ ॥

दोहा.

संवत्सर विक्रमतणूं, अष्टादशशत जानि।
त्रेसठि सावण तीज वदि, पूरण भयो सुमानि ॥ १२ ॥
जैनधर्म जयवंत जग, जाको मर्म सु पाय।
वस्तु यथारथरूप लखि, ध्यायें शिवपुर जाय ॥ १३ ॥

इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जयचंद्रजीकृतवचनिकासहित समाप्ता।